लोक-नीति

•

विनोबा

•

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बम्बई-राज्य)

पहली बार : ५,०००
मई, १९५८
मूल्य : सवा रुपया
एक रुपया पच्चीस नये पैसे

मुद्रक :
ओम् प्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी (बनारस) ५२९८–१४

प्रकाशकीय

पूज्य विनोबाजी के लोक-नीतिसम्बन्धी विचारों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है। 'राजनीति' की जगह अब 'लोकनीति' शब्द देश की जनता की जबान पर चढ़ गया है। देश के बड़े-बड़े विचारक और राजनीतिज्ञ अब लोकनीति के विचार की तरफ जिज्ञासा की दृष्टि से देखने लगे हैं।

पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है। पहला खण्ड बहुत छोटा है, फिर भी वह मूलभूत है। भारत के प्राचीन ऋषि जंगलों में रहते थे, लेकिन राज्यकर्ता समय-समय पर सलाह लेने उनके निकट पहुँचते थे। यह ऋषियों का अनुशासन सबको मान्य होता था। इसकी एक झलक मात्र इस खंड में दी गयी है। इसमें लोकनीति का आध्यात्मिक बीज निहित है। दूसरे खण्ड में वर्तमान राज्यनीति, चुनाव, कानून, लोकसत्ता, लोक-तंत्र, पक्ष-भेद आदि का विस्तृत विवेचन है। तीसरे खण्ड में लोकनीति की स्थापना, शासनमुक्त समाज, अहिंसक राज्य, ग्राम-स्वराज्य, सर्वसम्मति आदि का स्पष्टीकरण है। सर्वोदय की दृष्टि में लोकनीति का क्या स्वरूप होगा, राज्य की क्या स्थिति होगी आदि की दृष्टि से यह खंड महत्त्वपूर्ण है।

विनोबा-विचार की धारा गंगा की तरह अखंड बह रही है। किसी एक विचार को दूसरे से पृथक् नहीं किया जा

सकता। गंगा की धारा में से चाहे चुल्लूभर पानी लीजिये, चाहे घड़ाभर; उसमें कोई भेद नहीं किया जा सकता। इसी तरह भले ही यह संकलन 'लोकनीति' विषयक कहा और माना जायगा, परंतु विनोबा जिस सर्वोदय-विचार की बुनियाद देश में रखने के लिए गाँव-गाँव अलख जगा रहे हैं, वह तो उनके शब्द-शब्द में प्रकट है। उनका हर शब्द साधना और अनुभूति की ज्योति से ज्योतिर्मान् है। इसीलिए कहना चाहिए कि पुस्तक में एक ही विचार पाठकों को अनेक जगह दिखाई दे सकता है। लेकिन विनोबा-वाणी की यह अनुपम शालीनता है कि बार-बार पढ़ने पर भी हृदय हर बार नूतन-नूतन प्रेरणादायी आनन्द का अनुभव करता है। कम-से-कम मेरा तो यही अनुभव है।

आशा है, यह पुस्तक राजनीतिज्ञों और राजनीति के विद्यार्थियों को नयी दृष्टि से सोचने की सामग्री प्रदान करेगी। लोकनीति में विश्वास रखनेवाले भी इसमें अपने मनोनुकूल स्पष्टता, व्यापकता और व्यावहारिक मार्गदर्शन पा सकेंगे।

राजघाट, काशी
सूरदास-जयन्ती
२३-४-'५७

—जमनालाल जैन

उपोद्घात

लोग जब अपना इन्तजाम अपने-आप कर लेते हैं, तब उसे 'लोकशाही' या 'सार्वजनिक व्यवस्था' कहते हैं। सार्वजनिक व्यवस्था के सम्बन्ध में आम तौर पर तीन शब्द प्रचलित हैं : लोकसत्ता, लोकतन्त्र और लोकनीति। 'सत्ता' शब्द का अर्थ है, प्रतिष्ठापूर्ण अस्तित्व, इज्जत की जिन्दगी। जिस इन्तजाम में साधारण नागरिक की इज्जत होती है और उसकी हैसियत समाज के किसी दूसरे व्यक्ति की बराबरी की होती है, तब उसे 'लोकसत्ता' कहते हैं। सत्ता का असली अर्थ हुकूमत नहीं है, बल्कि प्रतिष्ठा का जीवन है। जिस पद्धति में साधारण नागरिक की प्रतिष्ठा स्थापित होती है और बनी रहती है, उस पद्धति का नाम 'लोकतन्त्र' है। नागरिकों में एक-दूसरे के लिए जब इज्जत होती है और जब एक नागरिक दूसरे नागरिक की सुख-सुविधा का विचार अपनी सुख-सुविधा के विचार से पहले करता है, तब उस नागरिक व्यवहार को 'लोकनीति' कहते हैं। मतलब यह कि लोकनीति के बिना लोकतन्त्र ठहर ही नहीं सकता और न लोकसत्ता यथार्थ हो सकती है। नागरिक-चारित्र्य का आधार लोकनीति है।

क्या राज्य-व्यवस्था का और प्रशासन का कभी अन्त होगा? यह प्रश्न अप्रस्तुत है। आज भी जब कोई कानून बनता है, तो साधारण रूप से यह मान लिया जाता है कि कानून का पालन करनेवाले नागरिकों की तादाद ज्यादा होगी और कानून तोड़नेवालों की संख्या कम होगी। इसीलिए जेलखानों में थोड़े लोगों के रहने का इन्तजाम किया जाता है। और, अब तो यह कोशिश हो रही है कि उस इन्तजाम में भी सख्ती और हुकूमत की मात्रा कम होती चली जाय। कैदखानों का जो सुधार इधर हो रहा है, उसमें इन्तजाम ज्यादा है और बन्दोबस्त

जहाँ तक हो सके, कैदियों के हाथ में सौंपने की कोशिश है। अर्थात् हमारा रुख स्वतन्त्रता की तरफ है, प्रशासन की तरफ नहीं। स्वतन्त्रता में स्वयं-शासन, आत्मनियन्त्रण अभिप्रेत है। यही अनुशासन या संयम कहलाता है। लोकनीति का यह प्राणभूत तत्त्व है।

लोगों में हम जिस प्रकार का सद्व्यवहार और शुभ व्यवहार कायम करना चाहते हैं, उसको सामने रखकर कानून बनाते हैं। उन कानूनों के अनुसार लोकमत का निर्माण करना हर जिम्मेवार नागरिक का कर्तव्य है। अगर नागरिकों का कोई समुदाय या संस्था इस कर्तव्य को नहीं निभाती, तो कानून का अमल दण्ड के भरोसे कराने की नौबत आती है। दण्ड-शक्ति से कानून का पालन कराने के अवसर जितने समाज में बढ़ेंगे, उतनी लोकसत्ता और नागरिक स्वतन्त्रता क्षीण होती चली जायगी। जिन आदर्शों का और सदाचारों का समाज में हम विकास करना चाहते हैं, उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। उदाहरण के लिए शराब-बन्दी ही ले लें। कांग्रेस, प्रजा-समाजवादी, केवल समाजवादी और कम्युनिस्ट—सभी पक्ष चाहते हैं कि शराबखोरी और नशाबाजी समाज में न रहे। शराब-बन्दी का कानून बने या न बने, इसके विषय में मतभेद भले ही हो; लेकिन शराबखोरी न रहे, इसके विषय में मतभेद नहीं है। कम्युनिस्ट देशों को तो इस बात पर गर्व है कि उन्होंने इस दिशा में आगे कदम बढ़ाया है। एक तरफ तो हम समाज से शराबखोरी का अन्त करना चाहें और दूसरी तरफ अगर शराब की मजलिसों और पार्टियों को सभ्य जीवन तथा आधुनिकता का चिह्न मानें, तो शराब-बंदी के लिए जिस प्रकार के वातावरण की और जिस प्रकार के लोकमत की आवश्यकता है, उस प्रकार का लोकमत किसी हालत में नहीं बन सकेगा। सामाजिक आदर्शों के अनुकूल लोकमत बनाने की जो कोशिश है, वह राज्यनीति नहीं है, वह लोकनीति है।

अधिक संख्या का स्वार्थ वास्तविक लोकमत नहीं है। मान लीजिये कि किसी क्षेत्र में ९५ फीसदी स्पृश्य हैं और सिर्फ ५ फीसदी अस्पृश्य

हैं; तो क्या उस क्षेत्र में कभी कोई यह कह सकेगा कि सवर्णों का स्वार्थ-वाद ही वास्तविक लोकमत है? इसके विपरीत फर्ज कीजिये कि किसी इलाके में अस्पृश्यों की सरकार कायम हो गयी या उनका बहुमत है। अब वे, परम्परा से उनको जो यन्त्रणाएँ भुगतनी पड़ीं, उनका बदला लेना चाहते हैं, तो क्या उनका यह प्रतिशोधवाद वास्तविक लोकमत माना जायगा? एक तीसरा उदाहरण लीजिये। गोरे लोगों की एक भीड़ क्रोध से उन्मत्त होकर दक्षिण अफ्रीका या अमेरिका में किसी नीग्रो की चमड़ी उधेड़ना चाहती है, तो क्या उसका यह सामूहिक उन्माद यथार्थ लोकमत की संज्ञा का पात्र होगा?

लोकतंत्र के लिए यह सब यक्ष-प्रश्न हैं। इन पर लोकतंत्र का जीवन-मरण निर्भर है। जो कमजोर हैं, जिनकी तादाद कम है या जो व्याधिग्रस्त हैं अथवा अपंग हैं, उनकी स्वतंत्रता जहाँ अबाधित रहती है और उनकी सुख-सुविधा का जहाँ प्रबन्ध होता है, वहीं सुशासन या सुव्यवस्था कही जा सकती है। इसीलिए भीड़ की मनोवृत्ति या सामूहिक आवेश न तो लोकमत है, न लोकनीति ही।

हरएक नागरिक की स्वतन्त्रता और अल्पमत की सुरक्षितता वास्तविक लोकतंत्र की कसौटी है। नागरिक व्यक्ति और अल्पसंख्य समुदाय के पास दोनों प्रकार के बाहुबल का अभाव होता है—न तो उसके पास हथियारों की ताकत होती है और न वोटों की। तब उसके अधिकारों का अधिष्ठान क्या हो सकता है? बहुमत का सौजन्य और शुभ व्यवहार ही अल्पमत की स्वतन्त्रता का सहारा हो सकता है। यह दण्ड-निरपेक्ष है और सत्ता-निरपेक्ष है। यही लोकनीति है।

दो व्यक्तियों के आपस के व्यवहार में जहाँ सौदा और कायदा दाखिल होता है, वहाँ स्नेह और विश्वास नहीं रह सकता। जब परस्पर व्यवहार क्षीण होता है, तभी दो व्यक्तियों के संबंध में सत्ता और विधान का प्रवेश होता है। दुनियाभर के सभी सुधारक यही चाहते हैं कि मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार का आधार सौदा और

कायदा न हो। कोई नहीं चाहता कि उसके और उसकी माँ के बीच, उसके और उसके बेटे के बीच, उसके और उसके बाप के बीच तथा उसके और उसकी बीबी के बीच कानून का दखल हो। सौदे का तो खैर, वहाँ सवाल ही नहीं उठता। खानदानियत और कुलीनता की पहचान ही यह है कि कौटुम्बिक व्यवहार में सौदेबाजी और अदालतबाजी का नामोनिशान ही न हो। विनोबा का यही कहना है कि नागरिकों का आपस का व्यवहार मोहब्बत और शराफत की बुनियाद पर होना चाहिए। उसमें आज अगर कानून कहीं दखल देता है, तो वह धीरे-धीरे कम होना चाहिए और आखिर में मिट जाना चाहिए। यही शासन-मुक्त-समाज का अर्थ है। शासन-मुक्त व्यवहार मनुष्यों का सहज व्यवहार है। जहाँ स्वार्थों में टक्कर आ जाती है, वहाँ कानून का प्रवेश होता है। इसका यही इलाज है कि व्यक्तियों के और व्यक्ति-समूहों के स्वार्थों में मुकाबला जिन कारणों से होता है, वे कारण समाज में न रहें। स्वार्थों के मुकाबले के मौके कम हो जायँगे, तो दो नागरिकों के बीच कानून के आने की जरूरत नहीं होगी। जहाँ सौदागिरी कम हो जाती है, वहाँ कौटुम्बिकता कायम होती है। इसका नाम है; 'शोषणमुक्त समाज'। जहाँ विधानवाद और कानूनबाजी का अन्त होता है, वहाँ भी कौटुंबिक रिश्तेदारियाँ कायम हो जाती हैं। इसका नाम है, 'शासनमुक्त समाज'।

सवाल यह नहीं है कि क्या कभी ऐसी तारीख आयेगी, जब कि समाज में हुकूमत के बिना बंदोबस्त होगा, बल्कि सवाल यह है कि हमारा रुख किस तरफ होगा ? क्या हरएक स्वतन्त्रतावादी और लोकतंत्र-वादी नागरिक यह नहीं चाहता कि नागरिकों के जीवन में सौदे का तथा विधि-विधान का अंश कम-से-कम हो ? बस, यही लोकनीति है।

नागरिकों में सांपत्तिक स्पर्धा न हो, यह तत्त्व तो अब सर्वमान्य हो गया है। इसीलिए सभी लोग संग्रह, संपत्ति और स्वामित्व के राज्यीकरण, राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण की बात कहने लगे हैं। दूसरे कई लोग

संग्रह और स्वामित्व के निराकरण की तथा अपरिग्रह और थातीदारी की बात करते हैं। आशय सभी का एक ही है कि आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तियों के बीच स्पर्धा न हो। सेवा और दान के ही लिए क्यों न हो, जो व्यक्ति संपत्ति की प्राप्ति और रक्षण में मग्न होता है, वह प्रायः ऐसे क्षेत्र और अवसर खोजता है, जो अर्जन के लिए और संग्रह के लिए अधिक-से-अधिक अनुकूल हों। उसकी एक दृष्टि और मनोवृत्ति बन जाती है। उसी प्रकार जो व्यक्ति लोक-कल्याण या सार्वजनिक सुप्रबन्ध के उद्देश्य से सत्ता की प्राप्ति और रक्षण में व्यस्त रहता है, वह भी ऐसे क्षेत्र और अवसरों का शोध करता रहता है, जो उसकी उम्मीदवारी के लिए और सफलता के लिए अधिक-से-अधिक अनुकूल हों। जनता के लिए प्रतिनिधित्व अधिक-से-अधिक सुलभ, प्रत्यक्ष और उपयुक्त हो, यह तो लोकतंत्र का मूल विचार है। लेकिन इसके बदले वह यह सोचने लगता है कि मैं या मेरी पार्टी चुनाव में 'सफल' कहाँ से और किस मौसम में हो सकते हैं। लोक-प्रतिनिधित्व की तरफ से घड़ी का लोलक सत्ता-प्राप्ति की तरफ झुकता चला जाता है। उम्मीदवारी के लोकतंत्र में यह और एक गंभीर दोष है। हर पार्टी और उम्मीदवार अपनी हुकूमत का हलका खोजता है। लोकसत्ता के लिए यह भी आवश्यक है कि सत्ता के क्षेत्र में भी स्पर्धा न हो। सांपत्तिक स्पर्धा अगर मनुष्यों के बंधुत्व में बाधा पहुँचाती है, तो क्या सत्ता की स्पर्धा कम बाधा पहुँचाती है ! आर्थिक प्रतियोगिता अगर अनर्थकारक है, तो लोकतंत्र में सत्ता की प्रतियोगिता भी लोक-क्षयकारक है। मुट्ठीभर लोगों के हाथ में संपत्ति और स्वामित्व का केन्द्रीकरण अगर सार्वजनिक अभ्युदय के प्रतिकूल है, तो थोड़े से लोगों के हाथ में राज्य-शक्ति और दण्ड-शक्ति का केन्द्रीकरण भी सार्वजनिक स्वतन्त्रता में बाधक है। इसीलिए इन पृष्ठों में लोकनीति का एक लक्षण सत्ता का विकेंद्रीकरण और अधिकारों का विभाजन भी बतलाया गया है।

अब रही एक और बात। जहाँ वास्तविक लोकतंत्र होगा और यथार्थ स्वातंत्र्य होगा, याने जहाँ नागरिक एक-दूसरे के सुख का विचार

करनेवाले संयमशील और अनुशासन-प्रिय होंगे, वहाँ लौकिकता और पवित्रता में कोई अंतर नहीं रह जायगा। जो Secular है, वह Secred भी होगा। लौकिकता ही नैतिकता होगी। लोक-व्यवहार ही जब सदाचारमूलक और नीतिमय बन जाता है, तब सर्वत्र यथार्थ लोकनीति विराजती है। लोकनीति के ये निकष समाज में कायम करने के लिए उन व्यक्तियों का परामर्श उपयोगी सिद्ध होता है, जिन्होंने अपरिग्रह का और सत्ता-निरपेक्ष जीवन का व्रत लिया हो। ये लोग सत्ता और दण्ड के प्रयोग के बिना सभ्य लोकमत का विकास करते हैं और लोक-चारित्र्य की नींव रखते हैं। ये लोकात्मा के वास्तविक उपासक होते हैं। यही लोकनीति के अभिभावक होते हैं।

लोकतंत्र का अधिष्ठान कुछ ऐसे लोकधर्म हैं, जिनका उल्लंघन कोई सत्ताधारी पक्ष, समूह और स्वयं सर्वसत्ता का स्रोत जनता भी नहीं कर सकती। भगवान् शंकराचार्य ने तो ईश्वर के ऐश्वर्य की भी यह मर्यादा बतलायी है कि वह अपनी नियति का भंग स्वयं भी नहीं कर सकता, इसीमें उसके ऐश्वर्य का गौरव है। उसी प्रकार लोकनीति के जो प्राण-भूत मूल्य हैं, उनका उल्लंघन सर्वसत्तासंपन्न लोक-समुदाय सर्वसम्मति से भी नहीं कर सकता। यही लोकतंत्र की मर्यादा और प्रतिष्ठा है। सभी प्रगतिशील व्यक्तियों ने संसारभर में दो बातें शुद्ध लोक-व्यवहार के लिए आवश्यक मानी हैं। एक तो यह कि भक्त और भगवान् के बीच में कोई पुरोहित या उपाध्याय न हो और दूसरी यह कि चीज बनाने-वाले के और बरतनेवाले के बीच में कोई बिचौनी न हो। इन्हीं दो उद्देश्यों को लेकर आज तक दुनिया में धर्म-सुधार हुए हैं। अब एक कदम आगे रखना है। परलोक और व्यापार के क्षेत्र में जिस तत्त्व को हमने स्वीकार किया, उसीको लोकसत्ता के और सार्वजनिक सुप्रबन्ध के क्षेत्र में भी स्वीकार करना है। नागरिक व्यवस्था में व्यवस्थापकों की और प्रतिनिधियों की संख्या अल्पतम होनी चाहिए। यही प्रत्यक्ष लोकसत्ता है, साक्षात् लोकतंत्र है। इस दिशा में कदम बढ़ाने के लिए पारिवारिक

भावना से अभिमंत्रित मर्यादित क्षेत्रों की आवश्यकता है। इसीका नाम 'ग्राम-स्वराज्य' है।

सारांश यह कि राज्यनीति और लोकनीति की भूमिका में तथा प्रक्रिया में मूलभूत अंतर है :

१. राजनीति से राज्यवाद पुष्ट होता है। लोकनीति से नागरिक के पुरुषार्थ को प्रोत्साहन मिलता है।

२. राज्यनीति राज्य-संस्था को लोक-कल्याण का मुख्य उपकरण मानती है, इसलिए वह लोगों को राज्यावलम्बी एवं सत्ताभिमुख बनाती है। लोकनीति नागरिकों को एक-दूसरे की स्वतन्त्रता के अभिभावक मानकर उनके अभिक्रम से स्वायत्त संस्थाओं के द्वारा लोकहित का मार्ग प्रशस्त करती है।

३. राज्यनीति में प्रशासन अधिक विस्तृत और तीव्र होता जाता है, लोकनीति में प्रशासन की जगह अनुशासन और आत्मसंयम लेता है।

४. राज्यनीति में सत्ता की प्रतिस्पर्धा और अधिकार-ग्रहण तथा प्रतिनिधित्व के लिए उम्मीदवारी होती है, लोकनीति में लोक-चारित्र्य के विकास के लिए सेवा की तत्परता होती है, उम्मीदवारी का निषेध होता है।

५. राज्यनीति में प्रत्येक नागरिक अपने-अपने अधिकार और स्वत्व के प्रति नित्य जागरूक रहता है, लोकनीति में हर नागरिक अपने कर्तव्य के प्रति और पड़ोसी के अधिकार के प्रति जाग्रत रहता है।

विनोबा ने अपने भाषणों में जगह-जगह अपनी अनुपम शैली में और अननुकरणीय विवेचन-पद्धति से निरूपण किया है। यहाँ हृदय की उदात्त भावुकता, विचारों की सूक्ष्मता और निरूपण की कलात्मकता, सभी गुण हैं। पाठक स्वयं ही रसास्वादन करें।

राजघाट, काशी
२१-४-'५८

अनुक्रम

(खण्ड पहला)

(खण्ड दूसरा)

(खण्ड तीसरा)

लोक-नीति की ओर

खण्ड पहला

ऋषि-अनुशासन : १ :

तीन प्रकार के राज्य

बहुत प्राचीन काल में एक बात थी। राजा थे, किन्तु लोग उन्हें चुनते थे; पर वे ऋषियों की सलाह लेते थे। कोई भी बड़ी बात निकली, सवाल पैदा हुआ कि वे ऋषि के पास जाते और उनकी सलाह से राज्य चलाते थे। उस समय ऋषि का राज्य था; पर वह गद्दी पर नहीं बैठता था, अपने आश्रम में ही रहता था। राजा ही बार-बार दौड़कर ऋषि के पास जाता था। ऋषि ध्यान एवं चिन्तन कर राजा के सवालों का जवाब देता और राजा उसकी बात सुनता। राजा दशरथ वशिष्ठ ऋषि के कहने के अनुसार चलता था। जब विश्वामित्र ने दशरथ से लड़के माँगे, तो उसे देने का मन नहीं हुआ, क्योंकि उस समय लड़के छोटे थे। उसने देने से इनकार कर दिया। पर जब वशिष्ठ ने कहा : "तुम कैसे बेवकूफ हो ! जब विश्वामित्र तुमसे लड़कों को माँगता है, तो तुम्हारे देने में ही उनका कल्याण है।" बस, ऋषि की आज्ञा होते ही राजा ने बात मान ली और लड़के सौंप दिये। वे ऋषि चुने नहीं जाते थे। वे आश्रम में ही बैठकर ध्यान, चिन्तन करते और दुनिया की भलाई सोचते थे। वे इन्द्रिय-निग्रह, एकान्त-तपस्या, उपवास आदि करते, कन्द-मूल खाते और काम, क्रोध आदि को जीतने की कोशिश करते थे। ऐसे ऋषियों की बात राजा मानते और उनके कहे अनुसार राज्य चलाते थे।

राज्य तीन प्रकार के होते हैं : १. ऋषि का राज्य, २. राजा का राज्य और ३. ज्यादा लोगों का राज्य। बीच के जमाने में जब राजा का राज्य चलता था, तब राजा भला हो, तो जनता सुखी और भला न हो, तो दुःखी होती थी। याने वह तो नसीब का खेल था। पर अब लोगों की अक्ल से राज्य चलता है। लोग मूर्ख हों, तो चुने जानेवाले मूर्खों के सरदार होते हैं और लोग पढ़े-लिखे हों, तो चुने जानेवाले अक्लवालों के सरदार होते हैं। इसीलिए लोग पढ़े-लिखे होने चाहिए। पर यह जब होगा तब होगा, आज तो लोग मूर्ख ही हैं। तो, लोगों का राज्य, राजा का राज्य और ऋषि का राज्य—इनमें से आपको जो अच्छा लगे, उसे चुन लें।

आज की पद्धति का खतरा

अक्सर कहा जाता है कि ऋषि की अक्ल का राज्य अच्छा होता है। पर ऋषि कौन है, यह कैसे पहचाना जाय? इसलिए ऋषि का राज्य अच्छा होने पर भी चल नहीं सकता। राजा का राज्य तो खराब है ही। इसीलिए आज लोगों का राज्य चलता है। इसमें लोग शराब चाहते हों, तो सरकार को शराब की दूकानें खोलनी पड़ती हैं और लोग नहीं चाहते, तो बन्द करनी पड़ती हैं। लोग बाहर से अनाज मँगाना चाहें, तो सरकार को बाहर से लाना पड़ता है। इसका मतलब यह है कि लोगों की मर्जी की बात है। याने ज्यादा लोग जिस बात को मानते हों, वह बात होती है। लेकिन ज्यादा लोग जिस बात को मानते हों, वह अच्छी ही होगी, यह नहीं कहा जा सकता। इसीलिए ऋषि की तलाश में जाना पड़ता है और उनकी राय लेनी पड़ती है। कई बार सज्जनों की राय एक होती है और लोगों की दूसरी। तो, इस समय किसकी राय मानें, यह सोचने की बात है। आज की राज्य-पद्धति में यही सबसे बड़ा खतरा है। यदि लोग यह न पहचानें कि किसे चुना जाय, तो सारा कारोबार अन्धों का हो जायगा। फिर भी हमने एक पद्धति शुरू की है। उसमें

खतरा होगा, तो उठायेंगे। फिर लोगों की अक्ल बढ़ेगी और लोग अच्छे व्यक्तियों को चुनेंगे।

मनु की कहानी

मनु महाराज तपस्या कर रहे थे। प्रजा राज्य-कारोबार चलाती थी। लेकिन अच्छा राज्य नहीं चलता था। इसलिए लोग मनु के पास गये और उससे उन्होंने प्रार्थना की कि आप राजा बन जायँ। मनु ने कहा कि "मैं तो तपस्या कर रहा हूँ। यह छोड़कर राजा का काम करूँगा, तो आपको मेरी सब बातें माननी होंगी। फिर कभी यह मत कहना कि हम इस बात को नहीं मानते।" जब प्रजा ने यह कबूल किया, तब मनु महाराज राजा बने। समाज में ऐसे लोग होने चाहिए, जो चुनाव में न जायँ। मनु को यह साठ और चालीसवाला मामला मंजूर नहीं था। उन्होंने कहा कि सब लोग चाहते हों, तो हम आयेंगे; नहीं तो राम-नाम लेंगे। याने मुझे 'सौ में से सौ' का मत मिलना चाहिए। केवल 'बहुमत' से मैं राजा बनना नहीं चाहता।

अलिप्त सेवकों की आवश्यकता

जो चुनाव से अलग रहें और ठीक ढंग से चिन्तन-मनन करें, वे ही लोग शासक होने चाहिए। दुनिया का खेल तो चलता ही है, पर वह ठीक से चलता है या नहीं, यह देखनेवाला खिलाड़ी नहीं हो सकता। खेल से दूर रहनेवाला ही यह पहचान सकता है। जो खेल से अलग खड़ा हो, वही जान सकता है कि खेल में कहाँ कौन-सी गलतियाँ हो रही हैं। इसीलिए कुछ लोग ऐसे चाहिए, जो चुनाव के खेल से अलग रहें और शान्ति से चिन्तन, मनन और भक्ति करें। वे लोगों की हालत देखें। जहाँ लोगों की गलती हो, वहाँ उन्हें बतायें और जहाँ राज्य चलानेवालों की गलती हो, वहाँ उन्हें बतायें। फिर वे मानें या न मानें, यह उनकी मर्जी की बात है। उनके कथनानुसार कोई चलता है या नहीं, इसकी उन्हें परवाह न होनी चाहिए। उनका काम तो केवल अध्ययन, चिंतन,

मनन और दुनिया की सेवा ही होना चाहिए। राजा और प्रजा, दोनों की गलती वे ही बता सकते हैं, जो केवल सेवा करते हों।

सर्वोदय-समाज के लोग

इसी कल्पना को लेकर हमने गांधीजी के जाने के बाद सर्वोदय-समाज बनाया। हमने चाहा कि इसमें केवल सेवा करनेवाले हों, जो चुनाव में न पड़ें। भगवान् कृष्ण ने कहा था कि "कौरव और पाण्डवों को लड़ना हो, तो लड़ सकते हैं। मैं तो अर्जुन के रथ का सारथी बनूँगा, लेकिन लड़ाई में हिस्सा नहीं लूँगा।" फिर भी उन्हें एक बार शस्त्र हाथ में लेना पड़ा, पर व्यास-मुनि तो अलग ही रहे। जब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र फेंका और फिर अर्जुन ने भी फेंका, तो दुनिया का संहार होने लगा। उस समय व्यास-मुनि बीच में आये और उन्होंने अर्जुन से कहा कि तुम ब्रह्मास्त्र रोको। अर्जुन ने उनका कहना मान लिया। इस तरह उन्होंने लड़ाई में तो हिस्सा नहीं लिया, पर दुनिया को संहार से बचाने के लिए बीच में आ गये। ऐसे ही कुछ लोग होने चाहिए।

सर्वोदयी शासक और प्रजा की कड़ी

सर्वोदयवाले वे होंगे, जो राजा और प्रजा, दोनों के बीच खड़े होंगे। इनका काम होगा : दोनों की गलतियाँ बताना, दोनों में प्रेम बढ़ाना, एक-दूसरे का सन्देश एक-दूसरे के पास पहुँचाना और प्रजा का बल बढ़ाना। वे न सरकार में शामिल होंगे और न लोगों में। वे दोनों से अलग रहेंगे और उनके सच्चे सेवक होंगे। वे दोनों के गुण-दोष जहाँ दीख पड़ेंगे, बतायेंगे, सबसे प्रेम करेंगे; पर किसी भी दल में दाखिल नहीं होंगे। पार्टियों के कारण गाँव के टुकड़े पड़ते हैं, उससे सारा गाँव बरबाद हो जाता है। इसलिए वे लोग तो मनुष्य के नाते ही सबकी सेवा करेंगे। हिन्दुस्तान में तो अनगिनत जातियाँ हैं, जैसे पेड़ के पत्ते। लेकिन सर्वोदय-समाज ने कहा है कि हम हजार प्रकार नहीं चाहते। क्या गंगा-जल कभी पूछता है कि तू गाय है या शेर या बकरी? वह तो यही कहता है कि तू प्यासा है,

तो तेरी प्यास बुझाना मेरा कर्तव्य है। जैसे गंगा-जल को भेद मालूम नहीं, वह सबके साथ समान व्यवहार करता है, वैसे ही बापू ने हमें यह तालीम दी है कि सब पर प्यार करो। पार्टी, जाति आदि मत देखो, सत्ता हाथ में मत लो।

डींग
१७-५-'५२

हमारी प्राचीन ग्राम-रचना

अंग्रेजी-राज आने के बाद यहाँ की पुरानी सभ्यता टूट गयी। पहले यहाँ ग्राम-सभाएँ होती थीं, पंचायत का राज चलता था। गाँव की पैदावार, गाँव की तालीम, गाँव की रक्षा आदि गाँव का सारा महत्त्व का कारोबार पंचायत ही करती थी। पंचायत का मतलब है, पाँचों जातिवाले मिलकर काम करते थे। वह एक किस्म की सामुदायिक योजना थी। सारी जमीन पंचायत की थी। और किसान को काश्त करने के लिए उसका एक हिस्सा दिया जाता था। वैसे ही धोबी, नाई आदि सभी को एक-एक हिस्सा दिया जाता था। इस तरह सारा गाँव एक परिवार की तरह रहता था और गाँव में पंचायत का राज चलता था। इसीको असली स्वराज कहते हैं।

पकरी बरावाँ
२१-४-'५३

उपनिषद्कालीन राज्य का वर्णन

एक राजा उपनिषद् में अपने राज्य का वर्णन करता है :

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः, न मद्यपः।
न अनाहिताग्निः न अविद्वान्……… ॥

अर्थात् मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है। कोई कंजूस नहीं है। जहाँ कंजूस होते हैं, वहाँ चोर होते हैं। हमने कई दफा कहा है कि कंजूस चोरों

का बाप होता है। कंजूस ही चोरी को बढ़ावा देते हैं। उसने यह भी कहा था कि मेरे राज्य में कोई भी मद्य नहीं पीता। उस समय हिन्दुस्तान में कोई भी मद्य नहीं पीता था। लेकिन अंग्रेजों ने शराब को फैशन बनाया और शहरों में शराब खुले आम चली। आज उसे रोकने में भी हमें डर लगता है। उस राजा ने यह भी कहा कि मेरे राज्य में कोई अविद्वान् नहीं है—ऐसा कोई नहीं है, जो पढ़ना-लिखना नहीं जानता। और मेरे राज्य में ऐसा भी कोई नहीं है, जो भगवान् की पूजा नहीं करता। याने बहुत ही प्राचीन काल से यहाँ विद्या चली आ रही है। किन्तु आज हमें आत्मज्ञान और विज्ञान, दोनों का अध्ययन करना है। प्राचीन काल से चला आने-वाला ज्ञान हासिल करना है और पश्चिम की ओर से विज्ञान भी लेना है। नालन्दा के खँडहर हमें यही सिखाते हैं। इसी तरह हमें अपने गुणों का विकास करना चाहिए।

नालन्दा
१७-८-'५२

खण्ड दूसरा

शक्ति का अधिष्ठान : २ :

स्वराज्य से पूर्व राजनीति में शक्ति

हम लोगों की कुछ दिशा-भूल हो रही है। हम लोगों के ध्यान में एक बात नहीं आती कि जब देश विदेशियों के हाथ में रहता है और आजादी हासिल करने का सवाल आता है, तब शक्ति का अधिष्ठान राजनीति में रहता है। इसलिए महात्मा लोग भी राजनीति में हिस्सा लेना अपना कर्तव्य समझते हैं। तिलक महाराज से पूछा गया कि स्वराज्य प्राप्त करने के पश्चात् आप क्या करेंगे, तो उन्होंने कहा था कि "मैं तो ज्ञान की उपासना करूँगा, विद्यार्थियों को पढ़ाऊँगा।" उन्होंने ऐसा इसलिए कहा था कि अध्यापन-अध्ययन उनके जीवन की तृप्ति का आन्तरिक विषय था। दिनभर राजनैतिक काम करने के बाद रात को जब वे सोने जाते, तो वेदाभ्यास कर लेते, ऐसी उनकी ज्ञानपिपासा थी। फिर भी वे राजनीति में पड़े। वे जानते थे कि यदि इस वक्त राजनीति में नहीं पड़ते हैं, तो किसी भी तरह की सेवा करना मुश्किल होगा। इसलिए उस समय उन्होंने राजनीति को 'परम धर्म' माना। तात्पर्य यह कि जिस पुरुष का प्रेम राजनीति में न हो, उसे भी देश की परतन्त्रता की स्थिति में राजनीति में उतरना पड़ता है, क्योंकि वहाँ त्याग का अवसर होता है और त्याग में ही शक्ति का अधिष्ठान होता है।

शक्ति का अधिष्ठान समाज-सेवा में

लेकिन जब देश स्वतन्त्र हो जाता है, तब शक्ति का अधिष्ठान बदल जाता है। तब शक्ति राजनीति में नहीं, समाज-सेवा में रहती है; क्योंकि

फिर समाज का ढाँचा बदलना होता है, आर्थिक विषमता मिटानी होती है। ये सारे काम सामाजिक क्षेत्र में करने पड़ते हैं। उसमें त्याग के प्रसंग आते हैं, कष्ट सहन करने पड़ते हैं, भोग-लालसा को संयम में रखना पड़ता है, वैराग्य की जरूरत पड़ती है। इसलिए शक्ति इसी क्षेत्र में रहती है। लेकिन जिन्हें इसका भान नहीं होता, वे गलतफहमी में रहते हैं कि शायद शक्ति का अधिष्ठान अब भी राजनीति में ही है और वे उसी क्षेत्र की ओर दौड़ जाते हैं। वहाँ सत्ता तो रहती है, लेकिन शक्ति नहीं।

सत्ता और शक्ति में बहुत अन्तर है। थोड़ा विचार करने से ही इन दोनों का फर्क मालूम हो जाता है। सत्ता में एक पद तो प्राप्त होता है। और, जब देश स्वतन्त्र हो गया और सत्ता हाथ में ले ली, तो वहाँ जाना जरूरी हो जाता है। लेकिन वहाँ इने-गिने लोग ही जा सकते हैं। वहाँ एक सीमित क्षेत्र होता है, उसमें संविधान और कानून की सीमा होती है, उसके भीतर रहकर मालिक जिस तरह की सेवा चाहता है, उस तरह की सेवा उसे करनी पड़ती है। लेकिन वहाँ भी मनुष्य को जाना पड़ता है और वहाँ मोह भी काफी है। कदम-कदम पर मोह, लोभ और लालच के अवसर आते रहते हैं, गिरने की सम्भावना रहती है। इसलिए वहाँ जनक महाराज जैसे निर्लिप्त वृत्तिवाले लोगों की आवश्यकता होती है। चन्द लोग ही वहाँ जा सकते हैं। उनकी तादाद बहुत कम होगी। बाकी अधिक लोग जो रह जाते हैं, उन्हें सामाजिक क्षेत्र में काम करना चाहिए और देश को आगे ले जाने की शक्ति निर्माण करनी चाहिए।

आज समाज की जो स्थिति है, उसे स्वीकार कर सेवा करना सत्ता-वालों के लिए भी सरल नहीं। मिसाल के तौर पर कोई भी सत्ताधारी सत्ता के आधार पर हिन्दुस्तान में बीड़ी बन्द नहीं कर सकता, क्योंकि आज का समाज उस बुरी आदत को नहीं छोड़ सकता। इस बुरी आदत से छुड़ाना उन लोगों का काम है, जो सामाजिक क्षेत्र में सेवा करते हैं। समाज-सेवक इसके खिलाफ समाज को आगे ले जाने का काम कर सकता है और अनुकूल वातावरण बन जाने पर सत्ताधारी बीड़ी को बन्द करने

का कानून बना सकते हैं। अमेरिका में आज शराबबन्दी नहीं हो सकती; क्योंकि वहाँ का समाज शराबबन्दी के लिए अनुकूल नहीं है। हिन्दुस्तान में शराबबन्दी हो सकती है, क्योंकि यहाँ की भूमि में उसके अनुकूल वातावरण मौजूद है।

राजनैतिक सत्ता में समाज को आगे ले जाने की अधिक शक्ति नहीं। वह शक्ति और वृत्ति सर्वबन्धनों से निर्लिप्त, सर्वस्थानों से अलिप्त, सेवापरायण वृत्ति से समाज की सेवा करनेवालों में ही हो सकती है। क्योंकि इस वस्तु का भान राजनैतिक कार्यकर्ताओं को नहीं है, वे उसी क्षेत्र में जाने का प्रयत्न करते हैं। अगर यह भान हो, तो बहुत सारे लोग सामाजिक क्षेत्र में आने की कोशिश करेंगे।

गांधीजी ने इसीलिए दूर दृष्टि से 'लोक-सेवक-संघ' बनाने की सलाह दी थी, जिसे हमने नहीं माना। उसके लिए किसीको दोषी नहीं ठहराया जा सकता। जिन्होंने कांग्रेस को कायम रखा, उनके पीछे भी एक विचार था। चाहे उस विचार में गलती हो, पर मैं उसे मोह नहीं कहूँगा। लेकिन अब कांग्रेस के सामने ऐसा कोई कार्यक्रम चाहिए, जिससे रोजमर्रा कुछ त्याग के प्रसंग आयें। जब तक कांग्रेस के सभासदों की कसौटी उस कार्यक्रम पर नहीं होती, तब तक कांग्रेस की शुद्धि मृगजलवत् होगी, ऐसी मेरी नम्र राय है।

इसलिए मेरे जो मित्र आज कांग्रेस में हैं, और जो किसान-मजदूर प्रजापार्टी में या समाजवादी-पार्टी में हैं, उन सबसे मेरा कहना है कि जो लोग राजनीति में जाना चाहते हैं, उन्हें मैं 'ना' नहीं कहता, परन्तु बाकी सबको समाज-सेवा में लग जाना चाहिए। वरना समाज की प्रगति कुंठित हो जायगी। इतना ही नहीं, समाज नीचे भी गिर सकता है। इसलिए एक बड़ी जमात समाज में ऐसी होनी चाहिए, जो निरन्तर सेवा में लगी रहे, जागरूकता के साथ सेवा करती रहे। उसे राजकाज का अनुभव भी रहे, लेकिन सत्ता से अलग रहकर निर्भयता के साथ तटस्थ-बुद्धि से अपने विचार जाहिर कर सके, जिसका नैतिक असर सरकार और

लोगों पर पड़ सके। वही ऐसी जमात हो सकती है, जो सत्ता में न पड़े—सत्ता की मर्यादा समझकर—घृणा से नहीं, वल्कि यह समझकर कि शक्ति का अधिष्ठान सत्ता में नहीं, समाज-सेवा में है।

सत्ता से अलग सर्वोदय-समाज

आजकल यह खयाल हो रहा है कि बहुमत के खिलाफ एक विरोधी दल होना चाहिए, नहीं तो लोकतन्त्र का रूपान्तर फासिज्म (एकतन्त्र) में हो सकता है। यह सारी पश्चिम की परिभाषा है, और चूँकि हमने लोकतन्त्र का विचार पश्चिम से ही ग्रहण किया है, इसलिए वह परिभाषा भी रहेगी और वह विचार भी रहेगा। यह खयाल गलत नहीं है। इसलिए बहुमत के अलावा अल्पमतवालों का भी आदर कर दोनों—चाहे राज-नीति में विरोधी हों—मिलकर रहें और परस्पर प्रेम से काम करें; प्रेम में कोई फर्क न आने दें। इससे कुछ नियन्त्रण रहेगा और सत्ताधारियों की शुद्धि होगी। वे गलतियाँ करने से बचेंगे।

लेकिन इतने से काम पूरा नहीं होता। देश की शुद्धि का और देश की उन्नति का काम तभी होगा, जब सत्ता के दायरे से अलग रहकर सब तरह से विवेकशील, अध्ययनशील, त्यागशील सेवकों की एक जमात कायम होगी। हमने ऐसे समाज को 'सर्वोदय-समाज' का नाम दिया है। सर्वोदय कोई पंथ नहीं, उसमें कोई काम अनिवार्य नहीं, उसमें कोई कड़ा अनु-शासन नहीं। प्रेम से विचार समझकर सर्वोदय की सेवा करनी चाहिए।

राजघाट, दिल्ली
१४-११-'५१

'सेक्युलर स्टेट' का अर्थ : ३ :

सेक्युलर स्टेट और दशविध धर्म

एक जगह एक भाई ने कहा : "मनु महाराज ने धर्म के दशविध लक्षण बताये हैं, लेकिन हमारी सरकार कहती है कि हम तो धर्म को नहीं मानते। तब हमारा क्या कर्तव्य होता है ? हम मनु महाराज की आज्ञा का अनुसरण करें या इस धर्म-विहीन सरकार की कल्पना का ?"

अक्सर देखा जाता है कि बहुत-से सन्देह शब्दमूलक होते हैं। शब्दों का ठीक प्रयोग नहीं किया जाता, इसलिए बहुत-सी गलतफहमियाँ हुआ करती हैं। मनु महाराज ने दशविध धर्म बताया है। ईसा की दशविध आज्ञा क्रिस्ती और यहूदी-धर्म में मशहूर हैं। वे दस आज्ञाएँ और मनु महाराज के दशविध धर्म एक ही हैं। बल्कि यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखें, तो शायद ऐसा ही निष्कर्ष निकलेगा कि मनु महाराज की दशविध आज्ञाएँ रूपान्तरित होकर यहूदी और क्रिस्ती धर्म में पहुँच गयी हैं। मनु एक अत्यन्त प्राचीन ऋषि हो गये हैं। 'मनुस्मृति' तो उस हिसाब से बहुत अर्वाचीन ग्रंथ है, लेकिन मनु स्वयं बहुत प्राचीन हैं। उनके वचनों का हमारे समाज में इतना असर था कि वैदिक-धर्म में एक स्थान पर कहा है : **'यत् किंच मनु अवदत् तद् भेषजम्।'** मनु ने जो भी कहा है, भेषज है, हितकारी पथ्य है, औषधि है। औषधि कड़वी मालूम पड़े, तो भी परिणाम गुणकारी होता है। इसलिए उसे जरूर सेवन करना चाहिए। ऐसा वाक्य मनुस्मृति में भी है। लेकिन वह आधुनिक मनुस्मृति को ध्यान में रखकर नहीं, बल्कि प्राचीन मनु-वचन को, जो श्रद्धा से परम्परागत समाज में पहुँच गया है, ध्यान में रखकर कहा गया है।

उसका एक-एक लक्षण ऐसा है, जिसके बगैर न तो समाज का धारण हो सकता है और न व्यक्ति का जीवन ही उन्नत हो सकता है। उस आज्ञा में एक 'अस्तेय-व्रत' है, यानी चोरी न करना। अस्तेय तो धर्म-

संगत है। क्या हमारी धर्मातीत सरकार चोरी चाहेगी? उसमें 'शौच' भी एक धर्म है, तो क्या हमारी सरकार सफाई और आरोग्य नहीं चाहेगी? उसमें 'विद्या' का उल्लेख है, तो क्या सेक्युलर स्टेट में विद्या न रहेगी, अविद्या रहेगी? और वहाँ धर्म को सत्य बताया है, तो हमारी सरकार ने भी 'सत्यमेव जयते' यह बिरुद बनाया है। यह बिरुद-वाक्य उपनिषदों से लिया है, जो इस भारत-भूमि के मूल ग्रन्थों में से है।

सारांश, 'धर्म' शब्द इतना विशाल और व्यापक है कि उसके सारे अर्थ बतानेवाला शब्द मैंने अब तक किसी भाषा में नहीं देखा। सारे अर्थ तो जाने दीजिये, उसके बहुत-से अर्थवाला भी कोई शब्द मैंने नहीं पाया। इसलिए जो लोग सरकार को धर्म-विहीन कहते हैं, वे तो मानो गाली देते हैं। और जो धर्मातीत या धर्म के बाहर है, वह सिवा अधर्म के और क्या हो सकता है? बल्कि अगर हम इतना भी कहें कि सरकार 'सेक्युलर' यानी 'धर्म से असम्बद्ध' है, तो भी अर्थ ठीक नहीं हो पाता। अतः धर्म से असम्बद्ध, उससे विहीन अपनी सरकार को बताना एक निरा भ्रम-प्रचार ही होगा। ऐसा भ्रान्त प्रचार काफी हुआ है और कुछ जाननेवाले अच्छे लोगों ने भी इस तरह की टीका की है।

वेदांती सरकार, लोकयात्रिक सरकार

'सेक्युलर' शब्द का तर्जुमा अपनी भाषा में हम किस तरह करें, यह व्यर्थ का सवाल हमारे सामने पेश हुआ है। 'सेक्युलर' का अर्थ अगर हम पन्थातीत या अपांथिक करें, तो भी ठीक अर्थ प्रकट नहीं होता। 'पंथ' याने मार्ग, जिसे अंग्रेजी में 'पाथ' कहते हैं। तो 'पंथातीत' याने 'मार्ग-विहीन' सरकार हुई। किन्तु वह शब्द तो 'गुमराह' का पर्याय है। इसके लिए 'अपांथिक' शब्द भी नहीं चल सकता।

इसलिए 'सेक्युलर' शब्द का अर्थ बताने के लिए मैंने 'वेदान्ती' शब्द चुन लिया। हमारी सरकार 'वैदिक' नहीं होगी, बल्कि 'वेदान्ती' होगी। वेदान्त में किसी उपासना का निषेध नहीं है। जितनी उपासनाएँ हैं,

सबको वेद समान भाव से देखते हैं। फिर भी वेदान्त की अपनी निज की कोई उपासना नहीं रखी, इसलिए अगर हम वेदान्ती सरकार कहें, तो कुछ अच्छा अर्थ प्रकट होता है।

एक दफा रामकृष्ण-आश्रम के एक संन्यासी कहने लगे : "हमारा देश किधर जा रहा है?" अक्सर देखा गया है कि रामकृष्ण मिशन के लोगों में किसी प्रकार की साम्प्रदायिक भावना नहीं होती। फिर भी उस संन्यासी भाई ने वैसा सवाल किया। मैंने पूछा : "किधर जा रहा है?" वे बोले : "सेक्युलर स्टेटवाले तो आध्यात्मिक मूल्यों से इनकार करते हैं!" मैंने कहा : "अगर ऐसी बात होती, तो सत्य को बिरुद न बनाया जाता।" इसलिए मेरा तो कहना है कि अंग्रेजी शब्द के कारण ही सारी गड़बड़ी हुई है। मैंने सेक्युलर के लिए वेदान्ती शब्द का प्रयोग किया है। हमारी सरकार मेरी दृष्टि से 'वेदान्ती सरकार' है। जिस वेदान्त को आप मानते हैं, उसे वे भी मानते हैं।

मैंने उनसे कहा कि हमारे यहाँ २१ वर्ष के बाद हरएक को वोट का अधिकार है। आप २१ साल की आयुवाली बात भूल जाइये। परन्तु हरएक को हमारे विधान में जो एक वोट का अधिकार दिया गया है, वह किस बुनियाद पर दिया गया है? अगर शरीर की बुनियाद पर दिया गया होता, तो हरएक के शरीर में भेद है, एक का शरीर दूसरे के शरीर से भिन्न होता है, किसीका शरीर दूसरे के शरीर से तिगुना भी बलवान् हो सकता है। अगर शरीर की बुनियाद हो, तो एक को एक वोट दिया जाय, तो दूसरे को दो, तीन या चार भी देने होंगे। अगर बुद्धि की बुनियाद पर अर्थ लगाते हैं, तो एक की बुद्धि दूसरे की बुद्धि से हजार-गुना कम-बेश हो सकती है, क्योंकि बुद्धि में तो हजारगुना फर्क हो सकता है। फिर एक वोट का आधार इसके सिवा क्या हो सकता है कि हरएक में एक आत्मा विराजमान है। सिवा आत्म-ज्ञान की बुनियाद के इसका और कोई आधार हो नहीं सकता। हाँ, २१ वर्ष उम्र की कैद है। मनुष्य को वोट है, पशु को नहीं। फिर किस बुनियाद पर उसे 'सेक्युलर' कहा?

एक तो यह कि हमारा बिरुद 'सत्यमेव जयते' है और दूसरा यह कि सबको ही समान माना गया है। दोनों को मिलाकर स्टेट सेक्युलर बन सकता है। याने सेक्युलर स्टेट का आधार आत्मज्ञान ही है।

उन्होंने पूछा कि "क्या आप जाहिरा तौर पर कह सकते हैं कि सरकार वेदान्ती है?" मैंने कहा कि मैं जाहिरा तौर पर नहीं कहूँगा। आपको समझाने के लिए मैंने इस शब्द का प्रयोग किया है। हमारी सरकार नास्तिक नहीं है। वह आध्यात्मिक मूल्यों को मानती है, आत्मा को मानती है, उसकी समानता को मानती है। फिर भी वेदान्त जितनी गहराई में वह नहीं जा सकती। अब अगर हम एक शब्द सेक्युलर का तर्जुमा नहीं कर सकते और भाव तो प्रकट करना ही है, तो **'निष्पक्ष न्यायनिष्ठ व्यावहारिक'** सरकार कह सकते हैं। एक ही किन्तु कठिन संस्कृत शब्द में कहना हो, तो **'लोक-यान्त्रिक'** सरकार कह सकते हैं। याने वह सरकार, जो लोकयात्रा के बल पर जनता को चलाना चाहती है। शब्द कठिन अवश्य है, लेकिन उससे कठिनाई कुछ दूर हो सकती है।

अंग्रेजी ही गलतफहमी की जड़

पर यह सारी आफत क्यों? इसलिए कि हमारी सरकार का सारा चिन्तन अंग्रेजी में होता है, फिर उसका तर्जुमा करना पड़ता है। किसी भाषा का अनुवाद दूसरी भाषा में एकदम ठीक नहीं होता। अगर हम अपनी जबान में सोचते होते, तो वे सारी गलतफहमियाँ टल जातीं, जो आज हो रही हैं और जिसके कारण यह सब कठिनाई आ रही है।

अंग्रेजी भाषा को पन्द्रह साल का जीवन दे दिया गया है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि हमारी सरकार का कारोबार किस तरह चलता है, उसका ज्ञान हमारे यहाँ के एक पढ़े-लिखे किसान को भी उतना हो सकता है, जितना कि इंग्लैण्ड और अमेरिका के लोगों को होता है। जनता को अँधेरे में रखना ठीक नहीं। ऐसी हालत में अंग्रेजी भाषा से जितने शीघ्र मुक्त हो सकते हैं, होने की आवश्यकता है और इस आवश्यकता को मैं कदम-कदम पर देख रहा हूँ। वेदान्ती शब्द इतना महान् है

कि वह भारतीय जनता के लिए प्राण के समान है, लेकिन अब उसे टालने की वृत्ति हो रही है।

सेक्युलर शब्द के कारण बड़े-बड़े लोगों में गलतफहमी होती है। अगर किसी स्कूल में वेद की प्रार्थना होती है, तो पूछते हैं कि सेक्युलर स्टेट की सरकार में वैदिक मन्त्र कैसे पढ़ा जा सकता है ? गत सप्ताह मैं अलीगढ़ विश्वविद्यालय में गया था। वहाँ के विद्यार्थियों और प्रोफेसरों ने बहुत ही प्रेम से मेरा स्वागत किया। मैंने उन्हें जो बातें बतायीं, वे साधारण नहीं थीं, गम्भीर थीं। मैंने सब धर्मों की शुद्धि की बात कही थी और इसलाम की शुद्धि की व्याख्या भी की थी। उन लोगों का रिवाज है कि आरम्भ में खड़े होकर 'कुरान' की आयत पढ़ें। जाकिर हुसेन साहब ने मुझसे पूछा, तो मैं बहुत खुशी से खड़ा हो गया। सारा कार्यक्रम बड़े प्रेम से हुआ। मुझे भी कुरान का कुछ अभ्यास है। इसलिए आयतें सुनकर खुशी हुई। अगर इस पर कोई कहे कि सेक्युलर स्टेट की यूनिवर्सिटी में कुरान की आयतें क्यों पढ़ी जाती हैं, तो यह गलत है। असल में एक विदेशी शब्द के कारण ऐसी गलतफहमी हो रही है।

राजघाट, दिल्ली
१५-११-'५१

हिंसा या अहिंसा के चुनाव का समय : ४ :

अब, जब कि एक राज्य जाकर दूसरा राज्य आया है, यह सोचने का समय है कि हमें किस प्रकार अपनी समाज-रचना करनी चाहिए। याने यह संध्या का समय है, ध्यान का समय है। हमारे सामने आज पचासों रास्ते खुले हैं। लेकिन उनमें से कौनसा रास्ता लें, यह हमें तय करना है।

गांधीजी के जमाने में हमने अहिंसा का तरीका आजमाया था, लेकिन

उसमें हमारी कोई विशेषता नहीं थी, क्योंकि तब हम लाचार थे। अगर हम उस रास्ते नहीं जाते, तो मार खाते। दूसरा कोई हिंसक रास्ता हमारे लिए खुला नहीं था। इसलिए जो रुख हमने अख्तियार किया, वह अशरण की शरण था, अगतिकता की गति थी। अनाथ का आश्रय था। परन्तु गांधीजी का नेतृत्व हमें मिला। हमने सोचा कि वह तरीका हम आजमायें। हिंसा में हम जितने ताकतवर थे, उससे ज्यादा ताकतवर हमारे दुश्मन थे। लेकिन अहिंसा में हम उनसे ज्यादा ताकतवर थे। इसलिए हमारे सामने एक ही रास्ता था—या तो आजादी हासिल करने की अभिलाषा छोड़कर चुपचाप गुलामी स्वीकार करें या अहिंसक प्रतिकार के लिए तैयार हो जायँ। उस समय हमारे सामने पसन्दगी का सवाल नहीं था। लेकिन अब बात दूसरी है। अब हम चुनाव कर सकते हैं। अगर हम चाहें तो हिंसा का तरीका चुन सकते हैं, चाहें तो अहिंसा का चुन सकते हैं। चाहें तो सेना में आदमी बढ़ा सकते हैं, नौकादल और वायुदल भी बढ़ा सकते हैं और देश को खाना-पीना भले ही न मिले, पर देशवासियों को इस सेना के लिए त्याग करने को कह सकते हैं और चाहें तो अहिंसा के रास्ते भी जा सकते हैं। चुनाव करने की यह सत्ता आज हमारे हाथ में है। पहले लाचारी थी, आज ऐसी लाचारी नहीं है।

हिंसा का नतीजा : गुलामी या दुनिया को खतरा

और फिर आज, जब कि गांधीजी चले गये हैं, हम लोग मुक्त मन से और खुले दिल से बिना किसी दबाव के निर्णय कर सकते हैं। मानो इसीलिए गांधीजी को भगवान् हमारे बीच से उठा ले गया। अब उनका दबाव हम पर नहीं है। अगर हम हिंसा के तरीके को मानते हैं, तो हमें रूस या अमेरिका को गुरु मानना होगा। किसी एक गुरु को मानकर, उसके शागिर्द बनकर स्वतंत्रतापूर्वक उनमें से किसीका गुलाम बनना होगा। सवाल यह है कि क्या स्वतंत्र इच्छा से हम उनके शागिर्द बनना चाहते हैं? क्या उनके 'कैंप-फालोअर' बनकर उनके पीछे-पीछे जाकर हमारी ताकत बढ़ेगी? उनकी ताकत से ताकत लेने में हमें पचासों वर्ष लग

जायँगे और संभव है, फिर भी हम उनसे ज्यादा ताकतवर न हो सकें। नतीजा यह होगा कि हिन्दुस्तान को फिर से गुलाम होकर रहना पड़ेगा। अगर हम अमेरिका तथा रूस, दोनों से भी ताकतवर बन जायँ, तो दुनिया के लिए एक खतरा साबित होंगे। अब सवाल हमारे सामने यह है कि स्वतंत्रता के नाम पर हम गुलाम बनना चाहते हैं या दुनिया के लिए एक खतरा बनना ? हमें गहराई से इस पर सोचना होगा।

हिंसा के मार्ग से भारत के टुकड़े होंगे

आज हिन्दुस्तान स्वतंत्र है, फिर भी अनाज या कपड़ा बाहर से मँगाना पड़ता है। आज हिन्दुस्तान स्वतंत्र है, तब भी हमें विशेषज्ञ लोग बाहर से बुलाने पड़ते हैं। आज हिन्दुस्तान स्वतंत्र है, लेकिन हमें शस्त्र और सेनापति बाहर से ही बुलाने पड़ते हैं। आज हिन्दुस्तान स्वतंत्र है, परन्तु तालीम के लिए भी हमें बाहर के देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। तो, क्या आजादी के साथ-साथ हम स्वतंत्रतापूर्वक गुलाम बने रहना चाहते हैं ? आज यह सवाल हम लोगों के सामने उपस्थित है। भगवान् ने हिन्दुस्तान का नसीब ऐसा बनाया है कि या तो उसे अहिंसा के रास्ते से श्रद्धापूर्वक चलना चाहिए या जो लोग हिंसा में पंडित हैं, उनकी गुलामी मंजूर करनी चाहिए; क्योंकि हिन्दुस्तान एक पचरंगी दुनिया है, एक खण्डप्राय देश है। इसमें अनेक धर्म, अनेक भाषाएँ, अनेक प्रान्त और उनके अनेक रसोरिवाज हैं। उसका एक-एक प्रांत यूरोप के बड़े-बड़े देश की बराबरी का है। क्या ऐसी अनेकविध जमातों को हम हिंसक तरीके से एकरस रख सकते हैं ? एक-एक मसला नित्य हमारे सामने उपस्थित होता जा रहा है। कुछ लोग स्वतन्त्र प्रान्त चाहते हैं, तो क्या स्वतन्त्र प्रदेश-रचना की माँग आज हिंसक तरीके से पूरी हो सकती है ?

अगर हिंसात्मक तरीके को हम ठीक मानते हैं, तो हमें मानना होगा कि गांधी का हत्यारा पुण्यवान् था। उसका विचार भले ही गलत हो, पर वह प्रामाणिक तो था ही। अगर हम अच्छे और सच्चे विचार के लिए

हिंसात्मक तरीके अख्तियार करना ठीक समझते हैं, तो आपको मानना होगा कि गांधीजी की हत्या करनेवाले ने भी बड़ा भारी त्याग किया है। अगर हम ऐसा मानें कि प्रामाणिक विचार रखनेवाले अपने विचारों के अमल के लिए हिंसक तरीके अख्तियार कर सकते हैं, तो मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि फिर हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे, वह मजबूत नहीं रह सकेगा। हिंसा से एक मसला तय होता दिखाई देगा, लेकिन दूसरा उठ खड़ा होगा। मसले कम होने के बजाय नये-नये पैदा होते ही रहेंगे। आज भी हरिजनों को मन्दिरों में प्रवेश नहीं मिलता। छुआछूत का यह भेद नहीं मिट पाया, तो क्या हरिजन अपने हाथ में शस्त्रास्त्र लें? अगर अच्छे काम के लिए हिंसा जायज है, तो हरिजन भाइयों का शस्त्र उठाना भी जायज मानना होगा। यह दूसरी बात है कि वे शस्त्र न उठायें।

इसलिए ये सब बातें ध्यान में रखकर तय करना होगा कि आज जो महत्त्व के मसले हमारे सामने हैं, उन्हें हल करने के लिए कौन-से तरीके जायज हैं और कौन-से नाजायज? अगर हम अच्छे उद्देश्य के लिए खराब साधन इस्तेमाल करते हैं, तो हिन्दुस्तान के सामने मसले पैदा होते ही रहेंगे। लेकिन अगर हम अहिंसक तरीके से अपने मसले हल करेंगे, तो दुनिया में मसले रहेंगे ही नहीं। यही वजह है कि मैं भूमि की समस्या शान्ति के साथ हल करना चाहता हूँ। भूमि की समस्या छोटी समस्या नहीं है। मैं लोगों से दान में भूमि माँग रहा हूँ, भीख नहीं माँग रहा हूँ। एक ब्राह्मण के नाते मैं भीख माँगने का अधिकारी तो हूँ, लेकिन यह भीख मैं व्यक्तिगत नाते ही माँग सकता हूँ। पर जहाँ दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि के तौर पर माँगना होता है, वहाँ मुझे भिक्षा नहीं माँगनी है, दीक्षा देनी है। इसलिए मैं इस नतीजे पर पहुँच चुका हूँ कि भगवान् जो काम बुद्ध के जरिये कराना चाहते थे, वह काम उन्होंने मेरे इन कमजोर कन्धों पर डाला है।

देशों की दीवारें विचारों की निरोधक नहीं

मैं मानता हूँ कि यह धर्म-चक्र-प्रवर्तन का कार्य है। जमीन तो मेरे

पास कब की पहुँच चुकी है। आप जिस तरीके से चाहें, उस तरीके से यह समस्या हल कर सकते हैं। आपको तय करना है कि घी के डिब्बे को आग लगानी है या वेद-मन्त्रों के साथ यज्ञ में उसकी आहुति देनी है। आप यह मत समझिये कि बाहर से हमारे इस देश में केवल मानसून ही आते हैं, बल्कि क्रान्तिकारी विचार भी आते हैं। जिस तरह हवा बेरोक-टोक आती है, उसी तरह क्रान्तिकारी विचार भी बिना रोक-टोक और बिना किसी तरह के पासपोर्ट के आते रहते हैं। लोगों ने जहाँ दीवारें नहीं थीं, वहाँ बनायीं। चीन की वह बड़ी दीवार देख लीजिये। भगवान् ने जर्मनी और फ्रांस के बीच कोई दीवार नहीं खड़ी की थी, लेकिन उन्होंने 'सीगफ्रिड' और 'मेजिनो' लाइनें बनाकर क्षेत्र संकुचित कर दिया। मगर ये दीवारें लोगों को केवल इधर-से-उधर जाने-आने से ही रोक सकती हैं, पर विचारों के आवागमन को नहीं रोक सकतीं। उसी तरह यहाँ भी दुनिया के हरएक देश से विचार आयँगे और यहाँ से बाहर भी जायँगे। इसीलिए हमें तय करना चाहिए कि भूमि की समस्या हमें शान्ति से हल करनी है या हिंसा से? मेरे मन में इस बारे में सन्देह नहीं है कि यह समस्या शान्ति से हल हो सकती है। इस सम्बन्ध में इतना स्पष्ट दर्शन मेरे मन में है, इसीलिए मैं निःसन्देह होकर बोल रहा हूँ और कहता हूँ कि भाइयो, वन में पंछी बोल रहे हैं, इसलिए अब जाग जाओ। जिस तरह तुलसी-दासजी भगवान् को समझा रहे थे, उसी तरह मैं अपने भगवान् को यानी आपसे कहता हूँ कि जाग जाओ। यदि आप सब दान दोगे, तो आपकी इज्जत होगी।

इस युग के मार्कण्डेय बनें!

जैसा कि मैंने अभी कहा, जिस तरह बाहर की हवा इस देश में आ सकती है, उसी तरह यहाँ की हवा भी बाहर जा सकती है। जिस तरह बाहर से विचारों का आक्रमण यहाँ हो सकता है, उसी तरह हम भी अपने विचार बाहर भेज सकते हैं। यह भूदान-यज्ञ एक छोटा-सा कार्यक्रम है।

लेकिन आज दुनिया की नजरें इस तरफ लगी हैं। कहते हैं : "भारत में यह एक अजीब तमाशा हो रहा है कि माँगने से जमीन मिल रही है। हम सोचते थे कि जमीन तो मारने से ही मिल सकती है।" यह एक स्वतन्त्र दृष्टि से विचार करने लायक बात है कि अब तक माँगने से लाखों एकड़ से ज्यादा जमीन मिली है। जहाँ दुनिया में चारों ओर लेने और छीनने की बातें चल रही हैं, वहाँ इस देश में देने का आरम्भ हो रहा है, याने अन्तर्यामी भगवान् जाग रहे हैं। जिस तरह बाहर से विचार यहाँ आ सकते हैं, उसी तरह यदि हम धीरज और हिम्मत रखें, तो यहाँ के भी विचार बाहर ज़ा सकते हैं। मैंने कहा है कि जब प्रलय के समय सारी दुनिया जलमय हो जाती है, तो अकेला मार्कण्डेय ऋषि तैरता रहता है और फिर वही दुनिया को बचाता है। उसी तरह आज भी दुनिया में विचारों से, वचन से, व्यापार से, शस्त्रास्त्रों से, एटम बम से, हर तरह से प्रलयात्मक प्रयत्न हो रहे हैं। उस प्रलय के सारे प्रयत्नों पर जो देश मार्कण्डेय की तरह अकेला तैरेगा, उसीके हाथ में दुनिया का नेतृत्व आयेगा।

मैं यह अभिमान से नहीं, नम्रतापूर्वक बोल रहा हूँ। हम नम्र बनें, तभी ऊँचे उठ सकेंगे। मनु महाराज ने भविष्य लिख रखा है : "इस देश में जो महान् पुरुष पैदा होंगे, उनमें ऐसी शक्ति होगी कि उसके द्वारा सारी दुनिया के लोग अपने जीवन के लिए आदर्श सीखेंगे।"

मैं कहता हूँ कि वह शक्ति, वह सत्ता आपके हाथों में है। आपको एक नेता मिला था, जिसके नेतृत्व में आपका देश अहिंसा के तरीके से आजाद हो सका। आज भी इस देश में ऐसे लोग हैं, जिनके हृदय में सद्भाव मौजूद है। अब थोड़ी हिम्मत रखो और थोड़ी कल्पना-शक्ति रखो, तो आप देखेंगे कि आपके हाथ में भी वह शक्ति है, जिससे आप दुनिया को आकार दे सकते हैं। यह आक्रमण नहीं, बल्कि दुनिया को बचाना है। यह एक ऐसी महत्त्वाकांक्षा है, जो रखने लायक है।

लखनऊ

९-५-'५२

सरकार 'शून्य' और जनता 'एक' है : ५ :

विचार मानव-जीवन की बुनियाद

विचार की प्रेरणा मनुष्य को उत्स्फूर्त करती है। मनुष्य का शारीरिक जीवन तो चलता ही है, परन्तु उसका जो उत्थान होता है, उसके पीछे भी विचार रहता है। विचार के कारण आन्दोलन होते हैं, जोश निर्माण होता है और नया जीवन बनता है। तब समाज-रचना बदलती है, जीवन का ढाँचा बदलता है। फ्रांस में जो राज्यक्रांति हुई, वह भी एक विचार के कारण ही। मार्क्स निकला और उसीके विचार पर रूस में एक जाति बनी। इस तरह विचार की शक्ति को हम महसूस करते हैं। मनुष्य को विचार ही ताकत देता है। वह खायेगा-पीयेगा, परन्तु इन सबके साथ, इन सबके पीछे, इन सबकी पूर्ति में और इनकी बुनियाद के रूप में एक विचार होता है। उसीको हम 'धर्म' या 'नीति' कहते हैं। बुनियाद विचार की होती है और उसी पर जीवन की इमारत खड़ी होती है।

हितों में विरोध नहीं

सर्वोदय का अर्थ है, एक के भले में सबका भला। किसी एक के हित के विरुद्ध दूसरे का हित हो नहीं सकता। किसी कौम, वर्ग या देश के हितों के विरुद्ध दूसरी कौम, वर्ग या देश का हित नहीं हो सकता। हितों में विरोध का खयाल ही गलत है। एक के हित में दूसरे का हित है। हितों में विरोध नहीं हो सकता, लेकिन अगर हम अहित को ही हित मान लें और अकल्याण में ही भलाई समझें, तो हितों में विरोध हो सकता है। मैं अगर बुद्धिमान् हूँ, मेरी अगर सेहत सुधरती है, तो उससे आपका भला होने ही वाला है। मुझे प्यास लगने पर पानी मिलता है, तो उससे आपका भी भला होता है और मेरा भी भला है। अगर हम हितों में विरोध की कल्पना करें, तो हित की कल्पना मिथ्या हो जायगी।

क्रान्ति की बुनियाद, विचार-प्रवर्तन

सरकार को तो अपना कर्तव्य करना ही है, पर क्रान्तिकारी विचार को फैलाने का काम सरकार नहीं कर सकती। जब विचार लोकमान्य होगा, तभी सरकार वह काम करेगी और उसे यह करना होगा। नहीं करेगी, तो सरकार बदल जायगी। जहाँ लोकसत्ता चलती है, वहाँ सरकार नौकर है। अगर आपको कोई बात समझानी हो, तो नौकर को समझाते हैं या मालिक को? मालिक को समझाने पर उसे वह बात जँच गयी, तो वह अपने मुनीम को हुकुम देगा कि दान-पत्र तैयार करो। इसलिए मैं मालिक को याने आपको समझा रहा हूँ। आप मालिक हैं।

लोकसत्ता में सरकार को 'शून्य' कहा जाता है। शून्य की अपनी कोई कीमत नहीं होती। अगर वह एक के अंक पर चढ़ गया, तो १० हो जाता है, दो पर चढ़ा, तो २० और तीन पर चढ़ा, तो ३०। परन्तु १०, २०, ३० बनाने की शक्ति शून्य में नहीं है। आप उस शून्य को दस, बीस बना सकते हैं। स्वतन्त्र रूप से उस शून्य की कोई कीमत नहीं। लोकसत्ता में लोग ही सब कुछ हैं, सरकार कुछ नहीं है। जो सरकार के जरिये काम करने की बात करते हैं, वे जानते ही नहीं कि विचार-प्रवर्तन कैसे होता है। बुद्ध भगवान् ने लात मारकर राज्य छोड़ दिया और ज्ञान-प्राप्ति के बाद उन्होंने पहली दीक्षा एक राजा को याने अपने पिता को दी। उसके बाद सम्राट् अशोक आये और फिर हिन्दुस्तान में एक राज्य-क्रान्ति हुई। जिन राजाओं ने उस विचार को नहीं माना, वे गिर पड़े।

आजकल हर कोई फल चाहता है। पर यह नहीं जानता कि उसके लिए बोना भी पड़ता है। बिना बोये कैसे फल पाओगे? फ्रान्स में राज्य-क्रान्ति हुई, तो उसके पीछे रूसो और वाल्टेयर के विचार थे। मार्क्स ने एक विचार का प्रचार किया और फिर लेनिन ने उस विचार के आधार पर क्रान्ति की। विचार-प्रचार के बाद ही राज्य-क्रान्ति होती है। मेरा विश्वास है कि आज की हमारी सरकार इतनी विचारहीन नहीं है कि

समाज में एक विचार को लोग पसन्द करते हैं, तो भी उस पर अमल न करे। अगर वह अमल नहीं करती है, तो वह टिक नहीं सकती।

दुनिया को आकार दें या दुनिया का आकार लें

मैंने दुनिया के इतिहास का भी अध्ययन किया है। इसलिए मैं जानता हूँ कि देशों के बीच दीवालें नहीं खड़ी हो सकतीं। इस देश से उस देश में विचार आते-जाते रहते हैं। यहाँ हमने अच्छा विचार नहीं चलाया, तो बाहर के बुरे विचार यहाँ के मसले हल करने के लिए आयेंगे। अगर हमने यहाँ के मसले अपने ढंग से हल किये, तो यहाँ का विचार भी बाहर जाने से नहीं रुक सकता। वह बाहर जायगा ही और दुनिया उसको मानेगी ही। शायद ऐसा भी विज्ञान निकल सकता है कि इधर की वायु उधर जाने से रोकी जा सके। परन्तु विचार को कोई नहीं रोक सकता। इसलिए या तो हम दुनिया को आकार देंगे या दुनिया हमें आकार देगी। आपके सामने दो ही मार्ग हैं, तीसरा है ही नहीं। या तो आप अपने विचार पर दुनिया को आकार देने की हिम्मत करें या दुनिया के हाथ की मिट्टी बनें। फिर दुनिया जो आकार आपको देगी, उसे आपको कबूल करना होगा। इसलिए हम या तो एक नया स्वतन्त्र विचार निर्माण करेंगे, जो दुनिया को आकार देगा या दुनिया हमें आकार देगी।

डाल्टनगंज (पलामू)
१६-११-'५२

सरकार हमसे भी गरीब

आखिर सरकार में कौन-सी ज्यादा ताकत है, जो हममें नहीं है? वह जबरदस्ती से या सेना की ताकत से कोई काम करा सकती है या सम्पत्ति के जरिये करा सकती है। सम्पत्ति भी कौन-सी है उसके पास? हमारे पास का एक हिस्सा टैक्स के रूप में दे दिया जाता है। सरकार स्वतन्त्र उद्योग तो नहीं करती। हम जो देते हैं, वही उसे मिलता है। हम गरीब हैं, परन्तु हमारी सरकार हमसे भी गरीब है। क्योंकि कितना

भी हुआ, तो भी हमारी सम्पत्ति का हिस्सा ही उसके पास है। हम कुआँ हैं और सरकार बाल्टी है। ३६ करोड़ लोग दो हाथों से पैदा करते हैं, वह ज्यादा होगा या सरकार को हम जो कर देते हैं, वह ज्यादा होगा? हाँ, सरकार का धन दीख पड़ता है; क्योंकि वह इकट्ठा हुआ है। हमारा दीख नहीं पड़ता, क्योंकि वह घर-घर में बँटा हुआ है।

हर आदमी पीछे केवल ५ पैसे!

सरकार की पंचवार्षिक योजना है। उसमें चार-पाँच हजार करोड़ रुपया ५ साल में खर्च होगा। हर साल करीब १००० करोड़ याने महीने में ८० करोड़ खर्च होगा। देश में ३६ करोड़ लोग हैं। तो हर मनुष्य के लिए महीने में दो-सवा दो रुपये याने हर मनुष्य पर एक दिन में ५ पैसा सरकार खर्च करेगी। यह हुई सरकार की बड़ी योजना। एक बच्चा सूत कातकर एक घंटे में ५ पैसा कमा लेता है। तो सरकार की योजना से बच्चा भी ज्यादा पैदा कर लेता है। अच्छा, उस ५ पैसे में सरकार क्या करेगी? रेल्वे, शाला, खेती, व्यापार की वृद्धि, कारखाने खोलेगी, विज्ञान की खोज होगी, साहित्य को उत्तेजन मिलेगा, भाषा का प्रचार होगा। यह सारा उस ५ पैसे में होगा। लोग स्वयं उठ खड़े हों, तो इससे अधिक कर सकते हैं। सम्पत्ति कैसी होती है? परिश्रम से। परिश्रम कौन करते हैं? लोग करते हैं। इसलिए सरकार की पैसे की शक्ति जनता की शक्ति के बराबर नहीं हो सकती।

कानून की शक्ति!

अब रही कानून की शक्ति। क्या आप समझते हैं कि सरकार का कानून है, इसलिए चोरियाँ नहीं होतीं? दण्ड देने से, सजा देने से, शासन करने से क्या समाज बदल सकता है? समाज में जो सद्भावना है, समाज जो नीति पर चल रहा है, वह कानून के कारण नहीं। सज्जनों ने समाज को धर्म सिखाया है, इसलिए समाज को अच्छे-अच्छे ग्रंथ दिये हैं। मान लो, समाज नहीं होता, तो हम सब जानवर बनते। सरकार का

होंगे। लेकिन बुद्धि तो तीन गुणों से भरी है। उसमें कुछ विचार की शक्ति है और कुछ आवरण भी; कुछ दर्शन है और कुछ अदर्शन भी। ऐसी हमारी सम्मिश्र बुद्धि हमें कहती है कि "हम सेना को हटा नहीं सकते। जिस जनता के हम प्रतिनिधि हैं, वह उतनी मजबूत नहीं है। उसमें वह योग्यता नहीं है। इसलिए उसके प्रतिनिधि के नाते हम पर यह जिम्मेवारी आती है कि हम सेना बनायें, बढ़ायें और उसे मजबूत करें।"

आज लगता है कि रचनात्मक कार्य करें, पर वह सिर्फ दिल की इच्छा है। बुद्धि कहती है कि "सेना बनानी होगी, इसलिए सेना-तन्त्र जिससे मजबूत बन सकेगा, ऐसे यन्त्रों को स्थान देना होगा।" जिनकी श्रद्धा चरखे पर कम है, उनकी बात छोड़ देता हूँ। लेकिन जिनकी चरखे पर पूरी श्रद्धा है, उनसे जब यह सवाल पूछा जाता है कि क्या चरखे और ग्रामोद्योग के जरिये आप युद्ध-यन्त्र मजबूत बना सकते या खड़ा कर सकते हैं? तो उनकी बुद्धि और हमारी भी बुद्धि—क्योंकि उनमें हम भी सम्मिलित हैं—कहती है कि नहीं, इन छोटे-छोटे उद्योगों के जरिये हम युद्ध-यन्त्र सज्ज नहीं कर सकते।

सत्ता की कुर्सी जादू की कुर्सी है

यह मैं आत्मनिरीक्षण के तौर पर बोल रहा हूँ। जो आज वहाँ जिम्मेवारी के स्थान पर बैठे हुए हैं, उनकी जगह अगर हम बैठते, तो अभी वे जो कर रहे हैं, उससे बहुत कुछ भिन्न हम करते, ऐसा नहीं है। वह स्थान ही वैसा है। वह जादू की कुर्सी है। उस पर जो आरूढ़ होगा, उस पर एक संकुचित, सीमित, बने-बनाये और अस्वाधीन दायरे में सोचने की जिम्मेदारी आती है। ऐसे दायरे में, जिसे मैंने 'अस्वाधीन' नाम दिया है, लाचारी से दुनिया का ओघ जिस दिशा में बहता हुआ दीख पड़ता है, उसी दिशा में सोचने की जिम्मेवारी उन पर आती है। अमेरिका, रूस जैसे बड़े-बड़े राष्ट्र भी एक-दूसरे से डर खाते हैं और कम ताकतवर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान जैसे राष्ट्र भी। इस तरह

होंगे। लेकिन बुद्धि तो तीन गुणों से भरी है। उसमें कुछ विचार की शक्ति है और कुछ आवरण भी; कुछ दर्शन है और कुछ अदर्शन भी। ऐसी हमारी सम्मिश्र बुद्धि हमें कहती है कि "हम सेना को हटा नहीं सकते। जिस जनता के हम प्रतिनिधि हैं, वह उतनी मजबूत नहीं है। उसमें वह योग्यता नहीं है। इसलिए उसके प्रतिनिधि के नाते हम पर यह जिम्मेवारी आती है कि हम सेना बनायें, बढ़ायें और उसे मजबूत करें।"

आज लगता है कि रचनात्मक कार्य करें, पर वह सिर्फ दिल की इच्छा है। बुद्धि कहती है कि "सेना बनानी होगी, इसलिए सेना-तन्त्र जिससे मजबूत बन सकेगा, ऐसे यन्त्रों को स्थान देना होगा।" जिनकी श्रद्धा चरखे पर कम है, उनकी बात छोड़ देता हूँ। लेकिन जिनकी चरखे पर पूरी श्रद्धा है, उनसे जब यह सवाल पूछा जाता है कि क्या चरखे और ग्रामोद्योग के जरिये आप युद्ध-यन्त्र मजबूत बना सकते या खड़ा कर सकते हैं? तो उनकी बुद्धि और हमारी भी बुद्धि—क्योंकि उनमें हम भी सम्मिलित हैं—कहती है कि नहीं, इन छोटे-छोटे उद्योगों के जरिये हम युद्ध-यन्त्र सज्ज नहीं कर सकते।

सत्ता की कुर्सी जादू की कुर्सी है

यह मैं आत्मनिरीक्षण के तौर पर बोल रहा हूँ। जो आज वहाँ जिम्मेवारी के स्थान पर बैठे हुए हैं, उनकी जगह अगर हम बैठते, तो अभी वे जो कर रहे हैं, उससे बहुत कुछ भिन्न हम करते, ऐसा नहीं है। वह स्थान ही वैसा है। वह जादू की कुर्सी है। उस पर जो आरूढ़ होगा, उस पर एक संकुचित, सीमित, बने-बनाये और अस्वाधीन दायरे में सोचने की जिम्मेदारी आती है। ऐसे दायरे में, जिसे मैंने 'अस्वाधीन' नाम दिया है, लाचारी से दुनिया का ओघ जिस दिशा में बहता हुआ दीख पड़ता है, उसी दिशा में सोचने की जिम्मेवारी उन पर आती है। अमेरिका, रूस जैसे बड़े-बड़े राष्ट्र भी एक-दूसरे से डर खाते हैं और कम ताकतवर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान जैसे राष्ट्र भी। इस तरह

दण्डनिरपेक्ष लोक-शक्ति : ६ :

श्रद्धा अहिंसा पर, क्रिया सेना-वृद्धि की

कुछ महीने पहले की बात है। दिल्ली में कुछ ज्ञानी, विद्वान् एकत्र हुए थे और उन्होंने अहिंसा के दर्शन के बारे में कुछ चिन्तन-मनन और विमर्श किया। वह अखबारों में आता रहा और हम पढ़ते रहे। उसमें राजेन्द्रबाबू ने जिक्र किया था कि "आज कोई भी देश यह हिम्मत नहीं कर रहा है कि हम फौज के बगैर काम चलायेंगे।" उन्होंने इस बात पर दुःख भी प्रकट किया कि "बावजूद इसके कि गांधीजी की सिखावन हमने उनके श्रीमुख से सीधी अपने कानों सुनी और उनके साथ कुछ काम भी किया है, हिन्दुस्तान भी आज ऐसी हिम्मत नहीं कर सक रहा है।" हमारे महान् नेता पंडित नेहरू कई बार कह चुके हैं कि दुनिया का कोई मसला शस्त्र-बल से हल नहीं हो सकता। हमारे ये भाई, जो देश का नेतृत्व कर रहे हैं और जिन पर यह जिम्मेदारी देश ने डाली है, अहिंसा को दिल से मानते हैं। उनका हिंसा पर विश्वास नहीं है। फिर भी हालत यह है कि सेना को बनाने-बढ़ाने और उसे मजबूत करने की जिम्मेदारी उनको माननी पड़ती है। विचित्र परिस्थिति है!

स्थिति यह है कि हमें भासता है, श्रद्धा एक वस्तु पर है और क्रिया दूसरी ही करनी पड़ती है। हम चाहते तो यह हैं कि सारे हिन्दुस्तान में और दुनिया में अहिंसा चले। हम एक-दूसरे से न डरें, बल्कि एक-दूसरे को प्यार से जीतें। प्यार ही कामयाब हो सकता है और सबको जीत सकता है, ऐसा विश्वास दिल में भरा है। फिर भी एक दूसरी चीज हममें है, जिसे 'बुद्धि' नाम दिया जाता है। वैसे वह भी हृदय का एक हिस्सा है और हृदय भी उसका एक हिस्सा है, यों दोनों मिले-जुले हैं; फिर भी हृदय कहता है कि हिंसा से कोई भी मसला हल नहीं होगा। एक मसला हल होता-सा दीखेगा, तो उसमें से दूसरे दसों नये मसले पैदा

काम में आप मत लगिये, बल्कि जो कमियाँ हम महसूस करते हैं, उनकी पूर्ति कर सकें तो करें। इसी आशा से वे लोग हमारी तरफ देखते हैं। तो, यह हमें ठीक से समझना चाहिए और इस दृष्टि से स्वतन्त्र लोक-शक्ति निर्माण करनेवाले काम में लग जाना चाहिए। तभी हम आज की सरकार की सच्ची मदद और अपने देश की समुचित सेवा कर सकेंगे।

'हमें स्वतन्त्र लोक-शक्ति निर्माण करनी चाहिए।' इसका अर्थ यह है कि हिंसा-शक्ति की विरोधी और दंड-शक्ति से भिन्न लोक-शक्ति हमें प्रकट करनी चाहिए। आज की हमारी जो सरकार है, उसके हाथ में हमने दण्ड-शक्ति सौंप दी है। उस दंड-शक्ति में हिंसा का एक अंश जरूर है, फिर भी हम उसे 'हिंसा' नहीं कहना चाहते, हिंसा से अलग वर्ग में रखना चाहते हैं। हम उसे हिंसा-शक्ति से भिन्न दंड-शक्ति कहना चाहते हैं, क्योंकि वह शक्ति उनके हाथ में सारे समुदाय ने दी है। इस-लिए वह निरी हिंसा-शक्ति नहीं, वरन् दंड-शक्ति है। किन्तु उस दंड-शक्ति का भी उपयोग करने का मौका न आये, ऐसी परिस्थिति देश में निर्माण करना हमारा फर्ज होगा। अगर हम वह करेंगे, तो हमने स्वधर्म पहचाना और उस पर अमल करना जाना, यह माना जायगा। अगर ऐसा नहीं करेंगे और दंड-शक्ति के उपयोग से ही हो सकनेवाली जन-सेवा का लोभ रखेंगे, तो जिस विशेष कार्य की हमसे अपेक्षा की जा रही है, उसे हम पूर्ण नहीं करेंगे, बल्कि संभव है कि हम बोझ-रूप भी साबित हों।

निठुरता के राज्य में दया

थोड़ा स्पष्टीकरण कर दूँ। दंड-शक्ति के आधार पर सेवा के कार्य हो सकते हैं और वैसा करने के लिए ही हमने राज्य-शासन चाहा और हाथ में लिया है। जब तक समाज को वैसी जरूरत है, उस शासन की जिम्मेवारी हम छोड़ना नहीं चाहते। सेवा तो उससे जरूर होगी; पर वैसी सेवा नहीं, जिससे दंड-शक्ति का उपयोग ही न करने की परिस्थिति निर्माण हो।

एक-दूसरे से डर खाते हुए, 'शस्त्र-बल से, सैन्य-बल से कोई मसला हल नहीं हो सकता', ऐसा विश्वास रहते हुए भी हम शस्त्र-बल और सैन्य-बल पर ही आधार रखते हैं, उसका आधार नहीं छोड़ सकते।

दयनीय स्थिति

आज हम ऐसी विचित्र परिस्थिति में हैं। इस पर अगर कोई हमें दाम्भिक या ढोंगी कहेगा, तो वह वैसा कहने का हकदार साबित होगा, यद्यपि उसका कथन सही नहीं है। यदि हमारे दिल में कोई दूसरी बात है और उसे हम छिपाते हैं, तो हम जान-बूझकर ढोंगी हैं। लेकिन जहाँ दिल एक बात को कबूल करता है और परिस्थितिजन्य बुद्धि दूसरी बात कहती है, इसलिए लाचारी से कोई बात करनी पड़ती है, तो वह दाम्भिकता की तो नहीं, बल्कि दयनीयता की स्थिति है। आज हम ऐसी दयनीय स्थिति में पड़े हैं।

स्वतन्त्र लोक-शक्ति का निर्माण

कभी-कभी लोग पूछते हैं कि "आप बाहर क्यों रहते हैं? देश की जिम्मेदारी आप क्यों नहीं उठाते?" मैं कहता हूँ कि दो बैल जब गाड़ी में लग चुके हैं, वहाँ मैं और एक तीसरा गाड़ी का बैल बन जाऊँ, तो उतने से गाड़ी को क्या मदद मिलेगी? अगर मैं वह रास्ता जरा ठीक बना दूँ, ताकि गाड़ी उचित दिशा में जाय, तो उसे अधिक-से-अधिक मदद पहुँचा सकता हूँ। हाँ, एक बात जरूर है कि अगर मैं बैल ही हूँ, तो मुझे बैल ही बनना चाहिए, वही काम करना चाहिए। मैं एक विशेष भाषा में बोल रहा हूँ और उम्मीद करता हूँ कि आप उसे सहन भी करेंगे। हमारी संस्कृति में बैल के लिए जितना आदर है, उतना मनुष्य के लिए भी नहीं है। और उसी अर्थ में मैं बोल रहा हूँ। जो राज्य की धुरा उठाता है, उसे हम 'धुरन्धर' कहते हैं। धुरन्धर के मानी होते हैं बैल! धुरन्धर हमें बनना पड़ता है। लेकिन जो लोग धुरन्धर बन चुके हैं, वे कहते हैं कि अब आप वही काम मत करिये, जो हम कर रहे हैं। उस

रचना के लोभ से व्यापक दृष्टि के बिना ही उठा लें, तो कुछ तो सेवा हमसे बनेगी, पर वह सेवा नहीं बनेगी, जिसकी जिम्मेदारी हम पर है और जिसे हमने और दुनिया ने अपना स्वधर्म माना है।

प्रेम पर भरोसा

मैं दूसरी स्पष्ट मिसाल देता हूँ। हर कोई पूछता है कि "आपका वजन सरकार पर भी कुछ दीखता है। तो, आप यह क्यों नहीं जोर लगाते कि सरकार कोई कानून बना दे और बिना मुआवजे के भूमि-वितरण का कोई मार्ग खोल दे। आप अपना वजन क्यों नहीं इस दिशा में इस्तेमाल करते ?" मैं उनसे कहता हूँ कि भाई, कानून के मार्ग को मैं रोकता नहीं। अगर आप अपनी इच्छित दिशा में इससे ज्यादा और एक कदम मुझसे चाहते हैं, तो मैं कहता हूँ कि जो मार्ग मैंने अपनाया है, उसमें यदि मुझे पूरा सोलह आने यश नहीं मिला; बारह आने, आठ आने भी मिला, तो कानून के लिए सहूलियत ही होगी। इस तरह एक तो मैं कानून को बाधा नहीं पहुँचा रहा हूँ, दूसरे कानून को सहूलियत भी दे रहा हूँ। उसके लिए अनुकूल वातावरण बना रहा हूँ, ताकि कानून आसानी से बनाया जा सके। पर इससे भी एक कदम आगे आपकी दिशा में जाऊँ और यही रटन रटूँ कि 'कानून के बिना यह काम नहीं होगा, कानून बनाना चाहिए', तो मैं स्वधर्मविहीन साबित होऊँगा। मेरा वह धर्म नहीं है। मेरा धर्म तो यह मानने का है कि बिना कानून की मदद से जनता के हृदय में हम ऐसे भाव निर्माण करें, ताकि कानून कुछ भी हो, लोग भूमि का बँटवारा करें। क्या किसी कानून के कारण माताएँ बच्चों को दूध पिला रही हैं ?

मनुष्य के हृदय में ही कोई ऐसी शक्ति होती है, जिससे उसका जीवन समृद्ध हुआ है। मनुष्य प्रेम पर भरोसा रखता है। वह प्रेम में से पैदा हुआ है, प्रेम से पलता है और आखिर जब दुनिया को छोड़कर जाता है, तब भी प्रेम की ही निगाह से जरा इधर-उधर देख लेता है। उस समय उसके

एक मिसाल लीजिये। लड़ाई चल रही है। सिपाही जख्मी हो रहे हैं। उन सिपाहियों की सेवा में जो लोग लगे हैं, वे भूतदया से परिपूर्ण होते हैं। वे शत्रु-मित्र तक नहीं देखते, अपनी जान खतरे में डालकर युद्ध-क्षेत्र में पहुँचते और ऐसी सेवा करते हैं, जैसी माता ही अपने बच्चों की कर सकती है। इसलिए वे दयालु होते हैं, इसमें कोई शक नहीं। वह सेवा कीमती है, यह हर कोई जानता है। लेकिन युद्ध को रोकने का काम वे नहीं कर सकते। उनकी दया युद्ध को मान्य करनेवाले समाज का एक हिस्सा है। जैसे एक यन्त्र में छोटे-बड़े अनेक चक्र होते हैं, वे एक-दूसरे से भिन्न दिशाओं में काम करते होंगे, फिर भी उस यन्त्र के ही अंग हैं। तो, एक ही युद्ध-यन्त्र का एक अंग है, सिपाहियों को कत्ल किया जाय और उसीका दूसरा अंग है, जख्मी सिपाहियों की सेवा की जाय। उनकी परस्परविरोधी दोनों गतियाँ स्पष्ट हैं। एक क्रूर कार्य है, तो दूसरा दयाकार्य है, यह हर कोई जानता है। पर उस दयालु हृदय की वह दया और उस क्रूर हृदय की वह क्रूरता, दोनों मिलकर युद्ध बनता है। दोनों युद्ध बनाये रखनेवाले दो हिस्से हैं। कठोर वैज्ञानिक भाषा में बोलना हो, तो जब तक हमने युद्ध को कबूल किया है, तब तक चाहे हमने उसमें जख्मी सिपाही की सेवा का पेशा लिया हो, चाहे सिपाही का, हम दोनों युद्ध के गुनहगार हैं।

यह मिसाल इसलिए दी कि सिर्फ दयालु कार्य करने से यह न समझ लें कि हम दया का राज्य बना सकेंगे। राज्य तो निठुरता का है। उसके अंदर दया, रोटी के अंदर नमक-जैसी रुचि पैदा करने का काम करती है। जख्मी सिपाहियों की उस सेवा से हिंसा में लज्जत पैदा होती है, युद्ध में रुचि पैदा होती है, परन्तु उस दया से युद्ध की समाप्ति नहीं हो सकती। अगर हम लोग इस तरह की दया का काम करें, जिससे निठु-रता के राज में दया प्रजा के नाते रह जाय, निर्दयता की हुकूमत में दया चले, तो हमने अपना असली काम नहीं किया। इस तरह जो काम दया के दीख पड़ते हैं, जो रचनात्मक भी दीख पड़ते हैं, उन्हें हम दया और

न करने से हमें बहुत खुशी होगी। बिना समझे-बूझे अगर वह अमल करता है, तो हमें बहुत दुःख होगा। मैं अपनी इस रचना में जितनी ताकत देखता हूँ उतनी और किसी कुशल, स्पष्ट और अनुशासन-बद्ध रचना में नहीं देखता। अनुशासन-बद्ध दण्ड-युक्त रचना में शक्ति नहीं होती, यह बात नहीं। लेकिन वह शक्ति नहीं होती, जो शिव-शक्ति है, और जो हमें पैदा करनी है, हमारे लिहाज से वह शक्ति ही नहीं है। इसीलिए विचार-शासन को हम मानना चाहते हैं। अगर यह ध्यान में आयेगा, तो विचार का निरन्तर प्रचार करना हमारा एक कार्यक्रम बन जायगा, जो हम नहीं कर रहे हैं और जो हमें करना चाहिए।

कर्तृत्व-विभाजन

दूसरा औजार है कर्तृत्व-विभाजन। सारा कर्तृत्व, सारी कर्म-शक्ति एक केन्द्र में केंद्रित न हो, बल्कि गाँव-गाँव में कर्म-शक्ति, कर्म-सत्ता निर्मित होनी चाहिए। इसलिए हम चाहते हैं कि हरएक गाँव को यह हक हो कि उस गाँव में कौन-सी चीज आये और कौन-सी न आये, इसका निर्णय वह कर सके। अगर कोई गाँव चाहता है कि उस गाँव में कोल्हू चले और मिल का तेल न आये, याने वह अपने गाँव में मिल का तेल आने से रोके, तो उसे रोकने का हक होना चाहिए। जब हम यह बात कहते हैं, तो अधिकारी कहने लगते हैं कि इस तरह एक बड़ी स्टेट के अन्दर एक छोटी स्टेट नहीं चल सकती। इस पर मैं कहता हूँ कि अगर हम सत्ता और कर्तृत्व का विभाजन नहीं करते, तो सेना-बल अनिवार्य है, यह समझ लीजिए। फिर सेना के बगैर आज तो चलेगा ही नहीं; कभी भी नहीं चलेगा। फिर कायम के लिए यह तय कीजिये कि सेना-बल से काम लेना है और सेना सुसज्ज रखनी है। फिर यह मत कहिये कि हम कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हैं। अगर आप कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हों, तो परमेश्वर जैसा हमें भी करना होगा। परमेश्वर ने अक्ल का विभाजन कर दिया। हरएक को अक्ल दे

प्रेमीजन अगर उसे दीख जाते हैं, तो सुख से वह देह और दुनिया को छोड़कर जाता है। प्रेम की शक्ति का इस तरह अनुभव होते हुए भी उसको अधिक सामाजिक स्वरूप में विकसित करने की हिम्मत रखने के बजाय मैं अगर कानून-कानून रटता रहूँ, तो जन-शक्ति निर्माण करके सरकार जो हमसे मदद चाहती है, वह मैंने दी, ऐसा नहीं होगा। इसलिए दंड-शक्ति से भिन्न जन-शक्ति मैं निर्माण करना चाहता हूँ और हमें वही निर्माण करनी चाहिए। यह जो जन-शक्ति हम निर्माण करना चाहते हैं, वह दंड-शक्ति की विरोधी है, ऐसा मैं नहीं कहता। वह हिंसा की विरोधी है। लेकिन मैं इतना ही कहता हूँ कि वह दंड-शक्ति से भिन्न है।

विचार-शासन

विचार-शासन, याने विचार समझाना और समझना, बिना विचार समझे किसी बात को कबूल न करना; बिना विचार समझे अगर कोई हमारी बात कबूल करता है तो दुखी होना, अपनी इच्छा दूसरों पर न लादना, बल्कि केवल विचार समझा करके ही सन्तुष्ट रहना। कुछ लोग हमारे सर्वोदय-समाज की योजना की रचना को 'लूज ऑर्गनाइजेशन' याने 'शिथिल रचना' कहते हैं। रचना को अगर हम शिथिल करें, तो कोई काम नहीं बनेगा। इसलिए रचना शिथिल नहीं होनी चाहिए। पर यह 'शिथिल रचना' न होते हुए 'अरचना' है, याने केवल विचार के आधार पर हम खड़े रहना चाहते हैं। हम किसीको आदेश नहीं देते, जिसे कि वे बिना समझे-बूझे ही अमल में लायें। साथ ही हम किसीका आदेश कबूल भी नहीं करते, जिस पर कि बिना सोचे और बिना पसन्द किये हम अमल करते जायँ। बल्कि हम तो सलाह-मशविरा करते हैं। कुरान में भक्तों का लक्षण गाया गया है कि उनका 'अम्र' याने काम परस्पर के सलाह-मशविरे से होता है। हम मशविरा करेंगे और तब बहुत खुश होंगे कि हमारी चीज हमारे सुननेवाले ने मान्य नहीं की और उस पर अमल नहीं किया, जब कि उसको वह पसन्द नहीं आयी। उसके अमल

विभाजन। हम जो कुछ करते हैं, वह सारा कर्तृत्व-विभाजन की दिशा में ही। इसीलिए हम गाँवों में जमीन का बँटवारा करना चाहते हैं।

तीसरी शक्ति

ये जो दूसरे नाम हैं, वे चलेंगे; क्योंकि वे लोग उस-उस नाम पर काम करना चाहते हैं और उसकी उपयोगिता मानते हैं। लेकिन हमारा कोई पक्ष नहीं है। जिसे तीसरी शक्ति कहते हैं, वे हम हैं। तीसरी शक्ति का मतलब आज दुनिया की परिभाषा में यह होता है कि जो शक्ति न अमेरिका के 'ब्लॉक' में पड़ती है और न रूस के 'ब्लॉक' में ही, लोग उसे तीसरी शक्ति कहते हैं। लेकिन मेरी तीसरी शक्ति की परिभाषा यह होगी कि जो शक्ति हिंसा की शक्ति से विरोधी है अर्थात् हिंसा की शक्ति नहीं है और जो दण्ड-शक्ति से भी भिन्न अर्थात् दण्ड-शक्ति भी नहीं है। एक हिंसा-शक्ति, दूसरी दण्ड-शक्ति और तीसरी हमारी शक्ति है। हम इसी शक्ति को व्यापक बनाना चाहते हैं। हमारा कोई अलग सम्प्रदाय नहीं बनना चाहिए, बल्कि हमें आम लोगों में घुल-मिलकर मानव-मात्र रहना चाहिए।

चांडिल
७-३-'५२

समाजशास्त्र में भारत यूरोप से आगे

पाश्चात्यों की धारणा है कि 'समाज में आमूलाग्र परिवर्तन सत्ता के जरिये ही हो सकता है। राजनीति में एक पक्ष राज्य करता है, तो दूसरा विरोधी होता है। इस प्रकार एक-दूसरे को परिशुद्ध करते रहते हैं। इसी प्रकार सत्ता से परिवर्तन होगा।' हम लोग भी उसीकी नकल करते हैं। किन्तु आप लोगों को यह मालूम नहीं कि पश्चिम का समाजशास्त्र बहुत पिछड़ा हुआ है। आज हिन्दुस्तान में मराठी, बंगाली, गुजराती, तमिल-नाड़, मलबार आदि प्रान्त हैं। ऐसे ही यूरोप में भी भिन्न-भिन्न भाषा-

दी—बिच्छू को भी और साँप को भी, शेर को भी और मनुष्य को भी। कम-बेशी सही, लेकिन हरएक को अक्ल दे दी और कहा कि अपने जीवन का काम अपनी अक्ल के आधार से करो। तब सारी दुनिया इतनी उत्तम चलने लगी कि वह विश्रांति ले पाता है, यहाँ तक कि लोगों को शंका भी होती है कि परमेश्वर है या नहीं ? हमें भी राज्य ऐसा ही चलाना होगा कि लोगों को यह शंका होने लगे कि आखिर यहाँ कोई राज्य-सत्ता है या नहीं! हिन्दुस्तान में शायद राज्य-सत्ता नहीं है, ऐसा भी लोग कहें। तभी हमारा राज्य-शासन अहिंसक होगा।

इसीलिए हम ग्राम-राज्य का उद्घोष करते और चाहते हैं कि ग्राम में नियंत्रण की सत्ता हो। अर्थात् ग्रामवाले नियंत्रण की सत्ता अपने हाथ में लें। यह भी एक जन-शक्ति का प्रश्न आया कि गाँववाले खुद खड़े हो जायँ, निर्णय करें कि अमुक चीज हमें पैदा करनी है और सरकार के पास माँग करें कि अमुक माल यहाँ नहीं आना चाहिए, उसे रोकिये। अगर वे रोकना चाहते हैं, फिर भी मान लीजिए कि रोक नहीं सकते, तो उन्हें उसके विरोध में खड़े होने की हिम्मत करनी होगी। इससे उस सरकार को अत्यन्त मदद पहुँचेगी, क्योंकि उसीसे सैन्य-बल का छेद होगा। इसके बगैर सैन्य-बल का कभी छेद नहीं हो सकता। यह कभी नहीं हो सकता कि दिल्ली में ऐसी कोई अक्ल पैदा हो जाय—चाहे वह ब्रह्मदेव की अक्ल हो—जिसे चार दिमाग हों और जो चारों दिशाओं में देख सके। कितनी ही बड़ी अक्ल क्यों न हो, यह हो नहीं सकता कि उसके यहाँ से हरएक गाँव के सारे कारोबार का नियंत्रण और नियोजन हो और वह सारा-का-सारा सबके लिए लाभदायी हो। इसलिए 'नेशनल प्लॅनिंग' (राष्ट्रीय नियोजन) के बजाय 'विलेज प्लॅनिंग' (गाँवों का नियोजन) होना चाहिए। 'बजाय' मैंने कह दिया, पर बेहतर तो कहना यह होगा कि 'नेशनल प्लॅनिंग का ही अर्थ विलेज प्लॅनिंग हो।' उस विलेज प्लॅनिंग की मदद के लिए और जो कुछ करना पड़े, उतना दिल्ली में किया जायगा। यह है हमारे कार्यक्रम का दूसरा अंश कर्तृत्व-

वहुमत का यह जो विचित्र विचार हम लोगों ने पश्चिम से स्वीकार किया, वह बड़ा ही खतरनाक है।

नेहरूजी ने स्वयं कहा कि 'यद्यपि चुनाव-पद्धति को हमने श्रद्धा से अपनाया, फिर भी उसमें काफी दोष हैं। इसे सुधारना जरूरी है।' इस तरह हम पश्चिम से जो भी चीज लेते हैं, उसे सोच-समझकर लेना चाहिए। दुनिया के सब देशों में चुनाव का यह भूत सवार है और उससे बहुत कुछ हानि भी होती है। किन्तु हिन्दुस्तान के लिए तो इसका परिणाम बहुत ही दुःखद हुआ है। राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक ने जिस जाति-भेद पर प्रहार किया और जिसकी कमर टूट चुकी थी, वह इस चुनाव से फिर खड़ा हो उठा है।

क्रांति पक्षातीत ही होती है

सत्ता या 'पार्टी-पालिटिक्स' (दलगत राजनीति) के जरिये क्रांति कभी नहीं होती। वह तो जनमानस में ही होती है। इसलिए उसे पक्षातीत ही होना चाहिए। इसके लिए एक-दूसरे के सामने दिल खोलकर रखने चाहिए। लेकिन आजकल के पक्ष तो एक-दूसरे के अखबार तक नहीं पढ़ते। जैसे वैष्णवपन्थी शैवपन्थियों की कोई भी बात नहीं अपनाता, वैसे ही ये पार्टियाँ एक-दूसरे से भारी नफरत करती हैं। उनके लिए उनकी पार्टी की पुस्तकें ही वेदवाक्य होती हैं। वे दूसरे के साहित्य को पढ़ते ही नहीं। उनके विचार संकुचित होते हैं। इन वादों के कारण दलबन्दी ही नहीं, दिलबन्दी फैल रही है, जो दलबन्दी से कहीं ज्यादा खराब है। ऐसी स्थिति में क्रान्ति रुक जाती है। लोग समझते ही नहीं कि हवा फैलाने के लिए अवकाश चाहिए। विचार-प्रचार के लिए खुले दिल होने चाहिए। पार्टी की सभाओं में खास जमातें ही आती हैं और वे क्रांति को आगे बढ़ने नहीं देतीं। किन्तु भूदान के इस काम ने लोगों के मन में इस बारे में कुछ सन्देह पैदा कर दिया है। अब लोग इस बात को समझ जायँगे, तो बड़ी बात होगी।

मई, १९५४

भाषी देश हैं। हमारे देश में यद्यपि भाषावार प्रान्तों की माँग की जाती है, पर कोई भी अपना अलग देश स्थापित करना नहीं चाहता। कोई भी दिल्ली से अलग होने का विचार नहीं करता। इसके विपरीत यूरोप में स्विट्जरलैण्ड, जर्मनी, बेलजियम, फ्रान्स आदि छोटे-छोटे देश हैं। आज भी उनके यहाँ जातिवाद विद्यमान है। सारे यूरोप का राजनैतिक विभाजन जातिवाद पर ही हुआ है। किन्तु हमारे यहाँ ऐसी स्थिति नहीं है। भाषावार प्रान्त की माँग भी किसानों की सहूलियत के लिए की गयी है। कोई अपना राज्य या सेना अलग नहीं चाहते। इस तरह स्पष्ट है कि समाजशास्त्र की रचना में यूरोप हिन्दुस्तान से बहुत पिछड़ा है।

दूसरी मिसाल यह है कि यहाँ किसीको यह शंका नहीं होती कि स्त्रियों को मत देने का अधिकार देना चाहिए या नहीं? मैं मानता हूँ कि हमारे यहाँ की स्त्रियाँ बहुत पिछड़ी हैं। हमें उन्हें उठाना और सामने लाना होगा। फिर भी हमने उन्हें मत देने का अधिकार बिना किसी संकोच के दे दिया है। इसके विपरीत यूरोप के कई देशों में आज भी स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है। चालीस साल पहले इंगलैण्ड में पुरुषों के विरुद्ध स्त्रियों का आन्दोलन हुआ। विधान-सभा में अण्डे फेंके गये, तब कहीं जाकर उन्हें मताधिकार प्राप्त हुआ। हमारे देश में ऐसा कोई झगड़ा नहीं हुआ। इस प्रकार भी स्पष्ट है कि दुनिया के अन्य देशों से हम समाजशास्त्र में आगे बढ़े हुए हैं।

आज की सदोष चुनाव-पद्धति

आश्चर्य है कि फिर भी हम लोग आँख मूँदकर पाश्चात्य-पद्धति स्वीकार कर लेते हैं। यह नहीं सोचते कि उसका परिणाम क्या होगा? जब कि हमारे यहाँ 'पाँच बोले परमेश्वर' और एकमत से काम होता था, पश्चिम में चार विरुद्ध एक, तीन विरुद्ध दो प्रस्ताव पास हो जाते हैं। अदालत में खून के मुकदमे चलते हैं और वहाँ भी तीन विरुद्ध दो का फैसला लेकर खूनी अभियुक्त फाँसी पर चढ़ाये जाते हैं। इतना भी नहीं सोचते कि फाँसी के बदले कुछ हल्की सजा क्यों न दी जाय? सचमुच

है। इस तरह सामाजिक चिन्तन में हम आगे हैं और यूरोप पीछे। इसलिए हमें यूरोप का अनुकरण नहीं करना है। हमें सर्वोदयवादी लोकशाही, सर्वगणतन्त्र बनाना होगा, तभी अहिंसा की शक्ति बढ़ेगी। सारांश, हमने पहली बात यह बतायी कि हमें निर्भय बनना होगा और दूसरी यह कि प्रेम और सहयोग के आधार पर सरकार का गठन करना होगा।

बाँकुडा
७-१-'५५

आज सजा में भी सुधार

पहले किसीने चोरी की, तो उसे यह सजा दी जाती थी कि हाथ काट डाले जायँ। लेकिन आज ऐसी सजा देने की बात किसीको भी जँचेगी नहीं, रुचेगी नहीं। आज तो इसे निरी मूर्खता और मानवता के विरुद्ध बड़ा भारी दोष माना जायगा। मनुष्य हाथों से सेवा कर सकता है। सेवा के बड़े साधन हाथ को काट डालने का अर्थ है, उस मनुष्य का सारा भार समाज पर डालना। ऐसी योजना करना निरी मूर्खता है। आज मनुष्य-समाज को यह बात पसन्द नहीं आती। शूर्पणखा राक्षसी ने राम-लक्ष्मण के सामने आकर बेढंगी बातें की, तो लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट डाले, ऐसी कहानी रामायण में आती है। इस पर आजकल के पढ़नेवाले लड़के भी पूछते हैं कि यह काम लक्ष्मण ने कहाँ तक ठीक किया? फिर उन्हें समझाना पड़ता है कि वह रूपक है, वह कोई मनुष्य की कहानी नहीं है। राक्षसी कामवासना है और उसे विरूप करने का मतलब है, किसी तरह उसका आकर्षण न रहने देना। इतना ही इस कथा का मतलब है।

दुनिया में आज लोगों के मन में फाँसी की सजा रद्द करने की बात उठती है। यद्यपि इसके अनुकूल अभी तक मानव का निर्णय नहीं हुआ है, लेकिन शीघ्र ही हो जायगा और फाँसी की सजा मानवताहीन मानी जायगी।

गणतन्त्र नहीं, गुणतन्त्र : ८ :

हम अगर मानव-मानव में कोई भेद निर्माण न करेंगे, तो यह 'गणतन्त्र' 'गुणतन्त्र,' सद्‌गुणतन्त्र हो जायगा। तब सद्‌गुणों की कीमत की जायगी, सिर्फ गुणों की नहीं। आज "५१ के विरुद्ध ४९' प्रस्ताव पास किये जाते हैं। इस 'गणतन्त्र' को तो हम 'अवगुणतन्त्र' कहते हैं। ४९ और ५१ मिलकर १०० हो जाते हैं और हम चाहते हैं कि सौ मिलकर काम करो। हमारे यहाँ पहले 'ग्रामपंचायतें' होती थीं। वह इस देश की बहुत बड़ी देन है। आज दुनिया में जो राजनैतिक विचार धाराएँ चलती हैं, उन सबमें हिन्दुस्तान की ग्राम-पंचायत अपनी एक विशेषता रखती है। इसमें 'पाँच बोले परमेश्वर' की बात रहती थी। उन दिनों सारे हिन्दुस्तान में यही बात चलती थी। पाँच मिलकर बोलते, तो प्रस्ताव पास हो जाता। किन्तु अब हम कहते हैं, 'चार बोले परमेश्वर, तीन बोले परमेश्वर' यानी तीन विरुद्ध दो हों, तो प्रस्ताव पास कर लेते हैं। किन्तु हम कहते हैं कि ऐसा प्रस्ताव फेल है, पाँचों मिलकर ही प्रस्ताव पास होगा। यह बात हिन्दुस्तान में पुनः लानी होगी। प्रेम और सहयोग से ही गणतन्त्र चलेगा। प्रेम और सहयोग से ही सारा कारोबार चलेगा। उसके बिना हिन्दुस्तान और दुनिया में अहिंसा न टिकेगी।

हिन्दुस्तान में चौदह भाषाएँ हैं। उन सबका एक देश बनाया गया है। जिन्होंने कन्याकुमारी से लेकर कैलाश तक यह एक देश बनाया है, उन पर यह जिम्मेवारी आ जाती है कि वे यूरोप की नकल न करें। यूरोप पीछे है, तो हम आगे हैं। यूरोप का 'स्विट्‌जरलैण्ड' बाँकुड़ा और मेदिनीपुर जिले मिलाकर होता है। 'बेल्जियम' माने दो-चार जिले और जोड़ दीजिये। वहाँ ऐसे छोटे-छोटे राष्ट्र माने जाते हैं। यूरोप में एक ही लिपि है, एक ही धर्म है। एक-दूसरी भाषा में जरा-सा भेद है। कोई भी इटालियन, फ्रेंच सीखना चाहे, तो १५ दिन में सीख लेगा। वहाँ इतनी समानता है, फिर भी अलग-अलग राष्ट्र बने हैं। हमने एक देश बनाया

पर ही खड़ा है। इसीलिए हमने जमीन से शुरू किया और कह दिया कि हरएक बेजमीन को जमीन मिलनी ही चाहिए। उसका हक मान्य होना ही चाहिए। यह एक बिलकुल बुनियादी विचार है, जो हम समाज के सामने रख रहे हैं।

बालेश्वर,
६–२–'५५

सात्त्विक लोग चुनाव में नहीं पड़ते

कुछ लोगों ने एक नया तरीका निकाला है, वह भी सोचने लायक है। कहते हैं कि सात्त्विक लोग आज के चुनावों को उतना पसंद नहीं करते। अब जब कि सात्त्विक लोग चुनाव में भाग लेना पसंद नहीं करते, यह अंदाज लग गया, तो उस पर से सोचने की स्फूर्ति होनी चाहिए कि इसके तरीके को हम कैसे बदलें, जिससे सात्त्विक लोगों को इसमें भाग लेने की प्रेरणा हो। किंतु इस तरह वे नहीं सोचते। वे समझ तो गये हैं कि सात्त्विक लोगों को चुनाव में पड़ने की रुचि नहीं होती, पर उसका तरीका बदल नहीं सकते। क्योंकि पश्चिम से एक तरीका आया है और जब तक उसके बदले में दूसरा तरीका नहीं सूझता, तब तक वह चालू रहेगा। हाँ, उन्होंने एक बात सोची है। वे मुझसे तो नहीं पूछते, लेकिन हमारे साथियों से पूछते हैं कि क्या आप कांग्रेस महासमिति में आना पसंद करेंगे? याने हम आपको वह तकलीफ नहीं देते, जो सात्त्विकों को सहन नहीं होती। चुनाव में पड़कर, लोगों के सामने खड़े होकर, चुन आने की तकलीफ से हम आपको बचाना चाहते हैं। लेकिन आप अगर ऑल इण्डिया कांग्रेस-कमेटी में दाखिल होना पसंद करें, तो हमारी इच्छा है कि आप वहाँ आइये और अपने सलाह-मशविरे का लाभ हमें दीजियेगा। फिर जब हम पूछते हैं कि 'हमें कांग्रेस-मैन तो बनना नहीं पड़ेगा? आयेंगे और सलाह देंगे', तो वे कहते हैं, नहीं, कांग्रेस-मैन तो होना पड़ेगा; दस रुपया दक्षिणा भी देनी पड़ेगी!

सत्ताविभाजन द्वारा सत्ताभिलाषा का नियन्त्रण

मनुष्य अपनी वृत्तियों का भी उत्तरोत्तर नियन्त्रण करता आ रहा है और करनेवाला है, यह पहली समझने की बात है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य में जैसे भोग-ऐश्वर्य की वृत्ति है, वैसे दूसरी वृत्तियाँ भी मौजूद हैं। केवल भोग ही नहीं, धर्म-वासना और धर्म-प्रेरणा भी मनुष्य में बड़ी बल्वान् होती है। धर्म-प्रेरणा को प्रधान पद देकर वासनाओं को उसके अंकुश में रखने की अक्ल मनुष्य को सूझनी चाहिए और उसे वह उत्तरोत्तर सूझेगी ही। मनुष्य की प्रेरणा ही उससे कहती है कि भोग-ऐश्वर्य की मानव में स्थित वृत्ति को प्रधानता न मिलनी चाहिए। उसे विकसित न होने देकर कुंठित करने का रास्ता ढूँढ़ना चाहिए। आज मनुष्य को धर्म-बुद्धि का यह रास्ता सूझा है कि सत्ता बाँट दें और भोग सबको समान रूप से मिले। वह ऐसी कोशिश करे, तो भोग-वासना नियन्त्रित और कुंठित हो जायगी। फिर उसे सत्ता की आकांक्षा भी न रहेगी। ये दोनों बातें आज की सरकार मानती है। इसीलिए उसने हरएक को वोट का अधिकार दिया है, इसका मतलब सत्ता सबमें विभाजित करने का आरम्भ कर दिया है। लोग जिसे चुनेंगे, वह नौकरी करेगा और लोगों की सेवा करेगा। जो चाहे, वह सत्ताधारी कहलायेगा, पर उसके हाथ में सेवा करने की ही सत्ता रहेगी, ऐसा विचार लोकशाही में मान्य हुआ।

स्वार्थ-नियंत्रण के लिए सुख-साधनों का वितरण

जिस तरह मनुष्य की सत्ता-वासना को नियंत्रित और कुंठित करने का रास्ता है, सत्ता का विभाजित हो जाना और हरएक को इसका निश्चित विश्वास होना कि सत्ता का एक अंश हमारे पास पड़ा है, उसी तरह हरएक में विद्यमान स्वार्थ-बुद्धि को नियंत्रित और कुंठित करने का उपाय है, मनुष्य के सुख के सामान्य साधन सबको समान रूप से मुहय्या करने का प्रयत्न करना। मनुष्य के कुल स्वार्थ का आधार जमीन

रचनात्मक संस्थाओं में भी हमारे मित्र हैं। हमारी हालत इसलिए मुश्किल हो जाती है कि जो हमारी दुश्मनी करना चाहते हैं, वे भी हमारे मित्र हैं! कुल दुनिया ही मित्रों से भरी है। इस वास्ते हमारा मामला और कठिन हो जाता है। किन्तु वह आसान भी होता है, इसलिए कि हम खुलेदिल से विचार रखते हैं और हमें आग्रह तो है नहीं। इसलिए चर्चा के वास्ते एक मसाला मिल जाता है। आप इस पर भी चर्चा कीजिये कि हमारी स्थिति क्या होनी चाहिए ? हमने आरंभ में ही कहा है कि किसी भी राजनैतिक पक्ष का, जो कि लोकशाही में विश्वास रखता हो, हिन्दुस्तान में जब तक अपना विचार कायम है, तब तक वह कमजोर बने, इसमें देश का भला नहीं है। किन्तु अगर कांग्रेसवाले परिवर्तित हो जायँ, उनके विचार उन्हें गलत मालूम पड़ें और इसी कारण उनका पक्ष टूट जाय, तो उसमें देश का नुकसान नहीं है। अगर पी० एस० पी० के लोग अपने विचार को गलत समझें और उसी कारण उनका पक्ष टूट जाय, तो उसमें भी देश का नुकसान नहीं है। लेकिन ये दोनों पक्ष या डेमॉक्रेसी माननेवाले और भी कोई पक्ष अपने विचार मानते रहें और कमजोर पड़ें, इसमें देश का हित है, ऐसा हम नहीं समझते। वे बलवान् बने रहें, इसीमें उनका हित है, ऐसा हमारा मानना है।

विनोबा के कांग्रेसी बनने में किसीका भला नहीं

लेकिन हम यह पूछना चाहते हैं कि हम कमजोर पड़ें, इसमें भी क्या किसीका हित है ? मान लीजिये कि कल विनोबा राजी हो जाय और कहे कि ठीक है, मैं कांग्रेस-मैन बनता हूँ। कांग्रेस-मैन बनने में बहुत ज्यादा खोने का तो कुछ नहीं है। उसमें इतना ही सवाल आता है कि अपना जो कुछ विश्वास है, उसे एक हद तक वहाँ अवकाश है, एक हद तक नहीं। जिस हद तक नहीं है, उसकी उपेक्षा कर, 'है उतना ही ठीक' समझकर मनुष्य वहाँ जा सकता है। हम जानते हैं कि कांग्रेस में भी सज्जनों की संगति मिल सकती है। जैसा

यह मोह-चक्र

ये हमारे मित्र ही हैं, जो इस तरह से कहते हैं। पर हम उन्हें समझाते हैं कि इसमें आप क्या भलाई देखते हैं ? अगर इसमें भलाई हो, तो हम कबूल करने को राजी हैं। इधर तो यह हालत है कि ये लोग हमेशा डरते ही रहते हैं। उनका प्रतिपक्षी जब दुर्बल होता है, तब भी डरते हैं और वह बलवान् होता है, तब तो डरते ही हैं। कहते तो हैं कि लोकशाही के लिए एक अच्छा-सा विरोधी पक्ष भी होना चाहिए। पर वह पक्ष कमजोर हो जाय, तो डरते हैं और बलवान् हो जाय तो भी डरते हैं। इस 'डेमॉक्रेसी' ने हमारा दिमाग इतना कमजोर बना दिया है कि वह कुछ सोच ही नहीं सकता, फेर में पड़ गया है। अगर आपको यह डर महसूस होता है, तो विरोधी पक्ष के लोग अपना दिमाग बदले बिना ही आपके पास आ जायँ, तो क्या वह आपके या समाज के लिए अनुकूल है, इसे जरा आप सोचें। हम समझते हैं कि यह एक ऐसा तरीका है, जिससे सात्त्विक लोग निःसत्त्व बनेंगे। सात्त्विक लोगों में यह हिम्मत होनी चाहिए कि सत्त्वगुण का प्रभाव हम ऐसा बढ़ायेंगे कि चुनाव पर उसका असर होगा और वह दूसरा ही रूप लेगा। या तो उनमें यह हिम्मत होनी चाहिए कि हम इस चुनाव को खतम ही कर देंगे और हमें उसमें जाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी या फिर जो-जो चुनकर आयेंगे, उन पर हमारा असर रहेगा। इन दो में से एक की भी हिम्मत न हो और कोई हमें कृपा करके कहे कि आप ऑल इण्डिया कांग्रेस-कमेटी में आइये, हम आपको लेने के लिए राजी हैं; और हम भी जाना चाहें, तो हम समझते हैं, हम कुछ मोह-चक्र में हैं।

कोई भी पक्ष कमजोर न बने

आज हम बिलकुल खुले विचार आपके सामने रखना चाहते हैं। इसके साथ यह भी कहना चाहते हैं कि अपने विचार के लिए हमें बिलकुल आग्रह नहीं है। पी० एस० पी० में हमारे मित्र हैं, कांग्रेस और

कर सके, वही 'प्राचीन' कहलाती है। जिसमें यह शक्ति नहीं है, वह सभ्यता छिन्न-विच्छिन्न हो सकती है। भारत की सभ्यता में एक विशेष दर्शन होता है। उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग रहते हैं। उन सबकी सभ्यताओं को इसने हजम कर लिया है। इसलिए भारतीय सभ्यता बहुत ही परिपुष्ट और मधुर हुई है। सबके साथ अविरोध साधने और सबसे प्रेम के साथ रहने की भारत की अपनी एक विशेष सभ्यता है। उसीके कारण हम पर एक जिम्मेवारी आती है।

इसके अलावा आज दुनिया की ऐसी स्थिति है, जिसमें बहुत देश डाँवाडोल हैं। मैंने तो कई बार कहा है कि ऐसी हालत में हम पर यह जिम्मेवारी आती है कि हम अपना दिमाग कायम रखें। उन लोगों के दिमाग आज थक गये हैं। उन्होंने बहुत दिमाग चलाया और उत्तरोत्तर शस्त्रास्त्र बढ़ाते गये। शान्ति की जरूरत वे भी महसूस करते हैं। 'बैलेन्स-पॉवर (शक्ति के संतुलन) से शान्ति स्थापित करने की उन्होंने कोशिश की, पर उनका वह प्रयत्न चल न सका। दो विश्वयुद्ध हो चुके और तीसरा टालने की वे कोशिश कर रहे हैं। इसलिए जिस तरह पहले उनका हिंसा पर विश्वास था,वैसा आज नहीं रहा। किन्तु इसके बदले में अभी उनका अहिंसा पर भी विश्वास नहीं बैठा। आज वे ऐसी ही बीच की हालत में हैं। जब मनुष्य के मन में अस्वस्थता और अनिश्चितता होती है, तब उसका दिमाग काम नहीं करता। इस ओर या उस ओर, ऐसी निश्चित दिशा मनुष्य लेता है, तभी वह कर्मयोग कर सकता है। किन्तु जहाँ व्यवसायात्मक बुद्धि है, वहाँ संशय है। ऐसी हालत में चाहे वे चिंतन चला सकें, पर उनकी बुद्धि काम न कर सकेगी। अभी पश्चिम में बहुत तत्त्व-विचार चलता है, पर वहाँ किसी प्रकार की श्रद्धा नहीं दीखती। वे लोग अपने पुरुषार्थ की पराकाष्ठा कर चुके, फिर भी उन्हें राह नहीं दीखती, तो उनका दिमाग काम नहीं करता। ऐसी हालत में यही दीख रहा है कि हिन्दुस्तान की तरफ दुनिया की निगाह है। इसीलिए हिन्दुस्तान पर जिम्मेवारी भी आती है।

कि शंकररावजी ने कहा, यहाँ एक सत्संग है, वैसे वहाँ भी बहुत सज्जन लोग हैं और वे वहाँ इकट्ठे होते हैं, तो वहाँ सत्संगति का लाभ मिल सकता है। कांग्रेस में, प्रजा-समाजवादियों में बहुत-से ऐसे सज्जन हैं। उनमें कुछ अंश ऐसा है, जो हमें मंजूर है और कुछ ऐसा भी है, जो हमें मंजूर नहीं। जो अंश हमें नामंजूर है, उसकी उपेक्षा कर और जितना मंजूर है, उसी तरफ ध्यान देकर व्यावहारिक बुद्धि से मान लीजिये, हम कांग्रेस-मैन बन जायँ, तो इसमें कांग्रेस का भला है क्या, यह सोचने की बात है। हम समझते हैं कि इसमें कांग्रेस का भला न होगा। कांग्रेस की बात अलग रखिये, इसमें देश का भी भला नहीं, किसीका भी भला नहीं, ऐसा हम समझते हैं। भिन्न-भिन्न विचार के लोग अपने-अपने विचार में कमजोर पड़ें, इसमें किसीका भला नहीं, यह समझ लेना चाहिए। यह मुख्य वस्तु ध्यान में रखकर हम सोचें।

'अभय' और 'करुणा' : १ :

[आन्ध्र विधान-सभा के सदस्य और मंत्रिगणों के बीच]

आज भारत का विशेष दायित्व

स्वराज्य के बाद हम लोगों की जिम्मेवारी सब प्रकार से बढ़ गयी। हमें स्वराज्य विशेष ढंग से हासिल हुआ है। इसलिए भी हमारी जिम्मेवारी कुछ विशेष बढ़ी है, क्योंकि उसीके कारण दुनिया में हमारे लिए कुछ आशा बनी है। इसके अलावा भारत की अपनी एक नित्यनूतन सभ्यता है। इसीको हम पुराण-सभ्यता कहते हैं। पुराण-सभ्यता की व्याख्या हम यह करते हैं कि जो देश पुराना होते हुए भी नवीन है। नित्यनूतनता पुराणता का लक्षण है। जो सभ्यता नित्य नया रूप धारण

हुई होगी। राष्ट्र-के-राष्ट्र भयभीत हैं। इसलिए दुनिया को वही बचायेगा, जो व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर भी निर्भय बनेगा।

मेरी निगाह में राज्य और सरकार की कोई जरूरत नहीं, अगर हम सामाजिक अभय नहीं स्थापित कर सकते। मैं किसीको दोष नहीं दे रहा हूँ। आपने देखा कि स्वराज्य के बाद भारत में कितनी बार गोलियाँ चलीं। आप कह सकते हैं कि इससे भी ज्यादा चल सकती थीं, लेकिन हमने कम चलायीं। पर यह दूसरी बात है। जिन्होंने गोलियाँ चलायीं, उन्हें मैं दोष नहीं देता; उन्होंने कर्तव्यबुद्धि से और बहुत ही तटस्थ बुद्धि से काम किया। किन्तु गोली चलाने का मतलब यह है कि समाज में अभय नहीं है। इसलिए राज्यसंस्था का यह काम है कि अपने राज्य में भय-निराकरण करे।

देश के भयस्थान मिटाये जायँ

अपने देश में सबसे अधिक भय का स्थान कौन-सा है? पहला, प्रजा में अत्यन्त दारिद्र्य का होना और दूसरा, प्रजा में एकरसता का न होना। ये दोनों बड़े भारी भय के स्थान हैं। इसलिए राज्यसंस्था से यह आशा की जायगी कि वह इन दोनों भयस्थानों को दूर करे। इसलिए स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम यह दर्शन होना चाहिए था कि सबसे गरीब, सबसे नीचे स्तरवाले को मदद मिल रही है। जैसे पानी जहाँ से भी दौड़ता है, समुद्र के लिए दौड़ता है—समुद्र को भरने के लिए ही वह बहता है। वैसे ही सारी सरकारी और जनता की संस्थाएँ दुःखियों का दुःख निवारण कर रही हैं, ऐसा दीखना चाहिए था।

मैंने एक सहज प्रश्न पूछा और राज्यकर्ताओं के सामने रखा था कि मुझे यह बताइये कि जो भी अच्छा काम किया जा रहा है, उसमें से कितना हिस्सा गरीबों के पास जाता है? भगवान् को 'विश्वनाथ' और 'जगन्नाथ' कहते हैं, क्योंकि वह सबका संरक्षक है। फिर भी उसका विशेष नाम है 'दीनानाथ', दीनों का रक्षणकर्ता। हमारी राज्यसंस्था दीनानाथ

प्रजा में अभय हो

ऐसी हालत में हमारे राज्यकर्ताओं को गहरे चिंतन से ही हरएक कदम उठाना चाहिए। उत्तम 'ॲडमिनिस्ट्रेशन' (शासन) चलाना एक कर्तव्य माना गया है। जिसके राज्य में शांति और व्यवस्था रहती है और साधारण राज्यकर्ता भी जहाँ सोचते हैं कि 'बहुत ज्यादा परिवर्तन न हो, जितना हो सके, उतना ही परिवर्तन किया जाय,' वही उत्तम राज्य-व्यवस्था है। मेरी नम्र राय है कि हिन्दुस्तान के लिए अब इतना ही काफी नहीं। साधारण राज्यव्यवस्था चलती है, लोगों को बहुत तकलीफ नहीं होती, इतने से ही हमारा समाधान नहीं होना चाहिए। याने व्यवस्था और सामाजिक शान्ति, इतना आदर्श अपर्याप्त है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जिसे अभी लोग 'समृद्धि' कहते हैं—याने 'जीवनमान बढ़ाना' वह भी काफी नहीं। वे 'जीवनमान' बढ़ाने की बात जरूर करें, पर उतना काफी नहीं। हिन्दुस्तान का जीवनमान बहुत गिरा है, उसे ऊपर उठाना है, यह ठीक है। किन्तु हमारे देश के सामने परमेश्वर ने जो कार्य रखा है, उसे सोचते हुए यह बहुत ही छोटी चीज है, ऐसा लगता है।

आखिर हमारे लिए कौन-सी मुख्य चीज होनी चाहिए? इस प्रसंग में मैं पुराना शब्द ही इस्तेमाल करूँगा : 'अभयम्'। हमारे राज्य में अभय होना चाहिए। हिन्दुस्तान के राज्यशास्त्र में यह एक बहुत ही महत्त्व का शब्द है। उसमें लिखा है कि प्रजा में अभय होना चाहिए। विशेष बात यह है कि हिन्दुस्तान की पारमार्थिक भाषा में भी 'अभय' शब्द महत्त्व का है। आपको मालूम होगा कि गीता में सबसे बढ़कर स्थान अभय को दिया गया है। पारमार्थिक दृष्टि यही रही कि मनुष्य को सदा निर्भय रहना चाहिए और यहाँ के राज्यशास्त्र की भी यही दृष्टि रही। साधारण शान्ति से थोड़ा-सा सुखवृद्धि का प्रयत्न हो रहा हो, फिर भी जहाँ निर्भयता न हो, वहाँ हमने अपना काम नहीं किया, ऐसा ही मैं कहूँगा। आज दुनिया जितनी भयभीत हुई है, उतनी शायद कभी न

उन्हींके घर पहुँचाते हैं। जो दरिद्र भगवान् है, उसके पास अपनी कन्या पहुँचाने के लिए कौन तैयार है? पर जो तैयार होगा, वही भय का एक स्थान टाल सकेगा। ऐसा दर्शन मुझे अपने देश में नहीं हो रहा है। मैं फिर से कहूँगा कि इसमें मैं किसीको दोष नहीं दे रहा हूँ, लेकिन हमारा काम क्या है, इस ओर आपकी दृष्टि खींचना चाहता हूँ।

'पंचवार्षिक योजना' की नकल मेरे पास आयी है। मुझे कहा गया है कि उस पर मैं अपना अभिप्राय दूँ। मैंने कहा : 'मैं उसकी भाषा नहीं समझ सकता, मैं समझता हूँ, वैसी अगर उसकी भाषा हो तो ठीक है।' इस पर वे पूछने लगे कि 'कौन-सी भाषा है?' मैंने कहा कि 'बापू ने कहा था कि कस्तूरबा-ट्रस्ट का काम उन गाँवों में चलना चाहिए, जहाँ जनसंख्या दो हजार से नीचे हो।' क्या शहरवालों से बापू का द्वेष था? जो सबसे दुःखी अवयव है, उसके पास पहले मदद पहुँचनी चाहिए। इसलिए मैंने कहा कि पंचवार्षिक योजना में यह बात होती कि इतनी सारी रकम ऐसे छोटे-छोटे गाँवों के लिए खर्च हो रही है, तब तो मैं वह भाषा समझ सकता। एक प्रसिद्ध कहानी है—पूछा गया था कि नदी में पानी कितना है? चार फुट या तीन फुट? कोई निर्णय नहीं होता था। याने उसमें खतरा है या नहीं, यह कोई नहीं कह सकता था।

हम जेल में थे, तो राजनीतिक कैदियों का वजन बहुत घटा था। बहुत होहल्ला हो गया। ऊपर से पूछा गया कि इस तरह वजन क्यों घटा? फिर जेलर की तरफ से सबका वजन लिया गया। ध्यान में आया कि औसत एक पौंड वजन बढ़ा। उसने लिख दिया कि दो हजार कैदियों का वजन औसतन एक पौंड बढ़ा। जाहिर था कि औसत एक पौंड बढ़ा, लेकिन इसमें पचासों का वजन घटा था। इस तरह औसत से कोई निर्णय नहीं होता कि खतरा है या नहीं?

सारांश, दुःखियों को किस तरह मदद पहुँचायी जा रही है, यह ध्यान में आयेगा, तभी ठीक होगा। यह जब तक नहीं होगा, तब तक जनता में अभय नहीं होगा। अभी बम्बई में इतने दंगे हुए, हमें उसका

होनी चाहिए, लेकिन होता उससे उल्टा है। गाँव में 'इलेक्ट्रिसिटी' आती है, तो वह आम लोगों के लिए नहीं रहती। कुछ लोगों का यह खयाल है कि 'बाबा गांधीजी का चेला है, ग्रामोद्योग वगैरह चाहता है, वह बिजली नहीं चाहता होगा।' मैं उनसे कहता हूँ कि मुझे तो 'एटोमिक एनर्जी' भी चाहिए। लेकिन यह सोचिये कि बिजली पहले किसके पास पहुँचती है। पहले बड़े शहरों में जाती है, उसके बाद दूसरे गाँवों में जाती है। गाँवों में भी उसे पहले मिलती है, जिसके पास पैसा हो और जो उसे ले सके। परिणामस्वरूप वह कुछ लोगों का धंधा बन जाता है। जो दूर-दूर के गाँव हैं, वहाँ तो बिजली पहुँचती ही नहीं। गरीबों के पास बिजली जायगी भी, तो वह निरुपद्रवी प्रकाश के रूप में, उत्पादन के लिए न जायगी। किन्तु सूर्यनारायण इससे बिलकुल उल्टे काम करता है। वह उगता है, तो उसका प्रकाश उस झोपड़ी में प्रथम जाता है, जिसके दरवाजे नहीं हैं, फिर वह शहरों में प्रवेश करता है। और सबसे आखिर में बड़े-बड़े महलों में जाता है। जहाँ लोग अपने भवन आदि छोड़कर खुले खेत में आते हैं, तो सूर्यनारायण उनकी मदद में फौरन दौड़ता है। सूर्यनारायण नंगे की जितनी सेवा करता है, उतनी पहने हुए की नहीं। यह उसकी खूबी है कि सबसे प्रथम जिसे उसकी आवश्यकता है, उसे मदद देता है। इसी तरह बिजली हम चाहेंगे, लेकिन प्रश्न है कि क्या बिजली उनके पास पहुँचती है ?

अब तो मैं गाँव-गाँव घूमता हूँ, और दीनों के दुःख अच्छी तरह जानता हूँ। 'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' चलानेवाले भी मुझसे मिलते हैं। हाल ही में अभी डे साहब मिले थे। उन्होंने भी यही कहा कि हमारी मदद उन्हींको पहुँचती है, जो मदद खींच सकते हैं। सरकार और कम्युनिटी प्रोजेक्ट की तरफ से भी मदद उन्हें मिलती है, जिन्हें 'सिक्युरिटी' होगी। शंकर के साथ शादी करने के लिए कौन तैयार है ? वह तो सर्व प्रकार से दरिद्र है। उसके साथ शादी करने के लिए पार्वती ही तैयार थी ! पर आज तो सब कन्याओं के पिता लक्ष्मीवान् देखकर अपनी कन्याएँ

होनी चाहिए, शरीर-परिश्रम पर चलने की तालीम मिलनी चाहिए। इतना आप करेंगे, तो जो दो भयस्थान हैं, वे दूर हो जायँगे।

कर्नूल
१२-३-'५६

करुणा कैसे बढ़े ?

किसी भी देश की सरकार अपने देश को मजबूत बनाने की बात सोचती है, लेकिन यह नहीं सोचती कि देश में करुणा कैसे बढ़े ? देश की सैनिक शक्ति बढ़ाने की बात सभी सोचते हैं। यह नहीं सोचते कि अपने देश में अगर कारुण्य बढ़ेगा, तो इस देश के जरिये दुनिया को शान्ति मिलेगी और सारी दुनिया की जनता करुणागुण से जीत ली जायगी। करुणा का प्रभाव मानव पर कितना पड़ता है, यह बात जाहिर है। करोड़ों लोग ईसामसीह का नाम लेते हैं, सिर्फ उसकी करुणा के कारण। बुद्ध भगवान् की जयजयकार करनेवाले चालीस करोड़ लोग दुनिया में हैं। उनकी करुणा के कारण ही वे उन्हें याद करते हैं। आज करोड़ों लोगों के मन, जीवन और मरण पर अगर किसी चीज का अधिक-से-अधिक प्रभाव है, तो वह करुणा का है।

करुणा का प्रभाव छिपा नहीं है। फिर भी राष्ट्रों की सरकारें, राष्ट्र की सम्मति से जो राष्ट्र का नियोजन करती हैं, और देश को मजबूत बनाने के लिए सोचती हैं, वे करुणा का प्रचार नहीं करतीं, सैनिक-शक्ति का ही प्रचार करती हैं। पाकिस्तान की सरकार का ७० प्रतिशत खर्च सेना पर हो रहा है और वह समझती है कि इससे देश मजबूत बनेगा। हिन्दुस्तान के लोग भी सरकार से पूछते हैं कि आप हमारी रक्षा के और देश की मजबूती के लिए क्या कर रहे हैं ? हमारे नेता समझाते हैं कि 'हम भी जागरूक हैं, इस प्रश्न के प्रति उदासीन नहीं हैं। किन्तु केवल तात्कालिक दृष्टि से काम करना उचित नहीं, दूर दृष्टि भी रखनी पड़ती है। देश-सेवा के दूसरे भी काम हैं, उनके प्रति भी दुर्लक्ष्य नहीं कर सकते।

बिलकुल आश्चर्य नहीं लगा, बल्कि आश्चर्य यही लगा कि इतने कम तादाद में दंगे क्यों हुए। बम्बई में लाखों लोग फुटपाथ पर अपना जीवन बिताते हैं, इसलिए आश्चर्य इस बात का होना चाहिए कि इतनी भी शान्ति वहाँ कैसे है। इसका उत्तर यही है कि हिन्दुस्तान की सभ्यता में ऐसी चीज है, जिसके कारण यह शान्ति है। कोई भी निमित्त होता है, तो दंगा हो जाता है। लेकिन निमित्त मुख्य नहीं, मुख्य चीज तो यह है कि दुःखियों को मदद मिलनी चाहिए। इसी तरफ हमारा ध्यान जाना चाहिए।

एकरसता के लिए नयी तालीम चाहिए

दूसरी बात यह है कि अपनी जनता में एकरसता नहीं है। इसके कई कारण हैं। यह देश अनेक मानव-वंशों का बना हुआ है। इसलिए इतनी एकरसता तो अभी आ नहीं सकती। फिर भी वह देश का एक भयस्थान है, इसलिए राज्यकर्ताओं को इसकी चिन्ता होनी चाहिए कि यह सारा छिन्न-भिन्न समाज एक कैसे बनाया जाय। इसका यही उपाय है कि देश की तालीम बदली जाय। मुझे इस बात का आश्चर्य होता है कि हमारे देश में राज्य बदला, पर तालीम नहीं बदली। मैंने तो उसी दिन कहा था कि आज पुराना राज्य गया, तो जैसे पुराना झण्डा एक क्षण के लिए भी नहीं टिक सकता, वैसे ही पुरानी तालीम भी एकदम बन्द होनी चाहिए। किन्तु वह पुरानी तालीम आज तक चल रही है। यह जाहिर है कि अंग्रेजों को राज्य चलाने के लिए चन्द लोग नौकर की हैसियत से चाहिए थे। इसलिए उन्होंने अपनी विद्या यहाँ दी। परिणाम-स्वरूप जिन्होंने वह तालीम पायी, वे जनता से बिलकुल दूर हो गये और उनके और जनता के बीच एक दीवाल खड़ी हो गयी। आज भी वह विद्या जारी है, तो समाज में एकरसता कैसे आयेगी?

सारांश, आज अपनी व्यवस्था में जो अत्यन्त दुःखी हैं, उन्हें प्रथम मदद मिलनी चाहिए, सब प्रकार के ऊँच-नीच-भाव मिटाने की कोशिश

के साथ मैत्री कर ली है। मैत्री तो सारी दुनिया से करनी चाहिए। किन्तु यह मैत्री सैनिक मदद पाने के लिए की गयी है। पाकिस्तान शस्त्रबल बढ़ा रहा है, तो हिन्दुस्तान को भी लगता है कि अब हमें भी शस्त्रबल बढ़ाना चाहिए। पार्लमेण्ट में भी प्रश्न पूछे जाते हैं कि 'आप सावधान हैं या नहीं ? आपको भी शस्त्रास्त्रों से सज्ज होना चाहिए। अगर अमेरिका से मदद न मिले, तो रूस से ही लेनी चाहिए।' इस पर जवाब देनेवाले जवाब देते हैं कि 'भाई, हम सावधान हैं।' वे जानते हैं कि हमें अपनी ताकत बनानी होगी। फिर भी देश में अच्छी योजना चलती है, तो उसमें बाधा डालने की जरूरत नहीं। कारण उससे बल ही मिलता है। शस्त्रबल बढ़ाने के लिए हम सावधान हैं और जिम्मेदारी भी महसूस करते हैं।

देश की जबान में ताकत कैसे आये ?

पाकिस्तान कहता है कि हिन्दुस्तान से लड़ने की हमारी मनीषा नहीं। हम कोई भी समस्या बातचीत से ही हल करना चाहते हैं। फिर भी सैन्यबल बढ़ता है, कूवत के साथ बातचीत चल सकती है और उसमें बल भी आता है। किन्तु ऐसी हालत में हिन्दुस्तान भी ताकत के साथ बातचीत करने के लिए शस्त्रास्त्र-बल बढ़ाये, तो इसका कोई अन्त ही न आयेगा। वास्तव में अपने देश में, जनता में ऐसी ताकत होनी चाहिए कि वह स्वयं कहे कि हम निर्भय हैं और हमें शस्त्रबल की जरूरत नहीं है। हम पाकिस्तान से ताकत के साथ बातचीत करना जरूर चाहते हैं। लेकिन हमारी जबान की ताकत बढ़े, इसलिए हमारे देश की सेना पहले जितनी थी, उससे आधी कर डालें। उस पर जितना खर्च डर के मारे करते थे, डर छोड़कर उतना खर्च न करें। क्योंकि हम चाहते हैं कि पड़ोसी देश डर रहा है, सैन्य बढ़ रहा है। ऐसे देश से मुकाबला करने के लिए हमें अपनी ताकत बढ़ानी चाहिए। हम सैन्यबल और शस्त्र-शक्ति कम करें, ताकि हमारी भाषा में जोर आये। क्या ऐसी सलाह अपने प्रधानमन्त्री को देने की हमारी तैयारी है ?

सेना की तरफ भी ध्यान देना पड़ता है।' हमारे नायकों को, इस तरह का उत्तर देना पड़ता है, जो अपने मन में करुणा को बहुत आदर देते हैं।

अडोनी (आन्ध्र)
२४-३-'५६

पाकिस्तान को बढ़ती सैन्यशक्ति का उत्तर :१०:

इन दिनों सभी देश एक-दूसरे के साथ अतिनिकट सम्पर्क में आ गये हैं। उधर की हवा इधर और इधर की हवा उधर शीघ्र फैल जाती है। हमें इसमें कोई खतरा नहीं मालूम होता, क्योंकि जहाँ विदेश की हवा यहाँ शीघ्र आ सकती है, वहीं यहाँ की हवा भी शीघ्र विदेश जा भी सकती है। यह तो बहुत बड़ा साधन हमारे हाथ में है—हम अपने देश में एक हवा तैयार करते हैं, तो सहज ही उसका असर सारी दुनिया पर हो जाता है।

स्वतन्त्र बुद्धि से सोचें

किन्तु अगर हम अपनी स्वतन्त्र बुद्धि न रखेंगे, तो विदेशी हवा का असर उतनी ही शीघ्रता से हम पर होगा। इसलिए हमारे देश के सामने सबसे मुख्य प्रश्न यही है कि हम अपना दिमाग स्वतन्त्र और कायम रखें। हमें स्वराज्य मिला है, तो उसकी चरितार्थता इसीमें है कि हमारे देश का हरएक नागरिक स्वतन्त्र बुद्धि से सोचे। देश की स्थिति, परम्परा आदि देखते हुए अपने देश के लिए अपने ही ढंग से सोचें। किन्तु जिस दुनिया के लोगों ने हिंसा को ही अन्तिम आधार मान लिया हो, वहाँ अभिक्रमण-शक्ति (Initiative) किसीके हाथ में नहीं रह सकती।

आज अमेरिका और रूस को एक-दूसरे का भय है। सारी दुनिया में भय छाया है। छोटे-बड़े सभी देशों में भय व्याप्त है। कोई भी देश अपने मनसुताबिक कोई योजना बना नहीं पाता। एक-दूसरे को शस्त्र बढ़ाता हुआ देख खुद भी शस्त्र बढ़ाने लग जाता है। पाकिस्तान ने अमेरिका

उन्हें यह भी तय करना होगा कि हिन्दुस्तान में जितना समाज-सेवा का काम चलता है, उसमें हिंसा का प्रवेश न हो। हमें ऐसी ही कार्यपद्धति ढूँढ़नी होगी। सब संस्था और पक्षों के सामने हम यह कार्यक्रम रखना चाहते हैं। कम-से-कम इतना तो हो कि हिन्दुस्तान की आन्तरिक रक्षा के लिए किसी भी पुलिस (Soldier) की जरूरत न हो। अगर आपके आन्तरिक मसले हल करने के लिए (जैसे कि S. R. C. का मामला) जगह-जगह काफी पुलिस रखी जाती है, तो विदेश का हमला जल्द हो सकता है।

अभी पाकिस्तान की तरफ से छिपे हमले हुए हैं। हम आशा करते हैं कि वह योजनापूर्वक न हुए होंगे। किन्तु वे बुद्धिपूर्वक भी हुए हों, तो आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि जो सैन्यबल बढ़ाता है, वह बीच-बीच में सैन्य को कुछ काम देगा या नहीं? जैसे नार्मल स्कूल का प्रैक्टिसिंग स्कूल (Practicing School) होता है, वैसे ही ये 'प्रैक्टिस' (Practice) कर लेते होंगे, हिन्दुस्तान कहाँ तक जाग्रत है, यह देख लेते होंगे।

मैं उन पर हेतु का आरोप नहीं करता, क्योंकि मैं उसे जानता नहीं। यही कहता हूँ कि अगर देश में आन्तरिक शान्ति रखने के लिए पर्याप्त सेना की जरूरत पड़े, तो अपने देश को दूसरे देश से बचाने के लिए और भी सेना आवश्यक होगी। याने देश की आन्तरिक शान्ति और विदेशी हमले से देश को बचाने के लिए देश सेना पर आधार रखेगा, तो फिर सैनिक-राज्य होगा। अगर अपनी प्रजा से डरना है और बाहर की प्रजा से भी डरना है, तो किससे न डरना होगा? इसलिए सबको निश्चय करना चाहिए कि हम आन्तरिक शान्ति के लिए हिंसा का उपयोग न करेंगे। हमें यह समझना चाहिए कि अगर आन्तरिक शान्ति के लिए हिंसा का उपयोग करने का प्रसंग हम पर आता है, तो राज्यकर्ता के नाते हम नालायक होंगे।

किन्तु यह एकपक्षीय बात नहीं, क्योंकि सरकार जनता का प्रतिबिंब

पाक से बात करने के लिए शस्त्रत्याग

किसीने मुझसे पूछा कि आप पाकिस्तान के साथ बातचीत करने जायँगे, तो क्या तैयारी रखेंगे ? मैंने कहा : 'जब तक मैं सैन्यबल खतम नहीं करता, तब तक उससे बोलने की ताकत ही मुझमें नहीं आती। वास्तव में बातचीत की ताकत तो अक्ल में होती है और वह तब तक नहीं आती, जब तक कि हम सैन्यबल पर भरोसा रखते हैं। अपने भाई को जीत लेने की शक्ति तब तक मुझे प्राप्त नहीं हो सकती, जब तक कि अहिंसा की शक्ति पर मेरा विश्वास न हो। लेकिन जब मैं यह बात कहता हूँ, तो लोग समझते हैं कि यह शख्स या तो बहुत पुराना नमूना होगा या चार हजार साल बाद का नमूना होगा।

आज तो यह पागल का प्रलाप लगता है, लेकिन कहीं-न-कहीं किसी देश में यह ताकत अवश्य होनी चाहिए, जो दूसरे की ओर न देखते हुए अपना शस्त्रबल क्षीण कर दे। यह ताकत आज न आयी हो, तो कल आनी चाहिए और कल आये, इसीलिए आज योजना होनी चाहिए। अगर हम पाकिस्तान के डर से शस्त्रसेना बढ़ाने की बात करें, तो किस मुँह से रूस-अमेरिका को शस्त्रसेना कम करने के लिए कहेंगे ? जाहिर है कि वह शक्ति आज हमारे देश में नहीं है, लेकिन वह आनी चाहिए। यह शक्ति जिस किसी देश में आयेगी, वह सारी दुनिया की समस्या हल करने की राह दिखायेगा। वह खुद बचेगा और दुनिया को बचायेगा। कुल इतिहास देखते हुए हमें विश्वास होता है कि यह शक्ति भारत में आयेगी। अब उसी दिशा में हमारा कर्तव्य क्या होना चाहिए, यही सोचना चाहिए।

आन्तरिक शान्ति के लिए हिंसा का प्रयोग न हो

आज अपने देश में कई घटनाएँ हो रही हैं। सबसे श्रेष्ठ घटना यही है कि पाकिस्तान सैन्यबल बढ़ा रहा है और हमें भी शस्त्रबल बढ़ाने की जरूरत महसूस हो रही है। इसका उपाय यही है कि हम लोगों में अहिंसक शक्ति बढ़ायें। इस विषय पर राजनैतिक दलों को गम्भीरता से सोचना चाहिए।

शिक्षक को एटम बम अत्यन्त निरुपयोगी चीज लगती है, पर बच्चे को तमाचा लगाने में ज्यादा विश्वास है। जो कार्य अध्यापन-कला से न होगा, वह उस छोटे-से तमाचे से होगा, ऐसी उसकी श्रद्धा है। माता के हाथ में एक निर्दोष लड़का आया—माँ के उदर में किसी बालक ने जन्म पाया। माता कहती है कि देखो चाँद! तो वह विश्वास रखता है कि हाँ, वह चाँद ही है। ऐसे विश्वासु लड़कों को भी मारने-पीटने में माता-पिता को श्रद्धा है। वे बड़ी-बड़ी भयानक हिंसा से तो डरते हैं और उनमें उन्हें विश्वास भी नहीं है, लेकिन छोटी हिंसा में श्रद्धा है, जो बड़ी भयानक है।

सेना बढ़ाना हो, तो लोगों को भूखों मारना होगा

१९४२ के आन्दोलन में हिन्दुस्तान ने अशान्तिमय तरीके से अंग्रेजों को यहाँ से हटाया, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। कुछ कहते हैं कि हिंसा और अहिंसा, दोनों मिलाकर काम हुआ। घी-शकर के साथ आटा मिलता है, तो लड्डू बनता है, वैसे हिंसा, अहिंसा तथा कुछ युक्ति और दलील, ऐसे तीन प्रकार से काम होता है। सन् १९४२ के आन्दोलन में इन्हीं चीजों का अभ्यास हुआ था। इसीलिए एस० आर० सी० के बाद यह हुआ। किन्तु अब हमें छोटी हिंसा के इस विश्वास से सर्वथा मुक्त होना चाहिए।

पाकिस्तान के एक प्रधानमन्त्री ने कहा था कि हम भूखे मरने को राजी हैं, लेकिन देश की सुरक्षा (Defence) मजबूत बनायेंगे। यह तो एक बोलने की भाषा है। क्या इसका अर्थ यह है कि वह खुद देश की रक्षा के लिए भूखा मरनेवाला था? इसका अर्थ यही है कि हम अपने यहाँ के गरीबों को भूखों मारने के लिए तैयार हैं, लेकिन देश की रक्षा की उपेक्षा करने को तैयार नहीं हैं। आज वहाँ ७० प्रतिशत खर्च सेना पर हो रहा है। हमारे यहाँ भी ५० प्रतिशत खर्च हो ही रहा है। जब सेना पर ही इतना खर्च होगा, तो गरीबों के लिए क्या रहेगा? फिर

है। अतः जनता की ओर से भी यह निश्चय होना चाहिए कि कुछ भी हो, अपने देश के मसले हल करने के लिए हम कभी भी सैनिक-बल का उपयोग न करेंगे, पुलिस, सेना कभी निर्माण न करेंगे। इनका निश्चय सब पक्षों की ओर से भी होना चाहिए। आज जितने भिन्न-भिन्न पक्ष हैं, सब एक-दूसरे के साथ बात करने के लिए कभी इकट्ठे नहीं होते। हर मसले पर सब अलग-अलग सोचते हैं। मेरा खयाल है कि वे शादी और भोजन के अवसर पर भी एक-दूसरे के घर न जाते होंगे। किन्तु सबके चित्त में अगर देश का हित है, तो उसकी चर्चा के लिए सबको इकट्ठा होना चाहिए।

इन दिनों विश्वशान्ति की बात सर्वमान्य वस्तु हो गयी है। कम्युनिस्ट भी विश्वशान्ति की बात करते हैं, तो वे भी इस पर चर्चा करने के लिए इकट्ठे हो सकते हैं। यह बात अपने देश में आज की स्थिति में अत्यन्त आवश्यक है।

छोटी हिंसा में श्रद्धा सबसे भयानक

मसले हल करने के लिए सबको 'अशांतिमय तरीके का उपयोग न करेंगे' इतनी ही निषेध-प्रतिज्ञा करने से काम न चलेगा। उन्हें मसले हल करने के लिए शांतिमय तरीका भी ढूँढ़ना होगा। अगर हिन्दुस्तान की कुल प्रजा कुछ बुनियादी मसले शान्ति की ताकत से हल करती है, तो शान्ति पर विश्वास और श्रद्धा हासिल होगी। आज यह श्रद्धा अभी लोगों में पैदा नहीं हुई है। आखिर एस० आर० सी० (राज्य-पुनस्संगठन आयोग) के बाद दंगे क्यों हुए? जिन्होंने किये, उनका अहिंसा पर तो विश्वास नहीं है। तब क्या हिंसा पर विश्वास है? क्या वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तान एटम बम आदि का उपयोग कर सके, ऐसी इसकी ताकत बने? स्पष्ट है कि ऐसी बड़ी-बड़ी हिंसा पर उनका बिलकुल विश्वास नहीं है। वे मानते हैं कि एटम बम से कभी शांति हासिल न होगी। फिर भी उनका छोटी-छोटी हिंसा पर विश्वास अवश्य है, यह बहुत ही भयानक चीज है।

शिक्षक को एटम बम अत्यन्त निरुपयोगी चीज लगती है, पर बच्चे को तमाचा लगाने में ज्यादा विश्वास है। जो कार्य अध्यापन-कला से न होगा, वह उस छोटे-से तमाचे से होगा, ऐसी उसकी श्रद्धा है। माता के हाथ में एक निर्दोष लड़का आया—माँ के उदर में किसी बालक ने जन्म पाया। माता कहती है कि देखो चाँद! तो वह विश्वास रखता है कि हाँ, वह चाँद ही है। ऐसे विश्वासु लड़कों को भी मारने-पीटने में माता-पिता को श्रद्धा है। वे बड़ी-बड़ी भयानक हिंसा से तो डरते हैं और उनमें उन्हें विश्वास भी नहीं है, लेकिन छोटी हिंसा में श्रद्धा है, जो बड़ी भयानक है।

सेना बढ़ाना हो, तो लोगों को भूखों मारना होगा

१९४२ के आन्दोलन में हिन्दुस्तान ने अशान्तिमय तरीके से अंग्रेजों को यहाँ से हटाया, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। कुछ कहते हैं कि हिंसा और अहिंसा, दोनों मिलाकर काम हुआ। घी-शक्कर के साथ आटा मिलता है, तो लड्डू बनता है, वैसे हिंसा, अहिंसा तथा कुछ युक्ति और दलील, ऐसे तीन प्रकार से काम होता है। सन् १९४२ के आन्दोलन में इन्हीं चीजों का अभ्यास हुआ था। इसीलिए एस० आर० सी० के बाद यह हुआ। किन्तु अब हमें छोटी हिंसा के इस विश्वास से सर्वथा मुक्त होना चाहिए।

पाकिस्तान के एक प्रधानमन्त्री ने कहा था कि हम भूखे मरने को राजी हैं, लेकिन देश की सुरक्षा (Defence) मजबूत बनायेंगे। यह तो एक बोलने की भाषा है। क्या इसका अर्थ यह है कि वह खुद देश की रक्षा के लिए भूखा मरनेवाला था? इसका अर्थ यही है कि हम अपने यहाँ के गरीबों को भूखों मारने के लिए तैयार हैं, लेकिन देश की रक्षा की उपेक्षा करने को तैयार नहीं हैं। आज वहाँ ७० प्रतिशत खर्च सेना पर हो रहा है। हमारे यहाँ भी ५० प्रतिशत खर्च हो ही रहा है। जब सेना पर ही इतना खर्च होगा, तो गरीबों के लिए क्या रहेगा? फिर

है। अतः जनता की ओर से भी यह निश्चय होना चाहिए कि कुछ भी हो, अपने देश के मसले हल करने के लिए हम कभी भी सैनिक-बल का उपयोग न करेंगे, पुलिस, सेना कभी निर्माण न करेंगे। इनका निश्चय सब पक्षों की ओर से भी होना चाहिए। आज जितने भिन्न-भिन्न पक्ष हैं, सब एक-दूसरे के साथ बात करने के लिए कभी इकट्ठे नहीं होते। हर मसले पर सब अलग-अलग सोचते हैं। मेरा खयाल है कि वे शादी और भोजन के अवसर पर भी एक-दूसरे के घर न जाते होंगे। किन्तु सबके चित्त में अगर देश का हित है, तो उसकी चर्चा के लिए सबको इकट्ठा होना चाहिए।

इन दिनों विश्वशान्ति की बात सर्वमान्य वस्तु हो गयी है। कम्युनिस्ट भी विश्वशान्ति की बात करते हैं, तो वे भी इस पर चर्चा करने के लिए इकट्ठे हो सकते हैं। यह बात अपने देश में आज की स्थिति में अत्यन्त आवश्यक है।

छोटी हिंसा में श्रद्धा सबसे भयानक

मसले हल करने के लिए सबको 'अशांतिमय तरीके का उपयोग न करेंगे' इतनी ही निषेध-प्रतिज्ञा करने से काम न चलेगा। उन्हें मसले हल करने के लिए शांतिमय तरीका भी ढूँढ़ना होगा। अगर हिन्दुस्तान की कुल प्रजा कुछ बुनियादी मसले शान्ति की ताकत से हल करती है, तो शान्ति पर विश्वास और श्रद्धा हासिल होगी। आज यह श्रद्धा अभी लोगों में पैदा नहीं हुई है। आखिर एस० आर० सी० (राज्य-पुनस्संगठन आयोग) के बाद दंगे क्यों हुए? जिन्होंने किये, उनका अहिंसा पर तो विश्वास नहीं है। तब क्या हिंसा पर विश्वास है? क्या वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तान एटम बम आदि का उपयोग कर सके, ऐसी इसकी ताकत बने? स्पष्ट है कि ऐसी बड़ी-बड़ी हिंसा पर उनका बिलकुल विश्वास नहीं है। वे मानते हैं कि एटम बम से कभी शांति हासिल न होगी। फिर भी उनका छोटी-छोटी हिंसा पर विश्वास अवश्य है, यह बहुत ही भयानक चीज है।

नैतिक शक्ति से ही लड़ना है

क्या आप समझते हैं कि हिन्दुस्तान की सेना शस्त्रास्त्र-सज्जित रूस और अमेरिका का सामना करेगी ? नहीं, हमें देश की रक्षा शस्त्र से नहीं, निर्भयता, नीतिमत्ता और एकता से करनी होगी। हमारा देश इतना बड़ा नहीं कि वह भौतिक दृष्टि से सम्पन्न हो सके। वह नीतिमत्ता से ही सम्पन्न हो सकता है। जिस देश के पास प्रति व्यक्ति एक एकड़ भी जमीन नहीं, भला वह भौतिक शक्ति से दूसरे देश की बराबरी क्या करेगा ? किन्तु हमारी सेना तो देवसेना होगी। उसका एक-एक वीर लाखों के लिए भारी होगा। अकेला हनुमान् लंका में गया और उस राक्षस-नगरी को भस्म करके चला आया। अंगद अकेला गया, पर रावण का आसन हिला आया। आखिर वह कौन-सी शक्ति थी ? और कोई नहीं, केवल नैतिक शक्ति थी। हिन्दुस्तान को इसके आगे की लड़ाइयाँ उसी शक्ति से लड़नी होंगी।

आवड़ी (मद्रास)
१५-५-'५६

एकता की आवश्यकता

इसके लिए हिन्दुस्तान में एकता होनी चाहिए। सिपाही के मन में यह भावना हो कि मैं जनसेवक हूँ, भारतीय हूँ। 'मैं अमुक धर्म का हूँ अमुक जाति का हूँ, अमुक भाषा का हूँ', ऐसी संकुचित भावना उसमें न होनी चाहिए। धर्मभेद, जातिभेद आदि की छोटी-छोटी कल्पना सिपाही के मन में हो, तो सिपाही खतम ही है। सिपाही तो भारतीयता की मूर्ति होना चाहिए। उसके इस प्रकार के गुण होने चाहिए, क्योंकि इसके आगे नैतिक लड़ाई लड़नी है। भारत की सेना कोरिया में नैतिक काम के लिए ही गयी थी। यह तो अभी की घटना है। इसके आगे भी दुनिया हिन्दुस्तान की मदद चाहेगी, तो दूसरे प्रकार की भौतिक मदद नहीं, वरन् नैतिक मदद ही चाहेगी। इसलिए हमारे सैनिक आदर्श नीतिमान् पुरुष होने चाहिए।

गरीबों में असन्तोष फैलता है, तो समझाया जाता है कि कमबख्त हिन्दुस्तान का खतरा है, इसलिए हमारे देश की बुरी हालत है। भूखे लोगों को खाने को अन्न नहीं मिलता, तो हिन्दुस्तान के लिए द्वेष का अन्न दिया जाता है। फिर सैनिक बनकर वे कभी-न-कभी हिन्दुस्तान पर हमला करने की सोचते हैं। ऐसा द्वेष अपने देश के लिए होना चाहिए या जहाँ सैनिक राज्य है, उन देशों के लिए होना चाहिए ? इसलिए हमने कहा कि अगर हम सेना की ताकत बढ़ायेंगे, तो हम शेर नहीं, बिल्ली बनेंगे। फिर गरीबों को दबाना पड़ेगा, ग्रामोद्योगों को उत्तेजन नहीं दिया जा सकेगा, यन्त्रोद्योग बढ़ाना होगा। सिपाही की खुशामद के लिए सब कुछ करना होगा और रूस का गुरुत्व मानना होगा। फिर तो अपने देश का स्वत्व ही न रहेगा।

कर्तव्य की चार बातें

इसके लिए हमें ये चार बातें करनी होंगी : (१) यह निश्चय कि सरकार या लोगों के जरिये हिंसा न हो (२) हम अपने मुख्य-मुख्य मसले सरकार-निरपेक्ष जनशक्ति से हल करें। (३) देश में शिक्षण स्वातन्त्र्य हो। और (४) आज का चुनाव का तरीका बदल दिया जाय। आज की पद्धति से गरीबों का कभी उद्धार न होगा। आज चुनाव में उनका कोई स्थान ही नहीं है। उससे जाति-भेद ही बढ़ रहा है। इसके अलावा जिस मनुष्य को देखा भी नहीं, कोई जान-पहचान भी नहीं, वह खड़ा होता और उसे मत देना पड़ता है। इस तरह इस चुनाव में त्रिदोष हैं। मनुष्य को त्रिदोष होता है, तो उसके बचने की आशा नहीं रहती। इसलिए यह चुनाव का तरीका भी बदलना चाहिए। गाँव में प्रत्यक्ष पद्धति से चुनाव होना चाहिए और ऊपर के चुनाव अप्रत्यक्ष पद्धति से हों, तभी गरीबों का उद्धार होगा।

अडोनी (आन्ध्र)
२४-३-'५६

उत्तम से उत्तम सेवक की, जो पॉवर में गये हैं, शक्ति बढ़ी है या घटी है ? शास्त्र में लिखा है, तपस्या करने पर इन्द्र-पद प्राप्त होता है, तो उसी दिन से उसके क्षय की शुरुआत हो जाती है। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' पुण्य का क्षय हो जाने पर उसे लात मारकर मृत्युलोक में भेज दिया जाता है। इसलिए अगर हम जनता की शक्ति निर्माण करेंगे, तो वास्तव में वह 'स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स' होगा।

एक जमाना था, जब रूस में लोग स्टालिन की स्तुति करते थे। इतिहास उसकी स्तुति से भरा पड़ा था। लेकिन आज स्टालिन के मरने के बाद उसके हाथ के नीचे काम करनेवाले ही उसकी निंदा करने लगे हैं। अब वे कहते हैं कि चन्द दिन इतिहास न पढ़ाया जायगा, क्योंकि नया इतिहास लिखना है। वे नये इतिहास में यही लिखेंगे कि पहला इतिहास गलत था। सोचिये कि अब इसमें लोगों की क्या ताकत बनी ? जो सरकार करेगी, वही वहाँ होगा। इसीलिए हम कहना चाहते हैं कि उस देश में आजादी नहीं, बुद्धि की स्वतंत्रता नहीं है। इंग्लैंड, रूस, अमेरिका ये सब देश अपनी प्रजा का कल्याण कर लें, पर वहाँ जन-शक्ति निर्माण नहीं हो सकती।

भूदान-यज्ञ जन-शक्ति बढ़ाने का आन्दोलन है। इसलिए इसमें राजनीति का अभाव नहीं है। फिर भी यह आन्दोलन आज की राजनीति का खंडन करनेवाला है। हम आज की प्रचलित राजनीति से अलग रहकर नयी राजनीति निर्माण करना चाहते हैं। उस नयी राजनीति को हम 'लोक-नीति' कहते हैं। हम राजनीति का खंडन कर लोकनीति बनायेंगे।

समुद्र का विरोध नदी नहीं कर सकती

इस पर पूछा जाता है कि आप लोकनीति स्थापित करने की बात करते हैं, पर उसका भी विरोध करने की वृत्ति कहीं-कहीं दिखाई देती है। उस हालत में हम क्या करेंगे ? इस पर मेरा उत्तर यही है कि लोकनीति ऐसी व्यापक नीति है कि उसका विरोध करनेवाला ही गिर जायगा।

'पॉवर पॉलिटिक्स' और 'स्ट्रेंग्थ' पॉलिटिक्स' : ११ :

कानून से जनशक्ति पैदा नहीं होती

जापान से एक पत्र आया है। उसमें पाँच मनुष्य के हस्ताक्षर हैं। उसमें उन्होंने जापान का वर्णन लिखा है। दूर से जो जापान की प्रशंसा सुनते हैं, नजदीक जाने पर उन्हें वहाँ का सच्चा चित्र देखने को मिल सकता है। वहाँ कानून से जमीन बाँट ली गयी है, लेकिन मालिक और मज़दूरों में कटुता पैदा हुई है ! उससे ताकत नहीं बनती। किन्तु हमारा तो उद्देश्य है कि समाज में ताकत निर्माण हो। स्वराज्य के बाद लोग ज्यादा परतंत्र बने हैं। हर बात में हम सरकार पर ही निर्भर रहने लगे हैं। सामाजिक, धार्मिक या पारिवारिक—किसी भी प्रकार के काम, छूत-अछूत भेद, हर बात सरकार ही करे और हम कुछ न करें, ऐसी हालत हो गयी है। जो जनता सरकार पर इतनी निर्भर रहेगी, वह शक्तिमान् कैसे बनेगी ? कानून से मसला हल होगा, लेकिन शक्ति न बढ़ेगी। वास्तव में लोगों को आत्म-शक्ति का भान होना चाहिए। वह तभी होगा, जब लोग एक मसला हल करेंगे।

'पॉवर पॉलिटिक्स' और 'स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स'

कुछ लोग हमसे कहते हैं कि आपके भूदान में जितने लोग लगे हैं, उन सबकी परीक्षा १९५७ के चुनाव में हो जायगी। तब मालूम होगा कि कितने लोग टिकेंगे और कितने लोग चुनाव में जायँगे। चुनाव में जाना पाप नहीं, यह काम बुरा नहीं। फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि जो लोग इसमें से उसमें जायँगे, वे जनशक्ति का पहलू खो देंगे। समझने की बात है कि 'पावर पॉलिटिक्स' एक बात है और 'स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स' दूसरी। ये लोग 'पॉवर पॉलिटिक्स' के पीछे जाते हैं, लेकिन 'पॉवर' में 'स्ट्रेंग्थ' का क्षय होता है। 'स्ट्रेंग्थ' निष्काम सेवा से बढ़ती है। देखिये,

अप्रत्यक्ष चुनाव

कुछ राजनैतिक पक्ष हमारे विचारों को कुछ अंशों में ग्रहण कर रहे हैं। आजकल अप्रत्यक्ष चुनावों की बात चल पड़ी है। दो-तीन साल से हम उस चीज को कहते आये हैं। अब वह विचार लोग कुछ अंश में मानने लगे हैं। पहले भी कुछ मानते थे, ऐसा नहीं कि बिलकुल ही न मानते थे, किन्तु पहले किसी कारण उन्हें लगता था कि यह नहीं हो सकता, पर अब हो सकेगा, ऐसा लगता होगा। यह भी एक परिवर्तन-सा हो रहा है। यह नहीं कि हमारे विचारों के कारण वह हो रहा हो। सम्भव है कि कुछ ऐसे संयोग दुनिया में पैदा हो गये हों, जिन्हें हम नहीं जानते। हालाँकि मैं तो महसूस करता हूँ—यद्यपि जानता नहीं, लेकिन भीतर से अनुभव करता हूँ—कि दुनिया में कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ चल रही हैं, जो मनुष्य को एक विशिष्ट बिन्दु पर लाने की चेष्टा कर रही हैं। उसके परिणामस्वरूप हम भी दूसरों की तरफ जा रहे हैं और दूसरे हमारी तरफ। इसलिए अमुक ने अमुक का विचार-परिवर्तन किया या कराया, यह भाषा और यह विचार भी गलत है। मैं नहीं समझता कि जिन लोगों ने यह विचार अभी प्रकट किया कि अप्रत्यक्ष चुनाव होने चाहिए, उनका पहले से कोई भिन्न विचार था। सम्भव है, पहले से भी उनके मन में वह रहा हो और किसी कारण उसे प्रकट न कर सके हों और अब प्रकट कर रहे हों। यह तो मैंने सिर्फ एक मिसाल दी।

धर्मपुरी-सर्वोदयपुरम्
५-८-'५६

चुनाव खेलो

इन दिनों बहुत से लोगों को हर बात में 'फाइट' करने की आदत पड़ गयी है। कहा जाता है कि अगले साल १९५७ में चुनाव की 'फाइट' होगी। हमने कई बार कहा है कि तुम लोग चुनाव लड़ते क्यों हो ?

उसीकी क्षति होगी। समुद्र का विरोध नदी नहीं कर सकती। जो नदी ऐसा करेगी, वह सूख जायगी। इसलिए यह डर रखने की जरूरत नहीं कि जो काम हम करेंगे, उसके विरुद्ध दूसरे लोग खड़े होंगे। लोकनीति की स्थापना अभावात्मक (निगेटिव) नहीं। उसका मतलब यह नहीं कि आज की राजनीति का खंडन कर उसके दोष दिखाये जायँ। समझने की बात है कि 'आज की राजनीति' यद्यपि 'लोकनीति' नहीं, फिर भी 'लोकमान्य' अवश्य है। इसलिए जब लोग बदलेंगे, तभी वह बदलेगी। इसलिए हम राजनीति के दोष ही दिखाते चले जायँगे, तो अपनी शक्ति व्यर्थ खर्च करेंगे।

मान लीजिये कि हम कोई स्कूल चलाते हैं। वह स्कूल आकर्षक हुआ, तो वहाँ पालक अपने लड़के भेजेंगे और उसी गाँव के सरकारी स्कूल में लड़के कम जायँगे। फलतः सरकारी स्कूल वहाँ न चलेगा। लोग अपने बच्चे ही न भेजेंगे, तो सरकार क्या करेगी? वह अपना स्कूल वहाँ से उठा लेगी और मेरा कब्जा करने के लिए एक युक्ति सोचेगी। वह मुझे एक चिट्ठी लिखेगी कि आपका स्कूल बहुत अच्छा चलता है। हमारी तरफ से आप दस हजार रुपया लीजिये। अगर मैं वह पैसा लूँगा, तो खतम हो जाऊँगा। इसलिए मैं उसे पत्र लिखूँगा कि 'हमारी सरकार हमसे प्रेम करती है, इसलिए हम उसका शुक्रिया अदा करते हैं, पर हम जो काम करने जा रहे हैं, वह सरकार-निरपेक्ष है। इसलिए आप मदद देंगे, तो हमारे काम को क्षति ही पहुँचेगी। इसलिए हम आपकी 'ऑफर' स्वीकार नहीं कर सकते। जरूरत होगी, तो सलाह जरूर लेंगे।' इस तरह हम पत्र लिखेंगे, तभी जन-शक्ति बढ़ेगी। नहीं तो हम अपनी शक्ति खो देंगे।

मद्रास
१८-५-'५६

विनोद के बीच चुनाव होना चाहिए। फिर दोनों में से कोई भी हार जाय, तो कोई भी हर्ज नहीं।

हमने बिहार में यह खूब देखा है। बिहार के कई कुटुम्बों में एक-आध कांग्रेसी होता है, दूसरा कम्युनिस्ट, तीसरा सोशलिस्ट, तो चौथा सर्वोदयवादी। बाप अगर काँग्रेसी रहा, तो बेटा जरूर कम्युनिस्ट होगा। लेकिन वे लोग कहते हैं कि किसी भी पक्ष का राज्य चले, अपने कुटुम्ब का नुकसान न होगा, क्योंकि कुटुम्ब में हरएक पार्टी के लोग होते हैं। यही आनन्द प्राचीन काल में हिन्दुस्तान में था। बाप हिन्दू होता था, तो बेटा बौद्ध और उसका एक भाई जैन होता था। सभी एक ही परिवार में प्रेम से रहते और अलग-अलग अपने-अपने धर्म में विश्वास रखते थे। लेकिन धर्म-विश्वास अलग है, तो प्रेम तोड़ना चाहिए, इसकी कोई जरूरत नहीं। इसी तरह राजनैतिक पद्धति अलग होने पर भी प्रेम तोड़ने की जरूरत नहीं है। इसलिए चुनाव में लड़ने की वृत्ति, 'टु फाइट इलेक्शन' यह शब्द बहुत बुरा है। यह शब्द अँग्रेजी भाषा से यहाँ आया है। अपने देश में तो चुनाव खेल होना चाहिए।

घर्षण में तेल डालिये

मशीन में 'घर्षण' तो होता ही है। अगर बिना 'घर्षण' की मशीन बनायें, तो वह काम ही न देगी। बिना घर्षण के मशीन ढीली पड़ जायगी। उसमें गति ही न आयेगी। इसलिए कितना भी हँसते-हँसते चुनाव खेलो, फिर भी उसमें कुछ-न-कुछ घर्षण होगा ही। ऐसे समय आप तेल की डिबिया लेकर तैयार रहिये। ज्योंही घर्षण की स्थिति मालूम पड़े, त्योंही उसमें तेल डालिये। अगर यह कला आपको सध जाय, तो लोग शिकायत न करेंगे कि आप चुनाव से अलग रहे। बल्कि यही कहेंगे कि अगर ऐसे थोड़े लोग अलग न रहते, तो तेल ही कौन डालता!

परीक्षक जनता

दूसरी बात हमें आपसे यह कहनी थी कि हिन्दुस्तान के लोग बड़े

चुनाव तो खेलना चाहिए। कुश्ती खेलते हैं या नहीं? दो मनुष्यों के बिना कुश्ती नहीं होती। इसलिए कांग्रेसवालों को इस वक्त बड़ी मुश्किल हो रही है। उन्हें फिक्र है कि सामने कुश्ती के लिए मल्ल ही नहीं दिखाई देता। विरोधी दल के बिना लोकशाही का कारोबार अच्छा नहीं चलता, यह सिद्धान्त हमने बनाया ही है। आप अगर विरोधी दल चाहते हैं, तो आपको चुनाव खेलना चाहिए, न कि लड़ना। कुश्ती में जो जीतता है, उसे इनाम मिलता ही है। लेकिन जो हारता है, उसे भी सम्मानपूर्वक नारियल दिया जाता है। क्योंकि अगर वह न हारता, तो दूसरे को ५००) रु० इनाम मिलता ही नहीं। इसीलिए चुनाव को एक खेल समझें, तो आज जो उसमें बुराइयाँ होती हैं, वे न होंगी। जिसने चुनाव जीत लिया, उसे राज्य-कारोबार चलाने का इनाम मिल गया और जो चुनाव हार गया, उसे सार्वजनिक सेवा का नारियल! दोनों को दोनों ओर से लाभ है। उसमें अपना क्या बिगड़ेगा? वे हारे तो भी उनकी जीत होती है।

पक्षभेद के कारण प्रेम न घटे

चुनाव में हमें खेल के समान वृत्ति रखनी चाहिए। उसमें यह होना चाहिए कि हम दोनों भाई-भाई हैं। एक ही आश्रम या एक ही घर में रहते हैं, प्रेम से मिलजुल कर काम करते हैं, एक साथ खाते-पीते हैं, अपनी कमाई दोनों बाँट लेते हैं। उनमें एक सोशलिस्ट पार्टी का है, तो तो दूसरा कांग्रेस पक्ष का। फिर भी एक-दूसरे से दोनों अत्यन्त प्रेम करते हैं। चुनाव में ये दोनों जायँगे, तो एक कहेगा कि दूसरे को वोट मत दीजिये, क्योंकि वह अच्छा कारोबार न चलायेगा, क्योंकि उसकी कल्पना अच्छी नहीं है। दूसरा भी इसी तरह लोगों से कहेगा कि वह अच्छी लोकशाही न चलायेगा, क्योंकि उसका विचार ठीक नहीं है। इस तरह एक-दूसरे के विरुद्ध प्रचार करेंगे। लोगों में अपने विचार का प्रचार करेंगे। कोई भी हारे और कोई भी जीते, लेकिन घर पर जाकर दोनों एक साथ खायेंगे-पीयेंगे और प्रेम से रहेंगे। इस तरह आनन्द और

झगड़े का सवाल है। दुनिया में जितने झगड़े होते हैं, सब भाई-भाई के ही झगड़े हैं, दुश्मनों के नहीं। भाइयों में ही एक दूसरे पर दावा किया जाता है, जो मित्रों पर नहीं किया जाता। किसी मित्र ने एक-आध बार कुछ एहसान किया, तो आप उसे जिन्दगी भर याद रखते हैं। किन्तु भाई हमेशा आपका काम करता हो और कभी एक-आध बार वह आपकी बात न माने, तो आप उतना ही याद रखते हैं। इसलिए ये सारे झगड़े भाईचारे से मिटेंगे, फौज से नहीं। अगर हम फौज बढ़ायेंगे, तो पाकिस्तान भी बढ़ायेगा और फिर विश्वयुद्ध का भी खतरा खड़ा हो जायगा। लेकिन आज अगर हिन्दुस्तान हिम्मत करके अपनी सेना विघटित कर दे, तो हिन्दुस्तान की ताकत बहुत बढ़ जायगी। फिर पाकिस्तान भी फौज पर नाहक खर्च न करेगा।

लेकिन इसके लिए हिम्मत चाहिए, यह डरपोक का काम नहीं है। हम डरपोक हैं, डरपोक में कल्पना-शक्ति नहीं होती। सोचने की बात है कि हम पर हमला किसका होगा। उधर तो एटम और हाइड्रोजन बम बन रहे हैं, जो हमारे पास नहीं हैं। फिर भी हम कहते हैं कि हमारे पास एक चाकू तो होना ही चाहिए। मैं मानता हूँ कि अगर हिन्दुस्तान अपनी फौज को विघटित कर देगा, तो वह दुनिया में सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बन जायगा, इससे इसकी नैतिक प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जायगी। वह पाकिस्तान की जनता का दिल जीत लेगा और 'यू० एन० ओ०' में भी उसका वजन बहुत बढ़ जायगा।

तिरुपुर (कोयम्बतूर)

१८-१०-'५६

परीक्षक हैं। बैल बराबर पहचान लेता है कि गाड़ी चलानेवाला ठीक है या नहीं। उसे तुरत पता चल जाता है कि गाड़ी चलानेवाला शिक्षित है या अशिक्षित। हम कहते हैं कि सारी जनता मूर्ख है, लेकिन वह बहुत अक्ल रखती है। वह हम लोगों की बराबर परीक्षा करती है। हिन्दुस्तान के गरीब लोगों की सेवा संतों ने की है, इसलिए जब उसे मालूम होता है कि हम सेवक हैं, तब वह हमें संत की कसौटी पर कसती है। लोगों का जीवन-स्तर गिरा है, लेकिन चिंतन का स्तर ऊँचा ही है। इसलिए वे कार्यकर्ता और सेवक की छोटी-छोटी बात भी देखते हैं। इसलिए हमारा व्यक्तिगत आचरण जितना निर्मल और स्वच्छ रहेगा, उतना ही हमारा कार्य जल्दी होगा।

गांधी नगर
१८-१०-'५६

हाइड्रोजन बम और चाकू : १३ :

हमसे पूछा गया कि 'आप राज्य पर यकीन नहीं रखते हैं और कहते हैं कि फौज, पुलिस वगैरह की जरूरत नहीं है। उस हालत में अगर देश पर बाहरी हमला होगा, तो देश का बचाव कैसे किया जायगा?' हम कहते हैं कि दूसरा देश हम पर हमला करेगा ही क्यों? अगर हमारे देश में जमीन बहुत ज्यादा है और दूसरे देश के पास कम, इसलिए वह हमला करेगा, तो हम उसे प्रेम से जमीन दे देंगे। आस्ट्रेलिया में जमीन बहुत ज्यादा है, और वे दूसरों को वहाँ आने नहीं देते, इसलिए उन पर हमला हो सकता है। लेकिन हिन्दुस्तान पर हमला नहीं हो सकता है, क्योंकि हमारे पास जमीन कम ही है।

बात यह है कि हिन्दुस्तान पर अमेरिका या रूस कभी हमला न करेगा। अगर हमला होगा, तो पाकिस्तान से होगा। याने भाई-भाई के

२० साल में पुराना बादशाह जितने हुक्म चला सकता होगा, उतने हुक्म आज आपका मुख्यमंत्री भी चलाता होगा। इसलिए वे अगर प्रजा का भला करना चाहें, तो भला कर सकते हैं और बुरा करना चाहें, तो बुरा भी कर सकते हैं। प्रजा के हाथ में कुछ न रहेगा।

इस भ्रम में मत रहिये कि पाँच साल के बाद राज्य हमारे ही हाथ में है। पाँच साल में तो इधर का उधर हो जायगा। आज प्रजा को पूछने का सिर्फ नाटक होता है। उसके परिणामस्वरूप राज्य चलाने-वाले कहते हैं कि हम जो कुछ करते हैं, वह प्रजा की सम्मति से ही करते हैं। पुराने राजा यह नहीं कह सकते थे कि हम जो करते हैं, वह प्रजा की सम्मति से करते हैं। आजकल तो बम्बई, कलकत्ता, पटना और कई जगह सरकार की ओर से गोली चलायी जाय, तो वे कहेंगे कि लोगों की सम्मति से हम गोली चलाते हैं। लोगों ने हमें राज्य चलाने की आज्ञा दी है, इसलिए हमें ऐसा करना पड़ता है। पुराने राजाओं के सरदार यह नहीं कह सकते थे कि हमने गोली चलायी, तो लोगों की सम्मति से चलायी। इसलिए वे जो पुण्य-पाप करते थे, वह राजा का पुण्य-पाप होता था और उसका बोझ उसीको उठाना पड़ता था। लेकिन आज के राजा, जो पुण्य-पाप करेंगे, उसकी जिम्मेवारी आप पर है और पुराने जमाने के राजा से शतगुणित सत्ता अभी आपके मुख्यमंत्री के पास है। इसलिए गाँव-गाँव के लोगों को जाग जाना चाहिए। अपना भला-बुरा करने की सत्ता किसीको नहीं देनी चाहिए। न पाँच साल के लिए और न पाँच दिन के लिए।

आज के समाज का अन्तिम शब्द 'लॉ एण्ड ऑर्डर'

अभी तक लोकनेताओं की बहुत-सी ताकत और बुद्धि हिंसा के विकास में लगी है। सारा-का-सारा विज्ञान हिंसा का दास बना है। वैज्ञानिक को आज्ञा होती है कि वह इस प्रकार की खोज करे। पूँजीवादी समाज में ही नहीं, उसके पहले के समाज में भी विज्ञान की खोज की गयी

राजा मिटे नहीं : १४ :

आज के मुख्यमंत्री और राजाओं में खास फर्क नहीं है। पहला फर्क तो यह है कि पहले का राजा मृत्यु तक राज्य चलाता था, अब मुख्यमंत्री पाँच साल तक राज्य चलायेंगे। पाँच साल के बाद आप अगर उन्हें फिर से चुनेंगे, तो फिर से पाँच साल तक वे राज्य चलायेंगे। दूसरा फ़र्क यह है कि पहले राजा का बेटा गद्दी पर बैठता था, पर अब राज्यकर्ता का बेटा उसी तरह राज्य नहीं चला सकता। बस, इतना ही फर्क है और ढाँचे में कोई फर्क नहीं हुआ। पाँच साल तक यह पूरी हुकूमत चला सकता है। वह जो करेगा सो बनेगा।

आज के जमाने की गति

इस जमाने के ५ साल पुराने जमाने के ५० साल के बराबर हैं। पुराने जमाने में राजा हुक्म देता था, तो उसे देश में पहुँचते-पहुँचते ही दो-चार साल बीत जाते थे। इस बीच परिस्थिति बदल जाती, तो राजा द्वारा दूसरा हुक्म भेजा जाता। पहले हुक्म का अमल नहीं हो पाता था कि दूसरा हुक्म निकल जाता। उसे भी गाँव-गाँव पहुँचने में एक साल लग जाता। इसलिए वे केवल नाममात्र के राजा रहते थे। वे प्रजा के जीवन का बहुत ज्यादा नियमन नहीं कर पाते थे। लोगों को बहुत-कुछ आजादी थी। आज हालत दूसरी है। आज देहली से हुक्म निकला, तो उसी दिन सारे हिन्दुस्तान में पहुँच जाता है। रेडियो वगैरह ऐसे साधन हैं कि जो हुक्म दिया जायगा, उसके अमल के लिए दो घंटे में हिन्दुस्तान में तैयारी हो जायगी। यही हालत दूसरे देशों की है। इसलिए जिसे राजा बनाते हैं, फिर वह पाँच साल के लिए ही क्यों न हो, वह इतना काम कर सकता है, जितना पहले के राजा ५० साल में भी नहीं कर सकते थे। आज के पाँच वर्ष याने पुराने राजाओं को मरने के लिए जितना समय लगता था वह कुल समझ लो।

आज भी वही हालत है, यद्यपि लोकशाही का नाटक चलता है। आज की यह परिस्थिति बदलने का एक ही उपाय है कि जगह-जगह लोगों के हाथों में लोगों का जीवन आये। आज 'वेलफेअर-स्टेट' (कल्याणकारी राज्य) के नाम से बहुत-सी सत्ता केन्द्र के हाथ में रहती है। चाहे उसके कारण जनता को कुछ सुख प्राप्त होता हो, फिर भी हम उसे 'वेलफेअर' नहीं, 'इल्फेअर' ही कहेंगे। चन्द लोगों के हाथ में सत्ता रखना कोई 'वेलफेअर' नहीं। इसलिए अहिंसा का विचार तभी चलेगा, जब सत्ता गाँव-गाँव में बँटेगी। इसके लिए क्या ग्राम-ग्राम को अधिकार दिया जाय ? नहीं, अधिकार देने से नहीं मिलता, लेना पड़ता है। ग्रामवालों के हाथ में अधिकार तभी आयेगा, जब उनमें अपने गाँव का कारोबार चलाने की सूझ आयेगी। हम समझते हैं कि इस दिशा में सर्वोत्तम कदम अगर कोई हो सकता है, तो ग्रामदान ही है।

धारापुरम् (कोइम्बतूर)
११-११-'५६

सुशासन के खिलाफ आवाज : १५ :

आज दुनिया में दो प्रकार की संस्थाएँ बहुत मजबूत बनी हैं। एक है धर्म-संस्था और दूसरी है शासन-संस्था। दोनों संस्थाएँ लोक-सेवा के खयाल से बनायी गयी हैं। समाज को दोनों संस्थाओं की आवश्यकता महसूस हुई और वह आज भी इनका उपयोग कर रहा है। जब ये दोनों संस्थाएँ बनीं, तब तो समाज को ये बहुत ही जरूरी मालूम हुईं, इसलिए उनका कुछ उपयोग भी हुआ।

धर्म-संस्था और शासन-संस्था से मुक्ति की जरूरत

लेकिन अब ऐसी हालत आ गयी है कि इन दोनों से छुटकारा पाना समाज के लिए जरूरी हो गया है। मैं यह नहीं कहता कि धर्म से

है। आप देखेंगे कि मामूली धनुष-बाण से लेकर एटम और हाइड्रोजन बम तक जितनी खोज हुई, उसके पीछे कितना दिमाग लगा, कितने प्रयोग हुए और हिंसा के कितने असंख्य औजार तैयार किये गये! इनके अलावा हिंसा के लिए अनेक प्रकार के तत्त्वज्ञान भी बनाये गये। पूँजीवाद, साम्यवाद आदि बहुत-से वाद (इज्म) क्या बता रहे हैं? विशिष्ट विचार समाज पर लादने के लिए ही ये तत्त्वज्ञान पैदा हुए हैं। इस तरह इधर तो हिंसा के औजारों के लिए बहुत खोज हुई और उधर हिंसा को उठानेवाले तत्त्वज्ञान बनाये गये।

इसके अलावा पेनल कोड, लॉ, कोर्ट, सारा-का-सारा कानून का ढाँचा क्या करता है? उसका अन्तिम शब्द क्या है? जैसे शंकराचार्य से पूछा गया कि आपका अन्तिम शब्द क्या है, तो उन्होंने कहा : 'ब्रह्म', वैसे ही आधुनिक समाज को, इन सब कानूनदाँ से पूछा जाय कि तुम्हारा आखिरी शब्द क्या है, तो वे कहेंगे : 'लॉ एण्ड ऑर्डर' (कानून और व्यवस्था)। याने वह आज के जमाने का 'ब्रह्म' है, आज का अन्तिम शब्द है। उनके पास इससे ऊँचा शब्द नहीं। कानून और व्यवस्था का मतलब है, अभी तक जो समाज-रचना बनी है, उस रचना में जिनके-जिनके जो अधिकार हैं, वे कायम रह सकें।

धारापुरम्, (कोइम्बतूर)
८-११-'५६

वेलफेअर नहीं, इलफेअर

जहाँ सारी सत्ता केन्द्रित हो, वहाँ लोकशाही नहीं कही जा सकती। उसमें चन्द लोग चुने जाते हैं, जिनके हाथों में सब कुछ रहता है। राजा-महाराजाओं के जमाने में भी कोई राजा अकेला राज्य न करता था, चन्द लोगों के सलाह-मशविरे से ही वे राज्य करते थे। राजा के सरदार, मंत्री आदि होते थे। राजा और उसके दो-चार सलाहकार अच्छे होते, तो देश का राज अच्छा चलता, अन्यथा मामला ही खराब हो जाता था।

नहीं। इतना ही होता, तो भी गनीमत थी ; पर आज समाज पर उनका बहुत बुरा असर भी हो रहा है।

श्रद्धावानों ने धर्म समाप्त किया

श्रद्धावानों पर इन संस्थाओं का बुरा असर हो रहा है। उन्होंने यह मान लिया है कि धर्म का जो कुछ कार्य है, उसे करने की जिम्मेवारी इन पुरोहितों की है, जिन्हें हमने इस काम के लिए चुना है। धर्म के लिए हमें कुछ नहीं करना है। वे समझते हैं कि पलनी में एक सुंदर मन्दिर बना दिया, उसके लिए कुछ जमीन, संपत्ति आदि भी दे दी, पूजा-अर्चा का इन्तजाम ठीक से हुआ है, तो हमारा धर्म-कार्य खतम हो गया ! यहाँ कार्तिकस्वामी का बड़ा उत्सव होगा। लोग मन्दिर में दर्शन करने के लिए जायँगे, परमेश्वर के सामने कुछ दक्षिणा रखनी हो, तो उसे भी रखेंगे। किन्तु धर्म के लिए हमें भी कुछ करना होता है, यह विचार श्रद्धावानों ने छोड़ दिया है। जो श्रद्धावान् नहीं, वे न तो पुरोहितों को पूछते हैं और न धर्म को ही। लेकिन जो श्रद्धावान् हैं, वे धर्म की, धर्म-प्रचार की, आचरण की और चिंतन-मनन की जिम्मेवारी गुरुओं एवं पुरोहितों पर छोड़ देते और अपने को मुक्त समझते हैं। फिर वे गुरु कहते हैं कि तुम लोग भस्म लगाओ, तो लोग गुरु की आज्ञा समझकर भस्म लगाते हैं और समझते हैं कि धर्मकार्य समाप्त हो गया !

जो श्रद्धा नहीं रखते, वे तो रखते ही नहीं; पर जो रखते हैं, उनकी वह श्रद्धा भी निर्वीर्य बन गयी है। एक व्यापारी है, जिसने व्यापार चलाने के लिए एक मुनीम रखा है। सारा काम मुनीम ही करता है और वह खुद बेवकूफ बनकर कुछ नहीं करता। उसने घर में पूजा करने के लिए एक ब्राह्मण रखा है और घर में 'पलनी आंडवन्' (भगवान् कार्तिकेय) की मूर्ति है। उस पूजा का कुल पुण्य उसे हासिल होता है। यात्रा के लिए भी उसने ब्राह्मण को भेज दिया और उसका कुल खर्चा खुद किया। ब्राह्मण को घूमने का व्यायाम हुआ और उस व्यापारी को यात्रा का पुण्य मिला। सारांश, जो श्रद्धाविहीन हैं, उन्होंने धर्म समाप्त किया,

छुटकारा पाने की जरूरत है, बल्कि यही कह रहा हूँ कि धर्म-संस्था से छुटकारा पाने की जरूरत है। मैं यह भी नहीं कहता कि लोगों का कुछ इन्तजाम, समाज-सेवा की योजना न हो, बल्कि यही कह रहा हूँ कि सेवा के नाम पर जो शासन चलता है, उससे छुटकारा पाना जरूरी है। जितना-जितना सोचता हूँ, उतना-ही-उतना मेरा यह दृढ़ विश्वास होता जा रहा है कि ये दोनों संस्थाएँ अच्छे उद्देश्य से शुरू हुईं और अब उन उद्देश्यों की पूर्ति हो गयी, इसलिए अब उनके जारी रहने में लाभ होने के बदले नुकसान ही होगा।

धर्म का जीवन पर असर नहीं

आज दुनियाभर में धर्म की क्या हालत है? ईसाई-धर्म, इसलाम-धर्म, हिन्दू-धर्म और बौद्ध-धर्म काम करते हैं। मैंने चार बड़े धर्मों का नाम लिया। इनके अलावा दूसरे छोटे-छोटे धर्म भी हैं। इन सब धर्मवालों ने अपनी-अपनी संस्थाएँ बनायी हैं। यूरोप में पोप काम करता है और चर्च की अच्छी मजबूत रचना बनी हुई है। जैसे जिले-जिले के लिए जिलाधीश होते हैं, वैसे ही वहाँ हर जिले के लिए चर्च का भी अधिकारी होता है। इसी प्रकार की रचना इसलाम में भी है। जगह-जगह उनकी मस्जिदें हैं, जहाँ मुल्ला होते हैं। उनकी तरफ से कुछ धर्म-प्रचार की योजना होती और कुछ उत्सव वगैरह भी चलते हैं। हिन्दुओं में भी ऐसा ही चलता है। मन्दिरों के जरिये यह सारा कार्य होता है। यही हालत बौद्धों की है। ये सारे धर्म अहिंसा, शान्ति, प्रेम आदि माननेवाले हैं; फिर भी आप देख रहे हैं कि दुनिया में शान्ति-स्थापना के काम में इन सभी संस्थाओं का कोई असर नहीं हो रहा है। कोई देश दूसरे देश पर हमला करता है, तो पोप से पूछता नहीं कि हमला करना ठीक है या बेठीक। वह समझता है कि पोप का अधिकार अलग है और हमारा अधिकार अलग। अपने व्यवहार में वे धर्म का कोई असर नहीं मानते। इतना ही नहीं, बल्कि लड़ाइयाँ चलती हैं, तो उनमें पक्षविशेष की विजय की प्रार्थनाएँ भी चर्चों में चलती हैं। समाज के व्यवहार में इन संस्थाओं का कोई खास असर

बजा रहे थे और नीचे लिखा था, 'गोपाल-बीड़ी'। अब इन सबको कौन रोकेगा ? क्या यह कोई धर्म-कार्य है ? लेकिन कोई भी श्रद्धावान् हिन्दू इसके बारे में न सोचेगा। वह इसमें अपनी जिम्मेवारी ही नहीं समझता। इतने बड़े अक्षरों में भगवान् के नाम के साथ बीड़ी का विज्ञापन दिया जाय और किसीको कुछ भी दुःख न हो। मिलवाले ने ऊपर पहाड़ पर मंडप बनाया, यह तो अच्छा किया। लेकिन उसके लिए मिल का नाम बड़े अक्षरों में लिखने की क्या जरूरत थी ? वहाँ जाकर हम पलनी-स्वामी का स्मरण करें या मिलवाले का ? इस तरह श्रद्धावान् लोगों ने कुल धर्म की हानि की है।

सेवा की जिम्मेवारी चन्द प्रतिनिधियों पर

हम चन्द लोगों को चुनकर देते और फिर वे हमारे प्रतिनिधि के नाते समाज-सेवा के सब काम करते हैं। उनके हाथ में नौकर-वर्ग रहता है ? इन चुने हुए लोगों पर हमने शासन और सेवा की जिम्मेवारी सौंपी है। अब हमें उस बारे में कुछ नहीं करना है, ऐसा लोग सोचते हैं। किन्तु अगर धर्म-कार्य पुजारियों पर और समाज-सेवा का कार्य चुने प्रतिनिधियों पर सौंपा, तो आपने अपने ऊपर कौन-सी जिम्मेवारी ली ? आप कहेंगे कि हम खायेंगे-पीयेंगे, सोयेंगे। यही जिम्मेवारी हमने उठायी है। किन्तु आपने ऐसी जिम्मेवारी दूसरों पर सौंपी, जिससे आप ठीक तरह से खा-पी भी नहीं सकते। यह शिकायत इसलिए होती है कि आपने जिन्हें काम सौंपा, वे वह काम ठीक तरह नहीं करते। पर वे वह काम अच्छी तरह करते, तो भी मेरा उस पर आक्षेप है। जो लोग अपना शासन और सेवा-भार चंद प्रतिनिधियों पर सौंपेंगे; धर्म और चिन्तन की जिम्मेवारी चंद लोगों पर सौंपेंगे, वे बिलकुल निस्सार होंगे। उनके जीवन में कोई प्राण-तत्त्व न रहेगा। लोग इसे अभी समझ नहीं रहे हैं। बल्कि उल्टा बाबा से ही पूछते हैं कि तुम गाँव-गाँव क्यों घूमते हो, जमीन हासिल करने और बाँटने की तकलीफ क्यों उठा रहे हो, सरकार

इसकी मुझे कोई शिकायत ही नहीं करनी है। किन्तु यही बड़ी शिकायत है कि जो श्रद्धा रखते हैं, उन्होंने धर्मकार्य चन्द लोगों को सौंपकर अपनेको उससे मुक्त रखा और धर्म को समाप्त कर दिया।

धर्म पुजारियों को सौंपा गया

मैं एक मिसाल देता हूँ। हिन्दू-धर्म में एक बहुत बड़ी बात है, वानप्रस्थाश्रम। शास्त्रों ने कहा है कि मनुष्य को अपनी विषय-वासना को मर्यादित रखना चाहिए। जैसे वह संस्कारपूर्वक गृहस्थ बना, वैसे ही उसे एक अवधि के बाद संस्कारपूर्वक गृहस्थाश्रम से मुक्त भी होना चाहिए। हिन्दू-धर्म की यह बात खूबी मानी जायगी। शास्त्रग्रन्थों में इसकी महिमा का बहुत वर्णन है, पर आज उसका कहीं अमल नहीं है। श्रद्धावान् हिन्दू इसके बारे में चिन्ता नहीं करते हैं। उन्होंने वह सारी चिन्ता पुरोहितों पर सौंप दी है।

श्रद्धालुओं की यह 'गोपाल-बीड़ी'!

आज सुबह हम पलनी-स्वामी के दर्शन के लिए पहाड़ पर गये थे। हमने देखा कि लोगों ने रास्ते में सीढ़ियाँ और कुछ मंडप भी बनाये हैं। ऐसा उन्होंने समझ लिया कि इससे हमारा कर्तव्य पूरा हो गया। ऊपर किसी मिलवाले ने एक मंडप बनाया है। उस पर मिल का नाम बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है। हमने देखा कि जगह-जगह जैसे धर्मवचन और पलनी-स्वामी के नाम लिखे गये हैं, वैसे ही सीढ़ियाँ आदि बनानेवाले मिलवालों वगैरह के नाम भी अंकित हैं। लोग समझते हैं कि हमने मंदिर बनवाया और वहाँ प्रभु की सेवा में अपना नाम भी अर्पण कर दिया है। कितना धर्म-विहीन कार्य है यह! लेकिन लोगों को इतनी सादी अक्ल भी नहीं है। वे समझते हैं कि हमने मंडप, सीढ़ियाँ बनायीं, तो हमारा कर्तव्य पूरा हो गया। वानप्रस्थाश्रम की स्थापना की चिन्ता तो मंदिर का पुजारी करेगा। हमने एक बार धारापुरम् में घूमते समय किसी मकान पर एक तमिल विज्ञापन देखा। वहाँ एक बड़ा सुन्दर चित्र था, बालकृष्ण मुरली

व्यवस्था का काम भी चन्द लोगों के हाथों में सौंपा है। दोनों ओर से हम पुरुषार्थहीन बन गये हैं। सर्वोदय-समाज हर व्यक्ति से कहता है कि अपने शासन का इन्तजाम तुम खुद करो, अपने धर्म का आचरण तुम खुद करो।

खुशासन में अधिक खतरा

आज मैं जब पहाड़ पर मन्दिर में जा रहा था, तो रास्ते में मन में जो विचार आये, वे आपके सामने रखे। मुझे अच्छा लगता है कि ऐसे स्थान बने हैं, इसलिए लोगों में कुछ-न-कुछ श्रद्धा बनी है। इन लोगों ने जो अच्छे-अच्छे काम किये, उसकी हम कद्र करते हैं। अगर हमने उसकी संस्था बनाकर ये काम चन्द लोगों के हाथ में सौंपे न होते, तो इनसे बहुत ज्यादा अच्छे काम होते। हमारी सरकार भी कुछ अच्छा काम करती है और कुछ गलत। पुराने राजाओं ने भी कुछ अच्छे काम किये और कुछ गलत। जो गलत काम पुराने राजाओं ने किये या आज की सरकार कर रही है, उसके बारे में मुझे कोई शिकायत नहीं करनी है। जो गलत काम हैं, वे और उनके परिणाम दुनियाभर जाहिर हो जाते हैं। चिन्ता की बात तो यह है कि दुनिया का भला करने की जिम्मेवारी चन्द लोगों पर सौंपी गयी और वे दुनिया का भला करें, ऐसा हम सोचते हैं।

मुझे मुख्य शिकायत इसीकी करनी है कि राज्यसंस्था कभी-कभी अच्छे काम करती है, उन अच्छे कामों से समाज के दिमाग पर उसका और असर होता है। अगले साल चुनाव होंगे, उस वक्त वे लोग आपके पास वोट माँगने आयेंगे और कहेंगे कि 'देखो, हमने इतने-इतने अच्छे काम किये।' अगर सचमुच में उन्होंने अच्छे काम किये हों, तो लोग उनके उपकार के बोझ के नीचे दब जायँगे। इसीका मुझे दुःख होता है। कुछ लोग उपकार करें और बाकी सब लोग उसके बोझ से नीचे दबें, यही गलत है। यह ठीक है कि छोटे बच्चों की जिम्मेवारी माता-पिता पर हो। पर क्या दस-दस हजार साल की संस्था के बाद भी हम बच्चे ही

के जरिये यह काम क्यों नहीं करवा लेते ? लोगों का यह सवाल वाजिब है। वे कहते हैं कि हमने सेवा के लिए नौकर रखे हैं, तो आप क्यों तकलीफ उठाते हैं ? आपको जमीन चाहिए, तो हम १-२ एकड़ दे देंगे, उसमें खेती कीजिये और मजे में खाइये-पीजिये, लाखों एकड़ जमीन हासिल करते हुए क्यों घूमते हैं ? याने लोग स्वयं तो अपनी सार्वजनिक सेवा की जिम्मेवारी मानते ही नहीं, लेकिन बाबा वह काम कर रहा है, तो उसीसे पूछते हैं कि नाहक काम क्यों करते हो ?

इंग्लैण्ड का उदाहरण

लोकशाही चलानेवाली संस्था का उत्तम नमूना इंग्लैण्ड और उसकी पार्लमेण्ट माना जाता है। किन्तु वहीं के लोगों ने जिनके हाथों में सत्ता सौंपी है, उन्होंने अभी-अभी मिस्र पर हमला कर दिया। इङ्गलैण्ड की जनता के लिए यह बड़े ही गौरव की बात है कि उसने इस आक्रमण के विरोध में जोरों से आवाज उठायी, फिर भी वे उसे रोक न सके। वहाँ इतनी उत्तम लोकशाही चलानेवाले भी कमजोर साबित हुए। आगे जब चुनाव होंगे, तब वे असर डालेंगे, यह दूसरी बात है; लेकिन इस वक्त जो बुरा काम हुआ, हो रहा है और होगा, उसे रोकने के लिए आवाज उठाने पर भी उनकी कुछ न चली। सारी दुनिया की आवाज इस आक्रमण के खिलाफ उठी, 'यू. एन. ओ.' का प्रस्ताव भी रहा। इसलिए आखिर उन्हें वह आक्रमण रोकना पड़ा।

जब हम अपने शासन का भार चन्द लोगों पर सौंपते हैं, तो यही हालत होती है। क्या रूस, क्या इङ्गलैण्ड, क्या चीन और क्या अमेरिका, हर देश में यही हालत है कि उन्होंने अपना कारोबार चन्द लोगों के हाथों में सौंप दिया है और उन्हींका अनुसरण दूसरों को करना पड़ता है। कम-बेशी परिमाण में सारी दुनिया की यही हालत है। पर हिन्दुस्तान की विशेष है, क्योंकि यहाँ की जनता में उस प्रकार की जाग्रति नहीं है, जैसे इंग्लैण्ड आदि देशों की जनता में है। हमने अपना धर्म और अपनी

पहली बात है : अहिंसा, सत्य अस्तेय की। दूसरी बात है : निष्काम सेवा और सकाम वृत्ति सहन करने की और तीसरी बात है : लोकनीति की निष्ठा। यह हमारे सेवकों की निष्ठा का एक महत्त्वपूर्ण अंग होना चाहिए। इस बार सर्व-सेवा-संघ ने जो प्रस्ताव किया, वह बहुत ही सुन्दर प्रस्ताव है। ऐसा प्रस्ताव कभी होता है, तो मुझ जैसे को बड़ा उत्साह आता है कि समझाने के लिए कोई चीज मिल गयी। यह प्रस्ताव ऐसा है कि उस पर बहुत बहस हो सकती है याने चर्चा को उत्तेजन देनेवाला प्रस्ताव है। 'हम अगर वोट नहीं देते, तो क्या नागरिक के कर्तव्य की हानि नहीं होती ? अगर बहुत लोग हमारी बात मानें, तो क्या गलत आदमियों के हाथ में कारोबार नहीं जायगा ?' आदि कई प्रश्न आते हैं। उन सबके बावजूद वह प्रस्ताव हमारे लिए बड़ा कल्याणकारी है। लोकनीति के विषय में जितना मैं सोच रहा हूँ उससे इतना निश्चय हो जाता है कि जो आज की राजनीति को, उसे तोड़ने के लिए भी, मान्य करेंगे, वे उसे तोड़ न पायेंगे। क्योंकि तोड़ने के लिए उसके बाहर रहना पड़ता है। आप वृक्ष के बाहर रहकर ही उसे काट पाते हैं, उस पर चढ़कर उसे तोड़ना चाहें, तो नहीं तोड़ सकते। इसलिए तोड़ने के खयाल से भी जिसके साथ जो सम्बन्ध जोड़ने की इच्छा हो, वह अत्यन्त सूक्ष्मतम मोह है। आज जिस हालत में दुनिया है, उसे देखते हुए मैं उसे निर्दोष मानने के लिए भी तैयार हो जाऊँगा। कल एक आस्ट्रिया के भाई को हमने कुछ समझाया, पर उन्हें यह मुश्किल रह गयी कि बाकी का तो सारा ठीक है, किन्तु सारे समाज के परिवर्तन के लिए अगर कहीं-न-कहीं सत्ता के केंद्र पर हमारा अंकुश न रहे, तो कैसे चलेगा ? इस अंकुश की बात को तो हम बराबर मानते हैं। पर हमारे मन की यह सफाई होनी चाहिए कि जब हम उससे अलग होंगे, तभी उस पर ज्यादा अंकुश रख सकेंगे।

पलनी, (मदुराई)
२०-११-'५६

रहे हैं ? अब हमें समझना चाहिए कि विज्ञान इतना फैला है और हजारों साल की ज्ञान की परंपरा चली आयी है, तो हरएक मनुष्य अपना-अपना ज्ञान और अपने-अपने धर्म का कारोबार अपने हाथ में ले, यही अच्छा है।

कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि सरकार गलत काम करती है, तो आप उसके खिलाफ जोरदार आवाज क्यों नहीं उठाते ? हम उसके खिलाफ जोरदार आवाज नहीं उठाते, कभी-कभी मौके पर कह देते हैं। किन्तु जब हम देखते हैं कि सरकार कोई अच्छा काम कर रही है, तभी जोरदार आवाज उठाते हैं। सरकार के गलत काम के खिलाफ आवाज उठाने के लिए हमारी जरूरत नहीं, लेकिन उसके अच्छे कामों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए हमारी जरूरत है। लोगों से यही कहने की जरूरत है कि 'तुम भेड़ बन रहे हो !' तुम लोग भेड़ होकर बोलने लगे कि 'गड़रियों ने बहुत अच्छा इन्तजाम किया', तो क्या यह खुश होने की बात है ? मैं उस पर क्या बोलूँ ? मुझे लगता है कि गड़रिये अच्छा काम नहीं करते, तो कम-से-कम उससे भेड़ तो समझ जाते हैं कि हम भेड़ बन रहे हैं। उन्हें अपनी स्थिति का कुछ भान हो जाता और वे समझते हैं कि हम भेड़ नहीं, मनुष्य हैं, हम अपना कारोबार अपने हाथ में क्यों नहीं रखते ? इसलिए हमारी आवाज सुशासन के खिलाफ उठती है। दुःशासन के खिलाफ तो महाभारत में व्यास ही आवाज उठा गये हैं। लोग जानते हैं कि खराब शासन न होना चाहिए। खराब शासन चलता है, तो लोग टीका करते हैं। यह कार्य तो दुनिया में चल ही रहा है। किन्तु हम पर कोई अच्छा शासन चलाये और हम शासित हो जायँ, यही हमें बुरा लगता है।

पलनी (मदुरा)
१७-११-'५६

लोकनीति की निष्ठा

आज की परिस्थिति पर मैंने निम्नलिखित तीन बातें सामने रखी हैं।

स्वराज्य के बाद त्याग की जरूरत

स्वराज्य आया, तो परिस्थिति के कारण आया, गांधीजी के कारण आया और कुछ गफलत में भी आया, ऐसा समझ लो। क्योंकि लंका और ब्रह्मदेश ने कौन-सा बड़ा प्रयत्न किया, जो उन्हें स्वराज्य मिला? इसलिए हमने कोई बहुत बड़ा पराक्रम किया और इसलिए हमें स्वराज्य मिला, इस भ्रम में न रहें। हाँ, हमने स्वराज्य के पहले इतना पराक्रम किया कि एक-दूसरे के बहुत-से गले काटे। हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि के जो झगड़े चले, उसका पराक्रम बहुत हुआ। आखिर गांधीजी ने कह दिया कि लोगों ने जो अहिंसा रखी, वह वीरों की अहिंसा नहीं, लाचारों की अहिंसा थी। अगर वीरों की अहिंसा होती, तो ३१ साल के अन्दर आप भारतभर में एक चमत्कार देखते। लेकिन उसके लिए हमें निराश नहीं होना है। हमें समझना चाहिए कि आगे हमारा कर्तव्य क्या है। गाँव-गाँव के लोगों को अपने पाँव पर खड़े होना चाहिए, त्याग की मात्रा बढ़नी चाहिए। हरएक को समझना चाहिए कि मुझे अपने गाँव के लिए त्याग करना है। ये सारे गुण गाँव-गाँव में आने चाहिए और गाँव-गाँव को अपनी शक्ति का भान होना चाहिए।

आईने में अपना ही प्रतिबिंब दीखता है

आज सारी दुनिया में एक भ्रम पैदा हुआ है कि सरकारों के कारण हम बचते हैं, अगर सरकार न होती, तो बच न पाते। आज ही हमने सुना कि जापान की सरकार सेना की बात कर रही है और वहाँ की जनता को वह जँच नहीं रही है। पाकिस्तान के जो मित्र हमसे मिले, उन्होंने भी कहा कि वहाँ की सरकार का किया हुआ सैनिक समझौता वहाँ की जनता पसन्द नहीं करती। उधर फ्रांस की सरकार फ्रेञ्च लोगों को दो-चार महीने से ज्यादा पसन्द नहीं आती, सालभर में दो-तीन बार सरकार बदला करती है। फिर भी दुनिया के लोगों को यह भ्रम है कि सरकार के बिना हमारा काम चल नहीं सकता। हम यह समझ सकते

दुनिया सरकाररूपी रोग से पीड़ित

मेरे मन में और एक बात है, जो मैं आपके सामने कह देना चाहता हूँ। क्योंकि इस छोटी-सी जिन्दगी में हम अपने विचार छिपाना नहीं, खोल देना चाहते हैं। हमारा मुख्य विचार है कि सारी दुनिया को सरकारों से मुक्ति मिले। इसलिए यदि हम सरकारी मदद पर ही निर्भर रहेंगे, तो वह चीज नहीं बनेगी। आज सारी दुनिया अगर किसी रोग से पीड़ित है, तो वह इस सरकाररूपी रोग से पीड़ित है। आज राम-नाम की जगह 'सरकार' नाम ने ले ली है। १९४७ से हम लोग ज्यादा गुलाम बन गये हैं। उसके पहले लोग समझते थे कि हमें सरकार की मदद न मिलेगी। जो कुछ करना है, हमें ही करना होगा। लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के बाद लोग समझने लगे हैं कि सरकार की मदद तो हमें मिलनेवाली ही है। अगर ऐसा सोचकर वे पहले से दस गुना परिश्रम करते, तो हिन्दुस्तान बहुत आगे बढ़ता। पर लोग आज उल्टा ही समझने लगे हैं। वे समझते हैं कि हमें कुछ करना-धरना तो है नहीं, जो कुछ करना है, सरकार को ही करना है। लोग समझते हैं कि अंग्रेजों के राज्य में आकाश से पानी बरसता था और अब भी सिर्फ पानी ही बरसेगा, तो ज्यादा क्या हुआ ? अब स्वराज्य हो गया है, तो मृग नक्षत्र में आसमान से कपड़ा नीचे गिरेगा, आर्द्रा नक्षत्र में केला गिरेगा और पुनर्वसु में सारा अनाज गिरेगा। वे कहते हैं कि 'स्वराज्य के पहले भी हमें काम करना पड़ता था और अब भी करना पड़ता है, तो हम सुखी तो नहीं हुए।' पर मैं कहता हूँ कि स्वराज्य के बाद आपने क्या छोड़ा ? उससे पहले आप आपस में लड़ते थे, क्या अब वह छोड़ दिया ? पहले आप झूठ बोलते थे, एक-दूसरे को ठगते थे, क्या अब वह सब छोड़ दिया ? अगर आपने वे सारे दुर्गुण नहीं छोड़े, तो परिस्थिति में क्या फर्क होगा ?

पेरियूर, (मदुरा)
२४-१२-'५६

पर उठाये रहेंगे, तब तक यह काम न बनेगा। क्योंकि आज चन्द लोग समझते हैं कि हम करोड़ों लोगों के लिए जिम्मेवार हैं और वे करोड़ों लोग भी समझते हैं कि ये लोग ही हमारी रक्षा करते हैं। इसीलिए उनके चित्त सदा भयभीत रहते हैं। जहाँ चित्त भयभीत होता है, वहाँ सारा दारोमदार सेना पर आ जाता है और सेना पर जितना भार रखा जाता है, उतना भय बढ़ता है।

सरकार के कारण हम असुरक्षित

लोकशाही का सबसे बड़ा दोष यह है कि हमारा सारा दारोमदार चन्द लोगों पर है। उसमें लोग अपने हाथ में अपना जीवन नहीं रखते। उसमें कुछ लोगों के हाथ में सत्ता दी जाती है और सभी आशा रखते हैं कि सरकार हमारी रक्षा करेगी। इसमें लोकमत का कोई सवाल नहीं, मुख्य व्यक्ति की अक्ल के अनुसार ही काम चलता है। यह बहुत ही शोचनीय बात है। आज कांग्रेस की सरकार चलती है, कभी दूसरी भी चलेगी। दूसरे देशों में दूसरी सरकारें चलती हैं। हमें इन सरकारों में कोई दिलचस्पी नहीं। हमें किसी खास सरकार के खिलाफ नहीं, कुल सरकारों के खिलाफ कहना है। हम मानते हैं कि जब तक हम यह सरकाररूपी सत्ता अपने सिर पर उठाये रहेंगे और उससे खुद को सुरक्षित मानते रहेंगे, तब तक हम अत्यन्त असुरक्षित हैं।

पेरिय्युर (मदुरा)
२४-१२-'५६

हैं कि लोगों का काम खेती के बिना न चलेगा, उद्योगों के बिना न चलेगा, प्रेमभाव के बिना न चलेगा, धर्म के बिना न चलेगा। हम यह भी समझ सकते हैं कि यदि शादी की विधि न हो, कुटुम्ब-व्यवस्था न हो, तो लोगों का काम न चलेगा। लेकिन ऐसी वस्तुओं में हम सरकार की गिनती नहीं करते।

वास्तव में जनता को सरकार की कोई जरूरत नहीं। वह तो एक समाज के प्रवाह में चीज बन गयी। समाज में एकरसता निर्माण करने में हम समर्थ सिद्ध न हुए। समाज में अनेकविध भेद पड़ गये। हमें अविरोध से काम करने का पूरा शिक्षण नहीं मिला। उसके बदले में हम राज्यसत्ता से काम लेना चाहते हैं। जो काम लोगों को शिक्षित करने से हो सकता है, उसे हम दण्डशक्ति से करना चाहते हैं। हरएक सरकार तालीम के लिए जितना खर्च करती है, उससे कई गुना खर्च सेना पर करती है। पाकिस्तान की सरकार कहती है कि "हिन्दुस्तान के डर के कारण हमें सेना और शस्त्रास्त्र बढ़ाने पड़ते हैं, उस पर खर्च करना पड़ता है।" हिन्दुस्तान की सरकार कहती है कि "पाकिस्तान का रुख अच्छा नहीं है, इसीलिए हमें सेना पर जोर देना पड़ता है।"

उधर रूस कहता है कि "अमेरिका का खयाल गलत है, इसलिए उसके डर से हमें शस्त्रास्त्र बढ़ाने पड़ते हैं।" अमेरिका भी रूस के लिए वही बात कहता है। आखिर सही बात क्या है? पाकिस्तान के डर से हिन्दुस्तान को डरना पड़ता है या हिन्दुस्तान के डर से पाकिस्तान को? अपना प्रतिबिम्ब ही आईने में दीखता है। वहाँ वह तलवार लेकर खड़ा है। हमें उसका डर मालूम होता है, हम अपनी तलवार मजबूती से पकड़ते हैं, तो वह आईनेवाली तस्वीर भी वैसा ही करती है। हमें यह पहचानना है कि सामने जो दीख रहा है, वह हमारा ही प्रतिबिम्ब है। अगर हिन्दुस्तान कम-से-कम सेना रखने की हिम्मत करेगा, तो हम समझते हैं कि वह सारी दुनिया में नैतिक शक्ति प्रकट करेगा।

जब तक हम दुनियाभर के सब लोग ये सारी सरकारें अपने सिर

आज का बोगस जनतन्त्र

आज सब देशों में सरकारी सत्ता है। वह चुनी हुई सरकार है, पर जन-शक्ति से काम नहीं होता। वह प्रातिनिधिक लोकशाही है, याने सारा सेवा-कार्य हमने प्रतिनिधियों को सौंप दिया है। पर महत्त्व का काम तो हम स्वयं करते हैं! भोजन, नींद आदि हमने प्रतिनिधियों पर नहीं सौंपी है। जीवन की महत्त्वपूर्ण बातें हम स्वयं करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जो बात प्रतिनिधियों पर सौंपी है, वह महत्त्व की नहीं है। शादी के लिए वर न हो, तो वह काम प्रतिनिधि से नहीं चलेगा! इसलिए किसी भी महत्त्व के काम में प्रतिनिधि नहीं चलता। हाँ, गौण कार्य में चलता है। अपने सारे महत्त्व के काम हम प्रतिनिधियों को सौंप दें, तो हम शक्तिहीन बन जाते हैं। फिर तो हमको अक्ल रखने की भी जरूरत नहीं। नौकरी के लिए १२८ नौकर (एम० एल० ए०) चुने हैं, परन्तु वे ही असली मालिक बनते हैं और जनता नाममात्र की मालिक रह जाती है—बिलकुल गुलाम की हैसियत में। क्या यह लोकशाही है? आज अमेरिका की कुल सत्ता आईक और उसके चन्द साथियों के हाथ में है। वे चाहें, तो देश को या दुनिया को भी आग लगा सकते हैं, अगर उनकी अक्ल गलत दिशा में गयी। इतनी भयानक शक्ति प्रतिनिधियों के हाथ में हमने दे रखी है। हमारे कुल जीवन पर हमारा काबू नहीं रहा है। शादी का कानून, तालीम का कानून, जमीन का कानून, व्यापार का कानून! कौन-सा कानून सरकार नहीं बना सकती? जीवन की हरएक शाखा में सरकार कानून बना सकती है। यह अत्यन्त भयानक दशा है—केवल इस देश की ही नहीं, कुल दुनिया की! इसीलिए प्रतिनिधियों से जो कार्य चलता है, उसे हमको गौण बना देना है और अपने जीवन के जो महत्त्व के काम हैं, वे अपनी निज की शक्ति से जनता को करने हैं। ग्रामदान से यह हो सकता है। इस वास्ते सेवा-सेना खड़ी

भारतीय राजचिह्न का संकेतार्थ !　　: १६ :

हमारे राजचिह्न में चार सिंह हैं। सामने से तो तीन ही सिंह दीखते हैं, पर हैं चार। यही अशोक का राज-चिह्न था, जो हमने भारतीय गण-तन्त्र के लिए स्वीकार किया। इस चिह्न का मतलब है कि गायें इकट्ठी होकर रहती हैं, भेड़ इकट्ठे होकर रहते हैं, लेकिन वे डरपोक हैं; इसीलिए इकट्ठे रहते हैं। वह अहिंसा नहीं है, डर है। उसमें बहादुरी नहीं है। भेड़ों के इकट्ठा होने में क्या बहादुरी है? उधर सिंह बहादुर है, लेकिन वह कभी इकट्ठा नहीं रहता। वह सारे जंगल का बादशाह कहलाता है, लेकिन उसका लक्षण यह है कि वह प्रजा का भक्षण करता है। उसकी बहादुरी प्रजा को खाने की है। जंगल के सारे प्राणियों को जो खा जायगा, उसका नाम है राजा! इस तरह सिंह वीर हैं, लेकिन वे हिंसक हैं। इसलिए वे अलग-अलग रहते हैं। तब अशोक ने युक्ति की। उसने चार सिंहों को इकट्ठा कर दिया, याने बहादुर होते हुए भी प्रेमपूर्वक इकट्ठे रहनेवाले सिंह वे बन गये! भेड़ इकट्ठे रहते हैं, लेकिन उनमें बहादुरी नहीं है। सिंह में बहादुरी है, लेकिन प्रेम नहीं है। प्रेम और बहादुरी जब इकट्ठा होती है, तब अहिंसा बनती है। अहिंसा की ताकत तब बनती है, जब शौर्य और प्रेम, दोनों एक साथ रहते हैं। इसलिए अशोक ने चार सिंह इकट्ठा करके अपना राज-चिह्न 'अहिंसा का प्रतीक' बनाया, क्योंकि यह स्वयं चंड-अशोक से धर्म-अशोक बन गया था!

हम चाहते हैं कि हरएक भारतीय 'सिंह' के समान बहादुर बने, लेकिन सिंह के मुताबिक अलग-अलग न रहे, इकट्ठा रहे। यह अगर हिन्दुस्तान में होगा, तो सचमुच में क्रांति होगी। ग्रामदान में यही हो रहा है।

नत्तम (मदुरा)
२५-२-'५७

से काम चलाते थे, वैसे ही आज कैबिनेट बनती है, उसमें प्रधान मंत्री अपने साथी चुन लेता है ! कहते हैं, ऐसा नहीं करेंगे, तो 'टीम' नहीं बनेगी। राजसत्ता के प्रतिक्रियास्वरूप आज की यह डेमोक्रेसी बनी है। इस तरह पहले के दोष इसमें आ ही जाते हैं। इस प्रकार सब सत्ता सरकार के हाथ में है। यह क्या स्वराज्य है, जहाँ जनता अपनी ताकत ही महसूस नहीं करती ? पुरानी राजसत्ता और आज की सरकार में फर्क भी क्या है ? इतना ही हुआ कि जो पत्थर मेरे सिर पर दूसरों द्वारा लादा जाता था, वह मैं स्वयं अपने हाथों से अपने सिर पर लाद ले रहा हूँ ! पहले मुझे वह अधिकार प्राप्त नहीं था, अब पत्थर स्वयं लाद लेने का अधिकार प्राप्त हुआ है ! पर वह है तो बोझ ही न ?

स्वराज्य कहीं नहीं

इसलिए आज दुनिया में आजादी नहीं है। जो है, वह केवल भ्रम है। आजादी तब तक नहीं होगी, जब तक हरएक मनुष्य, हरएक गाँव अपनी शक्ति महसूस नहीं करता। अपने गाँव का इन्तजाम हम करते हैं, गाँव के झगड़े हम मिटाते हैं, तालीम की पद्धति हम तय करते हैं, गाँव की रक्षा हम करते हैं, गाँव का व्यापार हम करते हैं, इस तरह गाँव के लोग अपना कारोबार स्वयं देखेंगे, तब गाँव की ताकत बढ़ेगी और फिर राज्य चलाने का अनुभव गाँव-गाँव के लोगों को होगा। फिर पण्डित नेहरू के बाद क्या होगा, यह सवाल खड़ा नहीं होगा। परन्तु आज गाँव में अक्ल नहीं है, क्योंकि वहाँ स्वराज्य ही नहीं है ! सब पराधीन बने हैं।

एक मिसाल देता हूँ। २५ साल पहले बिहार में बहुत बड़ा भूकम्प हुआ था। लोगों के नेता प्रथम दौड़े गये वहाँ के लोगों की मदद में। बाद में सरकारी मदद पहुँची। अब स्वराज्य की सरकार है, तो उसका यह कर्तव्य ही है, पर क्या लोगों का कुछ भी कर्तव्य नहीं है ? सभी काम क्या सरकार ही करेगी ? फिर हुआ भी यह कि सरकार की जो भी मदद आयी,

करनी है। लोग स्वयं ऐसी सेवा-सेना खड़ी करें। यहाँ एक सर्वोदय-मंडल बना है। मंडल के सेवक सबके सेवक और पक्ष-मुक्त हैं। सबको वे दुरुस्त करनेवाले हैं। वे अपनी विवेक-बुद्धि किसी सत्ता को नहीं दे सकते।

आज क्या स्थिति है? मान लो कि १०० मतदाता हैं। उनमें से ६० लोगों ने मत दिया और ४० ने नहीं। उसमें से फिर ३० मत जिसे मिले, वह पार्टी राज चलाती है और बाकी ३० मत भिन्न पक्षों में बँट गये हैं। इसका मतलब यह हुआ कि ३० लोगों की सत्ता १०० पर चलेगी !!

अब एक बिल असेम्बली में लाना है, तो उन चुने हुए ३० लोगों की पार्टी-मीटिंग होती है। उसमें उस बिल का मानो १५ सदस्य विरोध करते हैं। वे मीटिंग में अपना विरोध तो बतायेंगे, परन्तु असेम्बली में वे अनुकूल ही मत देंगे। शेष जो १५ सदस्य हैं, उनमें भी उनका जो नेता होता है या एक-दो जो मंत्री होते हैं, उनकी बात माननेवाले वे सदस्य होते हैं! इस तरह दो-तीन मनुष्यों का राज १०० मतदाताओं पर चलता है!

बोगस मामला

इस प्रकार देखा जाय, तो सारा मामला बोगस लगता है। इसमें जनशक्ति प्रकट नहीं होती, बल्कि पुराने राजा जितना नुकसान कर सकते थे, उससे ज्यादा नुकसान ये कर सकते हैं, क्योंकि ये 'लोकमत अनुकूल है', ऐसा दावा कर सकते हैं। अलावा इसके, पुरानी राजसत्ता 'वेलफेयर' नहीं थी, इस वास्ते जीवन के कुछ विभागों पर उनकी सत्ता भी नहीं थी। राजा अच्छा हो, तो राज अच्छा चलता था, नहीं तो वह खराब चलता था। आज भी यही हालत है। इसी वास्ते बम्बई में शराब-बन्दी हो सकती है, परन्तु गोवध-बन्दी नहीं हो सकती और बिहार में गोवध-बन्दी हो सकती है, परन्तु शराब-बन्दी नहीं हो सकती। यह सब क्या 'लोकमत' से चल रहा है? जैसे राजा अपने सरदारों

कानून से काम नहीं होता

दुनिया में काम करने के तीन ही रास्ते हैं : (१) कत्ल, (२) कानून और (३) करुणा। पहला तरीका कत्ल का होता है। कत्ल के जरिये कोई काम करने में किसीका कल्याण हो सकता है ? किसीका नहीं। दूसरा तरीका है कानून का। मैं कानून ऐसा चाहता हूँ कि जिसे सर्व-साधारण माने। कोई काम कानून बनाकर जबरदस्ती से नहीं कराया जा सकता। जो विचार जनता को मान्य नहीं, वह कानून से अमल में नहीं आ सकता। कानून बनाने का अर्थ तो यह होता है कि लोग उसे खुशी से मानें और उससे अमन-चैन कायम हो।

आखिर कानून का बनाना या बिगाड़ना आपके ही हाथ में होता है। मान लीजिये कि सरकार एक कानून बनाती है और आप उसे नहीं मानते, तो उस कानून का मतलब ही क्या रहा ? सरकार ने एक कानून बनाया कि चौदह साल से कम उम्रवाले बाल-बच्चों की शादी नहीं होनी चाहिए। लेकिन हम तो बीस-बीस बरस की उम्र में बच्चों की शादियाँ चाहते हैं। याने कानून अधिक नहीं, बल्कि कम-से-कम बनता है। सरकार को कानून के जरिये लोगों की सेवा करनी है। सरकार जब कानून बनायेगी, तो वह उसे अपने देश के हर हिस्से में लागू करेगी। यही तो कानून की खूबी है। लेकिन कोई कानून के जरिये क्रांति नहीं कर सकता। बुद्ध के जमाने में क्या हुआ ? अगर वह राज्य में रहकर क्रान्ति कर सकता, तो राज्य क्यों छोड़ता ? क्रान्तिकारी काम कानून से नहीं बनता।

चिरगाँव (झाँसी)
१६-१०-'५१

क्या यही सच्ची आजादी है ?

"आज कौन देश आजाद है ? क्या अमेरिका आजाद देश का नाम है ? इंग्लैण्ड, भारत, पाकिस्तान, चीन, जापान क्या आजाद हैं ? जो देश आजाद है, वह अपना नियोजन स्वतन्त्र रूप से करता है। कौन-सा

वह गरीबों तक पहुँची ही नहीं ! बीच में ही बड़े-बड़े लोगों ने उसका लाभ उठा लिया !

इससे भी बड़ी एक बात और है। सरकार उस क्षेत्र की मदद करना चाहती थी। पर उसके अधिकारी कम पड़ते थे। उसने जनता से सहायता माँगी। पर उस वक्त सोचा गया कि वहाँ पी० एस० पी० का वजन है, तो यह मदद अगर उनके जरिये बाँटी जाय, तो उस पार्टी का बल बढ़ेगा ! इसलिए तय हुआ कि उस पार्टी के जरिये मदद नहीं बँटनी चाहिए, एक ही पार्टी के जरिये मदद बँटनी चाहिए। धिक्कार है ऐसी लोकशाही को ! इस वास्ते हम कहते हैं, अभी स्वराज्य की स्थापना करना बाकी है। अपने देश में ही नहीं, दुनिया में ही आज स्वराज्य नहीं है।

ऐसे स्वराज्य का एक नमूना हम केरल में करना चाहते हैं। ऐसी आशा से यहाँ सर्वोदय-मण्डल बनाया है। उसमें सब लोग मदद दें। पर यह पार्टी का खयाल छोड़ दें। 'पार्टी' याने 'अखण्ड' को 'खण्ड' करना ! इससे देश की ताकत फूटती है, टूटती है ! अतः पार्टी से मुक्ति उतनी ही जरूरी है, जितनी कि जाति से ! तो सब लोग पार्टियों से मुक्त होकर सर्वोदय-मण्डल में ताकत लगायें। हमें सम्पत्ति-दान, श्रम-दान, ग्रामदान और ग्रामराज्य करना है। शान्ति-सेना का कार्य भी शुरू करना चाहिए। लेकिन ध्यान रहे कि यह कार्य प्रतिनिधियों से नहीं होगा, आपको स्वयं करना होगा। मुख्य काम आप ही करेंगे। आपकी मदद में एक सेवक भी होगा। इस तरह ५ हजार लोगों के लिए एक सेवक होगा और उसके पोषण आदि का भार ५ हजार लोगों को वहन करना है। फिर गाँव में अशान्ति हो नहीं रहेगी। फिर भी अगर एकाध कोई ऐसा शख्स है, जो समाज में अशान्ति निर्माण करता है, तो उस समय हमारी सेवा-सेना ही शान्ति-सेना बन जायगी।

काकोड़ी (कोळीकोड़)
२२-७-'५७

खण्ड तीसरा

सत्ता-निरपेक्ष समाज का रूप : १८ :

पंचविध कार्यक्रम

देश की वर्तमान हालत की मीमांसा करते हुए मैंने बताया था कि एक तो अधिकारी पक्ष रहेगा, जो लोगों की ओर से बहुसंख्या के आधार पर राजकाज की जिम्मेदारी उठायेगा और दूसरा एक विरोधी पक्ष होगा, जो उनके कार्यों में प्रति-सहकार करेगा । यानी जहाँ सहकार की आवश्यकता मालूम हो, वहाँ सहकार करेगा और जहाँ विरोध की आवश्यकता हो, वहाँ विरोध करेगा । ये दोनों राजनैतिक क्षेत्र में काम करेंगे । इनके अलावा तीसरा एक निष्पक्ष समाज होना चाहिए, जिसकी गिनती न अधिकारी पक्ष में होगी, न विरोधी पक्ष में, बल्कि यह एक अलग जमात होगी । उसकी अपनी एक खासियत होगी और वह जमात सेवा के काम में लगी हुई होगी । इस तरह की जमात जितनी विशाल और शक्तिशाली होगी, राज्यतंत्र और लोकतन्त्र, दोनों उतने ही शुद्ध और मर्यादित रहेंगे । उस तीसरे निष्पक्ष समाज का एक बड़ा भारी देशव्यापी कार्यक्रम होगा । कार्यक्रम के कुछ पहलू दिग्दर्शन के तौर पर रख रहा हूँ ।

जीवन-शोधन

उस जमात के जो काम होंगे, उनमें बुनियादी और प्राथमिक काम यह होगा कि वे लोग 'जीवन-शोधन' का काम करेंगे । अपने निजी जीवन की भी शुद्धि और अपने कुटुम्बी जन, मित्र, सहधर्मी, सबकी जीवन-शुद्धि नित्य निरंतर परखते रहेंगे । अगर कहीं अपने में असत्य

देश अपनी योजना स्वतन्त्र रूप से करता है ? इन सब बातों को जानने के लिए अध्ययन करना चाहिए। क्या अमेरिका के पास सेना की कमी है ? फिर भी वह कमी महसूस करता है। वह कहता है कि रूस की दृष्टि से हमारी सेना कम है। उसे और बढ़ाना पड़ेगा। वह अपनी कांग्रेस के सामने बिल पेश करता है कि सेना के लिए बजट बढ़ाना पड़ेगा। तो क्या अमेरिका अपने देश की योजना अपने ढंग से करता है ? उसकी योजना रूस करता है। यह कैसी आजादी है ? क्या रूस अपनी योजना स्वतन्त्र बुद्धि से करता है ? वह कहता है कि हमारे चारों ओर अमेरिका ने अड्डे बनाये हैं, तो अपने देश के रक्षण के लिए हमें नये-नये शस्त्र बढ़ाने पड़ेंगे। इसलिए रूस में सेना के पीछे कितना खर्च करना चाहिए यह अमेरिका तय करता है।"

भावपागेरे (मैसूर)

२९-११-'५७

उपेक्षित क्षेत्र, जिनकी ओर समाज का ध्यान नहीं है, जिन्हें आगे ले जाने में समाज और सरकार, दोनों का ध्यान नहीं है, उनकी ओर ध्यान देना। सब तरह की सेवा में रात-दिन निष्काम बुद्धि से लगे रहना, दीर्घ काल में उसका फल मिलेगा, ऐसी निष्ठा रखकर कभी तेज कम न होने देना और चारों ओर अँधेरा फैला हो, तो भी दीपक के समान अँधेरे का भान न रखकर मस्ती से सेवा करते रहना—उनका काम रहेगा।

वाणी से निर्देश, कृति से सत्याग्रह

चौथा काम, समाज-जीवन में या सरकारी कामों में जहाँ कहीं गलती देखें, वहाँ उसका निर्देश करना। यह जरूरी नहीं कि निर्देश जाहिरा तौर पर ही किया जाय, परन्तु जहाँ जाहिरा तौर पर निर्देश करने का मौका आये, वहाँ राग-द्वेष-रहित होकर स्पष्ट शब्दों में उसे जनता के सामने रखना और उसमें अपनी प्रतिभा प्रकट करना उनका काम होगा। इस तरह सामाजिक और सरकारी कामों के बारे में चिन्तन करते हुए उनमें कहीं दोष आ जायँ, तो उन्हें प्रकट करना उनका कर्तव्य होगा।

कभी-कभी उन दोषों के लिए क्रियात्मक प्रतिकार का मौका भी आ सकता है। वह इतना सहज होगा कि जिनके विरोध में वह होगा, उन्हें भी वह प्रिय लगेगा; क्योंकि वह उनकी सेवा के लिए ही होगा। उसे 'प्रतिकार' का नाम देने के बजाय 'शस्त्र-क्रिया' कहना ही ठीक रहेगा; क्योंकि शस्त्र-क्रिया जिस पर होती है, उसे भी वह प्रिय होती है। उसे 'सत्याग्रह' भी कह सकते हैं। परन्तु आज सत्याग्रह का अर्थ गिर गया है। उत्तम-से-उत्तम शब्द भी नालायक हाथों में कैसे बिगड़ सकते हैं और मामूली-से-मामूली शब्द भी अच्छे हाथों में कैसे उठ सकते हैं, उसका यह एक उदाहरण है। इस तरह सत्याग्रह आज धमकी के अर्थ में, शस्त्र के अर्थ में और शस्त्र के अभाव में शस्त्रवत् हिंसा के अर्थ में इस्तेमाल किया जा रहा है। इस तरह यह शब्द बिगड़ गया है। इसमें शब्द का दोष नहीं। शब्द स्वच्छ है, इसलिए उस शब्द का प्रयोग करने में दोष

छिप रहा है, तो बारीकी से उसका शोधन करेंगे। उस असत्य को मिटा देंगे। वे यह भी देखेंगे कि हृदय के किसी कोने में अगर भय के अंश रह गये हैं, तो वे किस प्रकार के हैं। भय अनेक प्रकार के होते हैं। उन भयों में से वे किस प्रकार के हैं, जो हृदय में राज्य कर रहे हैं? उन सब अंशों को देखकर उनसे मुक्ति पाने की कोशिश करेंगे। अर्थात् सदा-सर्वदा निर्भय बनने का उनका प्रयत्न रहेगा। उनकी हरएक कृति हमेशा संयमयुक्त रहेगी—वाक्-संयम, काय-संयम, मन-संयम, उनकी नित्य साधना रहेगी। वे यह भी देखेंगे कि अपनी आजीविका का मुख्य अंश जहाँ तक हो सकता है, उत्पादक शरीर-श्रम पर चलायें और निजी, पारिवारिक तथा सामाजिक, तीनों दृष्टि से प्रयोग करें। यह सारा जीवन-शोधन का बुनियादी काम उनका प्रथम कार्य होगा।

अध्ययनशीलता

दूसरी बात उन्हें यह करनी होगी कि नित्य-निरन्तर अध्ययनशील रहें। लोक-जीवन की जितनी शाखाएँ और उपशाखाएँ हैं, उनका वे अध्ययन करेंगे। हर तरह की उपयुक्त जानकारी उनके पास रहेगी। यह नहीं कि वे व्यर्थ की जानकारी का परिग्रह करेंगे। जो जानकारी समाज-जीवन और व्यक्तिगत-जीवन, आन्तरिक तथा बाह्य के लिए जरूरी है, उसे वे हासिल करते रहेंगे। इस तरह अध्ययन होता रहता है, तभी स्वराज्य तरक्की करता है। स्वराज्य में ऐसे अध्ययनशील लोगों की बहुत जरूरत रहती है। बिना अध्ययन के कोई भी समाज गहरा काम नहीं कर पाता। मैं देख रहा हूँ कि इस दिशा में बहुत काम नहीं हो रहा है। मैं इसे बुनियादी काम तो नहीं कहूँगा, परन्तु आवश्यक और महत्त्व का कहूँगा।

निष्काम समाज-सेवा

तीसरी बात यह करनी होगी कि समाज-सेवा के जो क्षेत्र हैं, खासकर

रहे। किन्तु मैं तो चाहता हूँ कि भौतिक सत्ता गाँवों में ही रहनी चाहिए। गांधीजी और बुद्ध की सत्ता चली, क्योंकि वे सत्ता चलाने लायक थे। नैतिक सत्ता किसीके देने से नहीं मिल जाती। वह तो अपने-आप प्राप्त होती है। इसलिए जो नीतिमान् पुरुष होते हैं, वे अपने-आप ऊँची सरकार में जाने लायक बनेंगे। उनकी सत्ता स्वयमेव चलेगी, जिस तरह जंगल में शेर की चलती है। शेर को चुना नहीं जाता। इस तरह शेर के जैसे कुछ चुने हुए नीतिमान् पुरुष दिल्ली की सरकार में रहेंगे और उनकी सत्ता लोग प्रेम से मानेंगे। परन्तु असली सत्ता तो गाँवों में ही रहेगी।

लोहरदगा (राँची)
२४-११-'५२

शक्ति का स्रोत दिल्ली में नहीं, हमारे हृदय में

अभी स्वराज्य प्राप्त हुए कुल छह साल हुए। फिर भी लोग कहते हैं कि सरकार ने यह नहीं किया, वह नहीं किया। मैं उनसे पूछता हूँ कि आप स्वतंत्र हैं या गुलाम? अगर स्वतंत्र हैं, तो क्या आप यह चाहते हैं कि आपके गाँव की तालीम का इंतजाम सरकार करे, आपके गाँव की सफाई सरकार करे? आपके गाँव के सारे काम सरकार करे? आखिर सरकार क्या चीज है? जो काम परमेश्वर नहीं कर सकता, क्या वह सरकार कर सकेगी? परमेश्वर बारिश देता है, पर सिर्फ बारिश से फसल नहीं उगती, घास उग सकती है। जब किसान परिश्रम करता है, धरती में अपना पसीना डालता है, तभी फसल उगती है। इस तरह जब परमेश्वर ही फसल नहीं उगा सकता, तो क्या सरकार उगा सकती है?

सरकार की ताकत से हम ताकतवर बनेंगे, यह मानना ही गलत है। वास्तव में हमारी ताकत से ही सरकार ताकतवर बनेगी। शक्ति का मूल स्रोत दिल्ली या पटने में नहीं, वह तो हमारे और आपके हृदय के अंदर है। वहीं से चाहे जिस काम में शक्ति लगायी जा सकती है। लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आप यह मसला हल कर सकेंगे? मैं कहता हूँ कि अगर

नहीं है और उसका प्रयोग मैं करूँगा। इस तरह वाणी से निर्देश और कृति से सत्याग्रह—यह भी उन कार्यकर्ताओं का काम रहेगा।

मसलों का अहिंसक हल

इसके अलावा पाँचवाँ काम उनका यह रहेगा कि समाज-जीवन में जो भारी मसले पैदा होते हैं, उनका वे अहिंसात्मक हल खोजें। अहिंसात्मक तथा नैतिक तरीके से बड़ी-बड़ी समस्याएँ भी हल हो सकती हैं, यह वे साबित कर देंगे। अगर वे साबित कर सकें, तो नैतिक और अहिंसात्मक तरीकों पर लोगों की श्रद्धा जम सकती है। लोगों को नैतिक तरीके प्रिय तो होते ही हैं, लेकिन प्रत्यक्ष परिणाम देखे बगैर लोगों की निष्ठा स्थिर नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष प्रयोग से लोगों की निष्ठा साबित करना, यह इस निष्पक्ष समाज का पाँचवाँ काम होगा।

राजघाट, दिल्ली
१६-११-'५१

भौतिक सत्ता गाँव में, नैतिक सत्ता केन्द्र में

हम गाँव-गाँव में स्वराज्य लाना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सारी सत्ता गाँव के हाथ में रहे। प्रान्तीय सरकार का काम गाँव पर हुकूमत चलाना नहीं होगा। बल्कि यह होगा कि एक गाँव का दूसरे गाँव से सम्बन्ध बना रहे। इसी तरह दिल्ली की सरकार का यह काम नहीं होगा कि प्रान्त पर हुकूमत चलाये, बल्कि यह होगा कि प्रान्तों के बीच सम्बन्ध बना रहे। जितनी-जितनी ऊँची सरकार होगी, उतना-ही-उतना उसके पास व्यापक काम, जोड़ने का काम रहेगा; पर सत्ता कम होगी। सत्ता तो गाँवों में रहेगी। सारी भौतिक सत्ता गाँवों में और केन्द्र में नीतिमान्, चरित्रशील लोग जायेंगे, जिनकी नैतिक सत्ता चलेगी।

लेकिन आज तो यह माना जाता है कि भौतिक सत्ता न्यूयार्क या दिल्ली में रहे। एक दुनिया बनानेवाले तो कहते हैं कि सारी भौतिक सत्ता यू० एन० ओ० (राष्ट्रसंघ) या ऐसी ही किसी सरकार के हाथ

अंग्रेज यहाँ आये, तब तक हिन्दुस्तान में कई राजा हो चुके थे। किन्तु राष्ट्रीय ऋण जैसी कोई भी चीज उस समय नहीं थी। माधवराव पेशवा को मरते समय यह चिंता थी कि उन पर जो नौ-दस करोड़ का कर्ज था, वह उन्होंने राज्य के लिए ही लिया था, फिर भी वह उनका व्यक्तिगत कर्ज माना गया। अन्त में नाना फडनवीस ने कुछ साहूकार लाकर उनके जरिये वचन दिलवाया कि हम कर्ज चुकायेंगे। लेकिन आज तो कई देशों पर कर्ज है। हिन्दुस्तान के सिर पर भी है। अंग्रेजों ने यहाँ जो लड़ाइयाँ लड़ीं, उनका कर्ज भी हमारे ही सिर पर है। आज जो सरकार होती है, वह चाहे लादी भी गयी हो, देश की ही सरकार होती है।

किन्तु, आज की राजनीति बहुत व्यापक हो गयी है। सारे जीवन पर उसका नियन्त्रण चलता है। आज की सरकार अगर पापी कानून बनाये, तो व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मैं निष्पाप जीवन बिताऊँगा। जीवन के हरएक पहलू पर आज सरकार का नियन्त्रण चलता है। यहाँ तक कि तालीम पर भी सरकार का नियन्त्रण है। पहले ऐसा नहीं था। ज्ञानी लोग तालीम देते थे, वे स्वतन्त्र थे। पर आज सरकार एक पाठ्य-पुस्तक तय करती है और वही सब स्कूलों में चलती है। उस किताब में क्या होना चाहिए, इसका भी नियन्त्रण सरकार करती है। इस तरह शिक्षण जैसा विषय भी, जो बिलकुल ही स्वतन्त्र होना चाहिए था, आज राज्य के नियन्त्रण में है। कुछ प्राइवेट स्कूल चलते हैं, पर उनमें कुछ ही विद्यार्थी आते हैं। मैंने भी एक ऐसा स्कूल चलाया था, जिसमें बहुत अच्छे विद्यार्थी तैयार हुए। लेकिन आज गाँव-गाँव में जितने स्कूल बनेंगे, वे सरकार के ही बनेंगे। फिर यदि सरकार कम्युनिस्ट आयी, तो स्कूल में उनका तत्त्वज्ञान सिखाया जायगा। फासिस्ट शासन हो, तो लड़कों को उसी तरह की तालीम मिलेगी। याने जैसी सरकार हो, उसीके अनुसार लड़कों के दिमाग बनाये जाते हैं। इस तरह आजकल दिमाग बनाने की बात चलती है। इसलिए राजनैतिक विचार करने की जिम्मेवारी हरएक व्यक्ति पर आती है।

आपने चाहा, तो आप भी यह मसला हल कर सकते हैं। अगर आप चाहें कि अपने घर की लड़की को योग्य वर ढूँढ़कर उसके घर पहुँचायें, तो आपको कौन रोक सकता है ? इसी तरह आपको जिस समय यह लगेगा कि धन और धरती दूसरे के पास पहुँचाने में ही हमारा कल्याण और मंगल है, तो पहुँचाने में आपके हाथ कौन रोकनेवाला है ? यह सब समझने की बात है।

बेलों (हजारीबाग)
२९-३-'५२

सर्वोदय का राजनैतिक विचार : १९ :

आजकल राजनीति कोई ऐसा विषय नहीं रहा, जो जीवन से बिलकुल अलग हो। पुराने जमाने में राजाओं की सत्ता चलती थी, पर वह सत्ता बहुत कम थी। जुल्मी बादशाह भी जनता को थोड़ी पीड़ा देते थे। आम जनता पर उनका ज्यादा असर नहीं हो सकता था। क्योंकि सरकार चुनी हुई नहीं थी और न आज के जैसे आमदरफ्त के साधन ही थे। उस समय किसी बादशाह का सारे हिन्दुस्तान में सन्देश पहुँचने में महीनों लग जाते थे और बादशाह का हुक्म मानना या न मानना सरदारों की इच्छा पर निर्भर रहता था। निजाम जैसे शक्तिशाली सरदार तो हुक्म भी नहीं मानते थे। इस तरह उस समय की हालत दूसरी थी। उस समय सरकार की सत्ता बहुत सीमित थी। सरकार बहुत ज्यादा जीवन का नियन्त्रण नहीं कर सकती थी, सिर्फ विदेश के आक्रमणों का प्रतीकार करने के लिए थोड़ी-सी सेना रखना और सेना के लिए ही दो-चार रास्ते बना देना—ऐसे सीमित काम वह करती थी। जो लोक-हितकारी राजा होते थे, वे प्रजा के लिए कुछ करते थे, पर वह उनका व्यक्तिगत उपकार था। वे लोगों के जीवन का नियमन नहीं कर सकते थे।

जो निर्णय होगा, वही माना जायगा। लेकिन आज तो चार विरुद्ध एक, तीन विरुद्ध दो—इस तरह चलता है। यह जो 'तीन बोले परमेश्वर' की बात आज चलती है, वह खतरनाक है। 'पाँच बोले परमेश्वर' यह चले, तभी ठीक होगा। अब भी 'क्वेकर्स' में वह चलता है। वे एकमत से ही निर्णय करते हैं। फिर इसमें और भी कई सवाल उठाये जा सकते हैं।

केन्द्रीकरण के दोष

कुछ लोग कहते हैं कि इसमें एक भी मनुष्य अड़ जाय, तो सारा मामला खतम हो जाता है—इसलिए आज का बहुमत का तरीका ही ठीक है। लेकिन आजकल तो एक ही मनुष्य को चुनने के लिए लाखों लोगों का वोट लिया जाता है। इतना बड़ा सामुदायिक प्रयोग चलता है, जिसमें कई बुराइयाँ पैदा होती हैं। इसलिए हमने इसके इलाज में जो बात सुझायी है, वह है राज्य का विकेन्द्रीकरण। बहुत-सी सत्ता तो गाँव में ही होनी चाहिए। फिर एक गाँव का दूसरे गाँव से जो सम्बन्ध आता है, उसका नियन्त्रण जिला करेगा। एक जिले का दूसरे जिले से जो सम्बन्ध आता है, उसका नियन्त्रण प्रान्त करेगा और दो प्रान्तों के बीच के सम्बन्ध का नियन्त्रण केन्द्र करेगा।

लेकिन आज तो केन्द्र और प्रान्त में ही हिन्दुस्तान के हरएक गाँव के सब व्यवहारों को नियन्त्रित करने की सत्ता है। गाँववालों को कोई भी निर्णय करने का हक नहीं है। गाँव में बाहर के डॉक्टर आयें या न आयें, इसे तय करने का हक गाँववालों को नहीं। नतीजा यह हुआ कि गाँव के सारे धन्धे टूट गये। लेकिन अब ये धन्धे फिर से शुरू करना या तोड़ना, इस बारे में सारी सत्ता केन्द्र में है, गाँव में नहीं। परिणाम यह होता है कि सारा स्वराज्य केन्द्र में होता है, गाँव में नहीं। गाँव में सिर्फ झाड़ू लगाने का स्वराज्य होता है। मुख्य विषयों में गाँववालों को अधिकार ही नहीं होता।

आजकल देश में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक, ऐसे दो पक्ष निर्माण हुए हैं। यह एक नया जातिभेद है। हिन्दुस्तान में तो इसके साथ-साथ पुराने जातिभेद भी आते हैं। एक पार्टी ने एक जाति का मनुष्य खड़ा किया, तो दूसरी पार्टीवाले भी उम्मीदवार चुनते समय जाति का ही विचार करते हैं। वोट इकट्ठा करने के लिए यह सब किया जाता है। विचार समझाना, उस पर अमल हो, इसलिए धीरज रखना—यह बात आजकल नहीं रही। पहले जिस तरह तलवार से निर्णय लादा जाता था, वैसे ही आजकल तलवार के बदले बहुमत से वह लादा जाता है। तलवार के बारे में कहा जाता है कि उसमें अक्ल नहीं होती, इसीलिए हमने उसे छोड़ दिया। लेकिन बहुमत में भी अक्ल नहीं होती। सिरों की गिनती करके निर्णय लेना गलत ही है। इसका नतीजा यह है कि असन्तोष पैदा होता है, कशमकश चलती है। सभी एक-दूसरे को गिराने की कोशिश करते हैं, इसी पर सारी रचना बनती है। आज यह सभी देशों में चला है, क्योंकि सर्वत्र सिरों की गिनती करके सब-कुछ चलाने की बात चलती है। सिरों के अन्दर क्या माद्दा है, यह नहीं देखा जाता। मेहरबानी इतनी ही है कि पागल को मतदान का हक नहीं दिया गया। मगर इसका इलाज क्या है—यह हम न ढूँढ़ें और पक्षभेद, सरकारी पक्ष, विरोधी पक्ष, उन दोनों में अखंड विरोध—यह सारा पश्चिम का ढाँचा हिन्दुस्तान में लायें, तो यहाँ कोई भी काम न चलेगा। एक पक्ष दूसरे पक्ष के काम को बिगाड़ता ही जायगा।

पाँच बोले परमेश्वर

इसके लिए एक ही इलाज है। अपने यहाँ एक धार्मिक रिवाज है। अपने संस्कार और सभ्यता में ही यह बात है कि 'पंच बोले परमेश्वर'। अक्सर लोग इसका सही अर्थ नहीं समझते। ग्राम-पंचायत निर्माण करें, इतना ही इसका अर्थ नहीं, बल्कि यह अर्थ है कि पंचों की एक राय से

गाँववालों की इच्छा पर निर्भर होगा। इसमें कुछ गाँववालों ने ठीक काम न किया, तो दो-चार गाँवों का काम बिगड़ेगा। पर आज काम बिगड़ा, तो सारे राज्य का ही बिगड़ेगा। घर में रोटी बनाने में कुछ रोटियाँ बिगड़ जायँ, तो भी बाकी सब अच्छी ही रहती हैं, लेकिन 'बेकरी' में काम बिगड़ गया, तो सब रोटियाँ बिगड़ जाती हैं। पहले राजा लोगों के हाथों में सत्ता होते हुए भी जो नुकसान नहीं होता था, वह आज हो रहा है; क्योंकि पुराने राजाओं के हाथ में सब-का-सब बिगाड़ने या बनाने की सत्ता नहीं थी, जो आज की सरकार के हाथ में है। इसलिए आज की सरकार सब-का-सब बिगाड़ सकती है। पाँच साल बाद चुनाव होते हैं और उसमें नयी सरकार भी आ सकती है। लेकिन पुरानी सरकार ने जो किया, वह नयी सरकार को आगे चलाना पड़ता है। नयी सरकार पुरानी सरकार के वचनों से बाध्य रहती है। अगर आज की सरकार ने विदेशियों के साथ व्यापारविषयक कुछ करार किये, तो आगे आनेवाली सरकार को उन्हें चलाना पड़ता है। इससे छुटकारा पाने के लिए रक्त-रंजित क्रान्ति ही करनी पड़ती है। लेकिन ऐसी क्रान्तियाँ बार-बार नहीं होतीं। इस प्रकार आज सरकार के हाथ में सारी सत्ता इस तरह केन्द्रित हुई है कि मामला सुधरा, तो सारा-का-सारा सुधरेगा और बिगड़ा, तो सारा-का-सारा बिगड़ जायगा। इसलिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है।

सर्वोदय-रचना के दो सिद्धान्त

सर्वोदय-रचना में हर गाँव में एक ग्राम-पंचायत होगी और प्रान्त के लिए प्रतिनिधि चुनने का हक ग्राम-पंचायत को होगा। ग्राम-पंचायत के ही हाथ में सारी सत्ता रहेगी और ऊपर की सरकार के हाथ में नाम-मात्र की सत्ता होगी। ऊपर की सरकार तो सिर्फ सलाह देगी और रेलवे, रास्ते, विदेशों के साथ व्यवहार आदि पर उसका नियंत्रण रहेगा। इससे आज महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता हासिल करने में जितना अधिक उत्साह मालूम होता है, उतना फिर नहीं मालूम होगा; क्योंकि तब प्रान्त या केन्द्र के हाथ में कुछ अधिकार ही नहीं रहेगा। सारा अधिकार गाँव को

आज हिन्दुस्तान-सरकार का एक राज्य चल रहा है। पुराने राजा-महाराजाओं के राज्य खतम हुए, यह अच्छा ही हुआ। फिर भी राजाओं के अलग-अलग अनेक राज्य थे, तब प्रजा को कुछ तो संरक्षण मिलता ही था; लेकिन अब वह सब खतम हो गया। जहाँ केन्द्र में सारी सत्ता केन्द्रित रहती है, वहाँ महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता अपने हाथ में लेने की इच्छा होती है। फिर ये अक्लवाले हों, तो कारोबार ठीक चलता है और बेवकूफ हों, तो सब मामला बिगड़ जाता है। चन्द लोगों की ही अक्ल से काम हो और बाकी सबकी अक्ल परती रहे, ऐसा अब नहीं होगा। अगर हिन्दुस्तान की थोड़ी-सी अच्छी जमीन में फसल हो और बाकी सारी जमीन परती रखी जाय, तो सारे हिन्दुस्तान के लिए पर्याप्त फसल पैदा नहीं हो सकती।

विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता

आजकल गाँववालों से कहा जाता है, रास्ते बनाओ, झाड़ू लगाओ। इसका मतलब यह है कि सिर्फ उनके हाथों का उपयोग हो, दिमाग का नहीं। ऐसी हालत में उन्हें काम करने में उत्साह कैसे आयेगा ? अगर वे काम नहीं करते, तो सरकार कहती है कि लोग आलसी हैं। अंग्रेजी में मजदूरों को 'हैण्ड्स' कहा जाता है और उनकी देखभाल करनेवाले चन्द लोगों को 'हेड्स' कहते हैं। इस तरह समाज के दो टुकड़े कर राहु-केतु निर्माण किये गये हैं। अगर किसीके हाथ तोड़कर अलग किये जायँ और फिर उनको कहा जाय कि 'काम करो', तो वे कैसे काम कर सकते हैं ? हाथों से काम तब बनता है, जब हाथ के साथ दिमाग रहता है। रास्ता बनाने और झाड़ू लगाने का ही स्वराज्य गाँववालों को दिया जाय, तो फिर उनमें उसके लिए दिलचस्पी नहीं पैदा होती। अपने जीवन की मुख्य वस्तुओं पर नियन्त्रण करने की सत्ता उन्हें मिलनी चाहिए।

जिसे 'फेडरेशन' (संघ) कहते हैं, वैसी चार लाख देहातों की एक सम्मिलित सरकार निर्माण होनी चाहिए। इसमें सब गाँव अपनी-अपनी अक्ल से काम करेंगे, केन्द्र सिर्फ सलाह देगा। उसे मानना, न मानना

गाँववालों की इच्छा पर निर्भर होगा। इसमें कुछ गाँववालों ने ठीक काम न किया, तो दो-चार गाँवों का काम बिगड़ेगा। पर आज काम बिगड़ा, तो सारे राज्य का ही बिगड़ेगा। घर में रोटी बनाने में कुछ रोटियाँ बिगड़ जायँ, तो भी बाकी सब अच्छी ही रहती हैं, लेकिन 'बेकरी' में काम बिगड़ गया, तो सब रोटियाँ बिगड़ जाती हैं। पहले राजा लोगों के हाथों में सत्ता होते हुए भी जो नुकसान नहीं होता था, वह आज हो रहा है; क्योंकि पुराने राजाओं के हाथ में सब-का-सब बिगाड़ने या बनाने की सत्ता नहीं थी, जो आज की सरकार के हाथ में है। इसलिए आज की सरकार सब-का-सब बिगाड़ सकती है। पाँच साल बाद चुनाव होते हैं और उसमें नयी सरकार भी आ सकती है। लेकिन पुरानी सरकार ने जो किया, वह नयी सरकार को आगे चलाना पड़ता है। नयी सरकार पुरानी सरकार के वचनों से बाध्य रहती है। अगर आज की सरकार ने विदेशियों के साथ व्यापारविषयक कुछ करार किये, तो आगे आनेवाली सरकार को उन्हें चलाना पड़ता है। इससे छुटकारा पाने के लिए रक्त-रंजित क्रान्ति ही करनी पड़ती है। लेकिन ऐसी क्रान्तियाँ बार-बार नहीं होतीं। इस प्रकार आज सरकार के हाथ में सारी सत्ता इस तरह केन्द्रित हुई है कि मामला सुधरा, तो सारा-का-सारा सुधरेगा और बिगड़ा, तो सारा-का-सारा बिगड़ जायगा। इसलिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है।

सर्वोदय-रचना के दो सिद्धान्त

सर्वोदय-रचना में हर गाँव में एक ग्राम-पंचायत होगी और प्रान्त के लिए प्रतिनिधि चुनने का हक ग्राम-पंचायत को होगा। ग्राम-पंचायत के ही हाथ में सारी सत्ता रहेगी और ऊपर की सरकार के हाथ में नाम-मात्र की सत्ता होगी। ऊपर की सरकार तो सिर्फ सलाह देगी और रेलवे, रास्ते, विदेशों के साथ व्यवहार आदि पर उसका नियंत्रण रहेगा। इससे आज महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता हासिल करने में जितना अधिक उत्साह मालूम होता है, उतना फिर नहीं मालूम होगा; क्योंकि तब प्रान्त या केन्द्र के हाथ में कुछ अधिकार ही नहीं रहेगा। सारा अधिकार गाँव को

आज हिन्दुस्तान-सरकार का एक राज्य चल रहा है। पुराने राजा-महाराजाओं के राज्य खतम हुए, यह अच्छा ही हुआ। फिर भी राजाओं के अलग-अलग अनेक राज्य थे, तब प्रजा को कुछ तो संरक्षण मिलता ही था; लेकिन अब वह सब खतम हो गया। जहाँ केन्द्र में सारी सत्ता केन्द्रित रहती है, वहाँ महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता अपने हाथ में लेने की इच्छा होती है। फिर ये अक्लवाले हों, तो कारोबार ठीक चलता है और बेवकूफ हों, तो सब मामला बिगड़ जाता है। चन्द लोगों की ही अक्ल से काम हो और बाकी सबकी अक्ल परती रहे, ऐसा अब नहीं होगा। अगर हिन्दुस्तान की थोड़ी-सी अच्छी जमीन में फसल हो और बाकी सारी जमीन परती रखी जाय, तो सारे हिन्दुस्तान के लिए पर्याप्त फसल पैदा नहीं हो सकती।

विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता

आजकल गाँववालों से कहा जाता है, रास्ते बनाओ, झाड़ू लगाओ। इसका मतलब यह है कि सिर्फ उनके हाथों का उपयोग हो, दिमाग का नहीं। ऐसी हालत में उन्हें काम करने में उत्साह कैसे आयेगा? अगर वे काम नहीं करते, तो सरकार कहती है कि लोग आलसी हैं। अंग्रेजी में मजदूरों को 'हैण्ड्स' कहा जाता है और उनकी देखभाल करनेवाले चन्द लोगों को 'हेड्स' कहते हैं। इस तरह समाज के दो टुकड़े कर राहु-केतु निर्माण किये गये हैं। अगर किसीके हाथ तोड़कर अलग किये जायँ और फिर उनको कहा जाय कि 'काम करो', तो वे कैसे काम कर सकते हैं? हाथों से काम तब बनता है, जब हाथ के साथ दिमाग रहता है। रास्ता बनाने और झाड़ू लगाने का ही स्वराज्य गाँववालों को दिया जाय, तो फिर उनमें उसके लिए दिलचस्पी नहीं पैदा होती। अपने जीवन की मुख्य वस्तुओं पर नियन्त्रण करने की सत्ता उन्हें मिलनी चाहिए।

जिसे 'फेडरेशन' (संघ) कहते हैं, वैसी चार लाख देहातों की एक सम्मिलित सरकार निर्माण होनी चाहिए। इसमें सब गाँव अपनी-अपनी अक्ल से काम करेंगे, केन्द्र सिर्फ सलाह देगा। उसे मानना, न मानना

गाँववालों की इच्छा पर निर्भर होगा। इसमें कुछ गाँववालों ने ठीक काम न किया, तो दो-चार गाँवों का काम बिगड़ेगा। पर आज काम बिगड़ा, तो सारे राज्य का ही बिगड़ेगा। घर में रोटी बनाने में कुछ रोटियाँ बिगड़ जायँ, तो भी बाकी सब अच्छी ही रहती हैं, लेकिन 'बेकरी' में काम बिगड़ गया, तो सब रोटियाँ बिगड़ जाती हैं। पहले राजा लोगों के हाथों में सत्ता होते हुए भी जो नुकसान नहीं होता था, वह आज हो रहा है; क्योंकि पुराने राजाओं के हाथ में सब-का-सब बिगाड़ने या बनाने की सत्ता नहीं थी, जो आज की सरकार के हाथ में है। इसलिए आज की सरकार सब-का-सब बिगाड़ सकती है। पाँच साल बाद चुनाव होते हैं और उसमें नयी सरकार भी आ सकती है। लेकिन पुरानी सरकार ने जो किया, वह नयी सरकार को आगे चलाना पड़ता है। नयी सरकार पुरानी सरकार के वचनों से बाध्य रहती है। अगर आज की सरकार ने विदेशियों के साथ व्यापारविषयक कुछ करार किये, तो आगे आनेवाली सरकार को उन्हें चलाना पड़ता है। इससे छुटकारा पाने के लिए रक्त-रंजित क्रान्ति ही करनी पड़ती है। लेकिन ऐसी क्रान्तियाँ बार-बार नहीं होतीं। इस प्रकार आज सरकार के हाथ में सारी सत्ता इस तरह केन्द्रित हुई है कि मामला सुधरा, तो सारा-का-सारा सुधरेगा और बिगड़ा, तो सारा-का-सारा बिगड़ जायगा। इसलिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है।

सर्वोदय-रचना के दो सिद्धान्त

सर्वोदय-रचना में हर गाँव में एक ग्राम-पंचायत होगी और प्रान्त के लिए प्रतिनिधि चुनने का हक ग्राम-पंचायत को होगा। ग्राम-पंचायत के ही हाथ में सारी सत्ता रहेगी और ऊपर की सरकार के हाथ में नाम-मात्र की सत्ता होगी। ऊपर की सरकार तो सिर्फ सलाह देगी और रेलवे, रास्ते, विदेशों के साथ व्यवहार आदि पर उसका नियंत्रण रहेगा। इससे आज महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता हासिल करने में जितना अधिक उत्साह मालूम होता है, उतना फिर नहीं मालूम होगा; क्योंकि तब प्रान्त या केन्द्र के हाथ में कुछ अधिकार ही नहीं रहेगा। सारा अधिकार गाँव को

आज हिन्दुस्तान-सरकार का एक राज्य चल रहा है। पुराने राजा-महाराजाओं के राज्य खतम हुए, यह अच्छा ही हुआ। फिर भी राजाओं के अलग-अलग अनेक राज्य थे, तब प्रजा को कुछ तो संरक्षण मिलता ही था; लेकिन अब वह सब खतम हो गया। जहाँ केन्द्र में सारी सत्ता केन्द्रित रहती है, वहाँ महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता अपने हाथ में लेने की इच्छा होती है। फिर ये अक्लवाले हों, तो कारोबार ठीक चलता है और बेवकूफ हों, तो सब मामला बिगड़ जाता है। चन्द लोगों की ही अक्ल से काम हो और बाकी सबकी अक्ल परती रहे, ऐसा अब नहीं होगा। अगर हिन्दुस्तान की थोड़ी-सी अच्छी जमीन में फसल हो और बाकी सारी जमीन परती रखी जाय, तो सारे हिन्दुस्तान के लिए पर्याप्त फसल पैदा नहीं हो सकती।

विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता

आजकल गाँववालों से कहा जाता है, रास्ते बनाओ, झाड़ू लगाओ। इसका मतलब यह है कि सिर्फ उनके हाथों का उपयोग हो, दिमाग का नहीं। ऐसी हालत में उन्हें काम करने में उत्साह कैसे आयेगा? अगर वे काम नहीं करते, तो सरकार कहती है कि लोग आलसी हैं। अंग्रेजी में मजदूरों को 'हैण्ड्स' कहा जाता है और उनकी देखभाल करनेवाले चन्द लोगों को 'हेड्स' कहते हैं। इस तरह समाज के दो टुकड़े कर राहु-केतु निर्माण किये गये हैं। अगर किसीके हाथ तोड़कर अलग किये जायँ और फिर उनको कहा जाय कि 'काम करो', तो वे कैसे काम कर सकते हैं? हाथों से काम तब बनता है, जब हाथ के साथ दिमाग रहता है। रास्ता बनाने और झाड़ू लगाने का ही स्वराज्य गाँववालों को दिया जाय, तो फिर उनमें उसके लिए दिलचस्पी नहीं पैदा होती। अपने जीवन की मुख्य वस्तुओं पर नियन्त्रण करने की सत्ता उन्हें मिलनी चाहिए।

जिसे 'फेडरेशन' (संघ) कहते हैं, वैसी चार लाख देहातों की एक सम्मिलित सरकार निर्माण होनी चाहिए। इसमें सब गाँव अपनी-अपनी अक्ल से काम करेंगे, केन्द्र सिर्फ सलाह देगा। उसे मानना, न मानना

गाँववालों की इच्छा पर निर्भर होगा। इसमें कुछ गाँववालों ने ठीक काम न किया, तो दो-चार गाँवों का काम बिगड़ेगा। पर आज काम बिगड़ा, तो सारे राज्य का ही बिगड़ेगा। घर में रोटी बनाने में कुछ रोटियाँ बिगड़ जायँ, तो भी बाकी सब अच्छी ही रहती हैं, लेकिन 'बेकरी' में काम बिगड़ गया, तो सब रोटियाँ बिगड़ जाती हैं। पहले राजा लोगों के हाथों में सत्ता होते हुए भी जो नुकसान नहीं होता था, वह आज हो रहा है; क्योंकि पुराने राजाओं के हाथ में सब-का-सब बिगाड़ने या बनाने की सत्ता नहीं थी, जो आज की सरकार के हाथ में है। इसलिए आज की सरकार सब-का-सब बिगाड़ सकती है। पाँच साल बाद चुनाव होते हैं और उसमें नयी सरकार भी आ सकती है। लेकिन पुरानी सरकार ने जो किया, वह नयी सरकार को आगे चलाना पड़ता है। नयी सरकार पुरानी सरकार के वचनों से बाध्य रहती है। अगर आज की सरकार ने विदेशियों के साथ व्यापारविषयक कुछ करार किये, तो आगे आनेवाली सरकार को उन्हें चलाना पड़ता है। इससे छुटकारा पाने के लिए रक्त-रंजित क्रान्ति ही करनी पड़ती है। लेकिन ऐसी क्रान्तियाँ बार-बार नहीं होतीं। इस प्रकार आज सरकार के हाथ में सारी सत्ता इस तरह केन्द्रित हुई है कि मामला सुधरा, तो सारा-का-सारा सुधरेगा और बिगड़ा, तो सारा-का-सारा बिगड़ जायगा। इसलिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है।

सर्वोदय-रचना के दो सिद्धान्त

सर्वोदय-रचना में हर गाँव में एक ग्राम-पंचायत होगी और प्रान्त के लिए प्रतिनिधि चुनने का हक ग्राम-पंचायत को होगा। ग्राम-पंचायत के ही हाथ में सारी सत्ता रहेगी और ऊपर की सरकार के हाथ में नाम-मात्र की सत्ता होगी। ऊपर की सरकार तो सिर्फ सलाह देगी और रेलवे, रास्ते, विदेशों के साथ व्यवहार आदि पर उसका नियंत्रण रहेगा। इससे आज महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता हासिल करने में जितना अधिक उत्साह मालूम होता है, उतना फिर नहीं मालूम होगा; क्योंकि तब प्रान्त या केन्द्र के हाथ में कुछ अधिकार ही नहीं रहेगा। सारा अधिकार गाँव को

आज हिन्दुस्तान-सरकार का एक राज्य चल रहा है। पुराने राजा-महाराजाओं के राज्य खतम हुए, यह अच्छा ही हुआ। फिर भी राजाओं के अलग-अलग अनेक राज्य थे, तब प्रजा को कुछ तो संरक्षण मिलता ही था; लेकिन अब वह सब खतम हो गया। जहाँ केन्द्र में सारी सत्ता केन्द्रित रहती है, वहाँ महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता अपने हाथ में लेने की इच्छा होती है। फिर ये अक्लवाले हों, तो कारोबार ठीक चलता है और बेवकूफ हों, तो सब मामला बिगड़ जाता है। चन्द लोगों की ही अक्ल से काम हो और बाकी सबकी अक्ल परती रहे, ऐसा अब नहीं होगा। अगर हिन्दुस्तान की थोड़ी-सी अच्छी जमीन में फसल हो और बाकी सारी जमीन परती रखी जाय, तो सारे हिन्दुस्तान के लिए पर्याप्त फसल पैदा नहीं हो सकती।

विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता

आजकल गाँववालों से कहा जाता है, रास्ते बनाओ, झाड़ू लगाओ। इसका मतलब यह है कि सिर्फ उनके हाथों का उपयोग हो, दिमाग का नहीं। ऐसी हालत में उन्हें काम करने में उत्साह कैसे आयेगा? अगर वे काम नहीं करते, तो सरकार कहती है कि लोग आलसी हैं। अंग्रेजी में मजदूरों को 'हैण्ड्स' कहा जाता है और उनकी देखभाल करनेवाले चन्द लोगों को 'हेड्स' कहते हैं। इस तरह समाज के दो टुकड़े कर राहु-केतु निर्माण किये गये हैं। अगर किसीके हाथ तोड़कर अलग किये जायँ और फिर उनको कहा जाय कि 'काम करो', तो वे कैसे काम कर सकते हैं? हाथों से काम तब बनता है, जब हाथ के साथ दिमाग रहता है। रास्ता बनाने और झाड़ू लगाने का ही स्वराज्य गाँववालों को दिया जाय, तो फिर उनमें उसके लिए दिलचस्पी नहीं पैदा होती। अपने जीवन की मुख्य वस्तुओं पर नियन्त्रण करने की सत्ता उन्हें मिलनी चाहिए।

जिसे 'फेडरेशन' (संघ) कहते हैं, वैसी चार लाख देहातों की एक सम्मिलित सरकार निर्माण होनी चाहिए। इसमें सब गाँव अपनी-अपनी अक्ल से काम करेंगे, केन्द्र सिर्फ सलाह देगा। उसे मानना, न मानना

चलता है, उसीने यह सवाल पैदा किया है। अगर इससे मुक्त होना चाहते हों, तो सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर ग्रामों में 'पाँच बोले परमेश्वर' के न्याय से काम चलाना होगा। इस पर यह सवाल उठाया जाता है कि 'यह गाँव तक के लिए तो ठीक है; पर गाँव की तरफ से जो प्रतिनिधि प्रान्त के लिए चुने जायँगे, वे तो बहुमत से निर्णय करेंगे ?' बीच के समय के लिए यह चलेगा। परन्तु वे इस तरह से चुने जायँगे कि उन्हें आदत ही ऐसी पड़ेगी कि विधानसभाओं के मुख्य निर्णय एकमत से किये जायँ। जीवन की मुख्य बातों—जैसे खाना, कपड़ा, तालीम—की सत्ता तो गाँव में ही रहेगी। फिर जो दूसरी मामूली बातें हैं, उनमें बहुमत से निर्णय हुआ, तो किसीके हित की हानि नहीं। उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं होती कि अल्पमतवालों के दिलों में रंज पैदा हो। अगर वहाँ अन्न, तालीम आदि मुख्य विषयों में मतभेद होता है, बहुमत की बात चलती है और अल्पमत की नहीं चलती, तो अल्पमतवालों को दुःख होता है। फिर आघात-प्रतिघात चलता है। जहाँ प्रान्त के हाथ में गौण विषय हैं, वहाँ बहुमत से निर्णय हो, तो कोई हर्ज नहीं। उसमें भी ऐसे नियम हो सकते हैं कि कुछ विषयों के लिए ७० या ८० फी सदी मत अवश्य होने चाहिए। आखिर समाज को यह आदत डालनी ही चाहिए कि एकमत से निर्णय हो।

केन्द्र का निर्णय तो एकमत से ही होगा। आज भी यही होता है। मन्त्रिमण्डल में बड़े-बड़े मसलों पर एकमत से ही फैसला किया जाता है। मतभेद हो तो फैसला नहीं होता, सिर्फ चर्चा चलती है। इसलिए केन्द्र के बारे में तो कोई चिन्ता ही नहीं है।

विचार भिन्न हों, आचार एक

इस तरह गाँवों और केन्द्र के बारे में तो चिन्ता ही नहीं है और प्रान्त में भी जो लोग चुनकर आयेंगे, उन्हें एकमत से निर्णय करने की आदत होगी। इसमें सार्वजनिक हित का बुनियादी विचार यह है कि आज देश में भिन्न-भिन्न पार्टियाँ हैं। इस हालत में कोई भी देश

रहेगा और गाँव में पंचायत का काम 'पाँच बोले परमेश्वर' के नियम से ही होगा।

इस पर यह शंका की जाती है कि इस योजना में एक भी मनुष्य अड़ा रहेगा, तो कोई निर्णय नहीं हो सकेगा। लेकिन जो ग्राम-पंचायत इस तरह कोई निर्णय न कर सकेगी, तो वह समाप्त हो जायगी और दूसरी ग्राम-पंचायत चुनी जायगी। ऐसी हालत में सभी को आपस में सलाह करके एकमत से राय देने की प्रेरणा होगी। पहले के जमाने में लोग इस तरह राय देते थे, जैसे आज की 'क्वेकर्स' का काम चलता है। अगर हम यह करते हैं, तो सारी व्यवस्था अहिंसा की होती है। किसीको असंतुष्ट होने का मौका नहीं आता। देश में सबकी अक्ल का उपयोग होता है और काम करते समय कुछ बिगड़ा, तो दो-चार गाँव का बिगड़ता है, सबका नहीं।

आज किसी एक की टेक्निकल गलती के लिए 'बाइ-इलेक्शन' (उप-निर्वाचन) होते हैं। फिर से चुनाव के लिए हजारों लोग काम करते हैं, हजारों रुपया खर्च होता है। कितना समय बरबाद होता है और लोगों में कितना भेद-भाव फैलता है! गाँव-गाँव में भेद और वैर पैदा हो जाता है। अगर हम यह सारा तोड़ना चाहते हैं, तो हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे महत्त्वाकांक्षी लोगों के हाथों में सत्ता न रहे, पक्ष-भेद मिटें। किसी एक के या चन्द लोगों के ही हाथ में सत्ता रहने से वे दुनिया को बना सकते या बिगाड़ सकते हैं। इसके लिए एक ही इलाज है : (१) ग्रामों के हाथ में सारी सत्ता होनी चाहिए और (२) ग्राम-पंचायतों का काम 'पाँच बोले परमेश्वर' के न्याय से चलना चाहिए। यही सर्वोदय है। 'सर्वोदय' का मतलब है कि गाँव की ही सत्ता चले और गाँव का जो निर्णय हो, वही सबका निर्णय हो। यही सच्चा और अहिंसक स्वराज्य होगा।

कहीं एकमत से, तो कहीं बहुमत से निर्णय

'बहुमत' और 'अल्पमत' का सवाल कृत्रिम है। आज जो लोकतन्त्र

अहिंसक राज्य की स्थापना : २० :

हम रोज देखते हैं कि पक्षी अपनी जीविका की खोज में आसमान में इधर-उधर घूमते-दौड़ते-उड़ते हैं और आखिर श्रांत होकर विश्राम के लिए घोंसले में वापस आ जाते हैं। वेद कहता है कि इसी तरह सभी जीव संसार में विविध कर्मों को करते हुए, अनेक प्रयोगों का संपादन करते हुए, कर्म-फल का भी उपभोग करते हुए थक जाते हैं और फिर कुछ शांति के लिए, नये उत्साह की प्राप्ति के लिए और कुछ आत्म-परीक्षण के लिए एक स्थान में आ जाते हैं। 'यत्र विश्वं भवति एक नीडम्', एक ऐसा स्थान होता है।

महात्मा गांधीजी के प्रयाण के बाद अहिंसा के विचार को माननेवाले, उस आकाश में संचार करनेवाले पक्षियों के लिए सर्वोदय-समाज एक विश्राम-स्थान हो गया है। अगर ऐसा स्थान नहीं होता—सालभर में एक दफा हम लोगों के एकत्रित होने की योजना अगर न होती, तो यथाशक्ति आसमान में हम संचार जरूर करते; लेकिन यह सम्भव था कि जाने-अनजाने हमारी शक्तियाँ एक-दूसरे से टकरातीं और अहिंसा का नाम जपते हुए भी हम हिंसा-मार्ग में भी खिंच जाते।

फिर भी हमारी परस्परविरोधी जो भी विचार-धाराएँ बनी हों, वे सब हम वहाँ रख सकते हैं। जिस प्रकार कोई नदी पूर्व दिशा में जाती है, तो कोई पश्चिम दिशा में, पर परस्परविरुद्ध दिशा में जाती हुई भी आखिर वे समुद्र में एकरूप होती हैं; इसी तरह भिन्न-भिन्न विचार-धाराएँ और कभी-कभी परस्परविरोधी विचार-धाराएँ भी, जो परस्परविरुद्ध दिशा में बहती हैं, वे सारी चर्चा में लीन हो सकती हैं और होनी चाहिए। इसलिए अभी जो विचार मैं आपके सामने प्रकट करूँगा, उनके प्रति मेरी व्यक्तिगत कितनी भी निष्ठा हो, मेरा आग्रह नहीं। विमर्श के लिए, सोचने के लिए जैसी बातें सूझती हैं, जो आभास होते हैं, वे हम आपके सामने रखेंगे।

प्रगति करना चाहता हो, तो ऐसा कोई एक कार्यक्रम निकालना चाहिए, जिसमें सब पक्षों की एक राय हो। विचार में मतभेद हो, परन्तु आचार में सबकी राय एक हो ! ऐसा एक कार्यक्रम सबको मंजूर हो, तो निश्चय ही प्रगति होगी। लेकिन अगर कार्यक्रम में ही मतभेद रहा, तो हिन्दुस्तान की प्रगति नहीं हो सकती, क्योंकि इस देश के लोग प्रवृत्ति-शील नहीं हैं। देश में बहुत आलस्य भरा है।

विचार-मंथन अवश्य हो

हरएक को विचार-प्रचार करने का पूरा हक होना चाहिए। मंथन से नवनीत निकलता है। किन्तु आजकल तो कार्यक्रम का ही मंथन चलता है और उससे जनता निष्क्रिय और हताश होती है। हमें जैसे-जैसे राज्य का अधिक अनुभव होगा, वैसे-ही-वैसे यह मालूम होगा कि जनता में बुद्धिभेद पैदा न करना चाहिए। कोई एक छोटा-सा ही कार्यक्रम उठाना चाहिए, जिसमें सब एकमत हों। मुझे इस बात की खुशी है कि भूदान-यज्ञ में सब एकमत हैं। इसलिए उतना ही कार्यक्रम लोगों के सामने रखा जाय और वह पूरा किया जाय। इस तरह एक-एक कार्यक्रम को पूरा करते हुए हम आगे बढ़ें। हिन्दुस्तान में चुनाव का इतना बड़ा काम तीन-चार महीने में ही खतम हो गया, क्योंकि सभी लोग उसमें लग गये थे। यद्यपि हम निष्क्रिय हैं, फिर भी सब लोगों ने मिलकर उसे पूरा किया। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि उस चुनाव में दूसरे देशों की तुलना में बुराइयाँ कम हुईं और देश ने एक अच्छा काम किया। इस तरह हम एक-एक कार्यक्रम, एक-एक असली काम उठाते जायँ और उसे पूरा करते जायँ, तो देश का भला होगा। नहीं तो भिन्न-भिन्न मतों के साथ भिन्न-भिन्न कार्यक्रम भी होंगे। फिर कार्यक्रमों में टक्कर हुई, तो देश आगे नहीं बढ़ सकेगा।

नेतरहा (विहार)
१२-६-'५२

भी कुछ लोग हैं। इस तरह के भिन्न-भिन्न विचार उस अन्तिम लक्ष्य के विषय में होते हैं ! परन्तु सभी लोग यह जानते हैं और समझते हैं कि आज की परिस्थिति में दण्डयुक्त सत्ताएँ हैं और वे अभी रहेंगी। हिंसक समाज-रचना में तो आज और आगे भी दण्ड-शक्ति कायम रहेगी, उसका आधार भी उस समाज पर रहेगा; पर अहिंसक समाज में आज की हालत में दंड-शक्ति रहेगी, ऐसा हमें मानना पड़ता है। परिस्थिति देखते हुए दंड-शक्ति को एक स्थान है, यह मानना पड़ेगा। फिर भी अहिंसक समाज का यह लक्षण रहेगा कि उस समाज में सबसे बड़ी संस्था सेवा की होगी। उसमें दंड और सत्ता का स्थान होगा, उसके लिए अवकाश रहेगा; पर वह बहुत गौण रहेगा। सबसे बड़ा स्थान सेवा का होगा, सबसे बड़ी संस्था सेवा-संस्था होगी। इस दृष्टि से कभी-कभी हम अपने मन में सोचते हैं, तो हमें लगता है कि इस देश की अहिंसक रचना के लिए क्या सबसे अधिक बाधा देनेवाली वस्तु आज की कांग्रेस न होगी ? यह संस्था देश की सबसे बड़ी संस्था है और आज की हालत में वह चुनाव-प्रधान है। याने उसका मुख्य ध्यान चुनाव पर रहता है। चुनाव के जरिये सत्ता, सत्ता के जरिये सेवा, यह उसका सिलसिला है।

तो, जिस देश की सबसे बड़ी संस्था चुनाव-प्रधान हो, उस देश में अहिंसा की प्रगति के लिए एक बाधक यन्त्र खड़ा हुआ, ऐसा आभास होता है। चर्चा के लिए, विचार करने के लिए ये बातें मैं पेश कर रहा हूँ। मन में भी कोई अपना फैसला मैंने इस पर नहीं दिया है। आप इस पर सोचिये। इसका उपाय भी वे बतला गये हैं, जो हमारे राष्ट्रपिता थे। वे द्रष्टा थे और उपद्रष्टा भी। दूर और समीप, दोनों प्रकार का उन्हें दर्शन था। उन्होंने सोच रखा था कि हमारी सबसे बड़ी जमात कांग्रेस, जिसने इस देश के सिर पर का सबसे बड़ा बोझ, जो सारे देश को दबा रहा था, हटाया; वह इतना कार्य समाप्त होने पर 'लोक-सेवक-संघ' बन जाय। हम सोचते हैं कि उनमें कितनी कुशल बुद्धि थी। अगर वह चीज बनती, तो देश की सबसे बड़ी संस्था 'सेवक-संस्था' होती। अब, जब कि

साम्यवादियों का विचार

हममें से बहुत-से लोग मानते हैं कि समाज के विकास में ऐसा एक मुकाम आ जाना चाहिए, जब कि दण्ड के आधार पर शासन चलाने की जरूरत न रहे। उस तरह का शासन दण्डाधार-शासन न रहेगा। इस अन्तिम ध्येय को साम्यवादी भी मानते हैं। किन्तु उनका विश्वास है कि उस ध्येय की प्राप्ति के लिए इस समय अधिक-से-अधिक मजबूत केन्द्रीय सत्ता होनी चाहिए और उसके आधार पर हम दूसरी सारी अन्यायी सत्ताएँ खण्डित कर सकेंगे। उसके बाद जिस प्रकार काष्ठ को खतम कर ज्वलन्त अग्नि खुद भी खतम हो जाती है, वैसे लोगों की तरफ से प्रकट हुई यह केन्द्रित सत्ता दूसरी वैसी ही सारी सत्ताओं को हिंसा से—अर्थात् अगर जरूरत पड़ी तो—नष्ट करेगी और फिर स्वयमेव शान्त हो जायगी। उसकी शान्ति के लिए और कुछ करना न पड़ेगा। सिर्फ यही करना पड़ेगा कि उसके खिलाफ जितनी शक्तियाँ हैं, उन सबका खातमा किया जाय। जब यह कार्य हो जायगा, तब उसके लिए अवकाश न रहेगा और वह शक्ति स्वयं शान्त हो जायगी। यह बिलकुल थोड़े में एक विचार मैंने यहाँ रखा। उसका उन लोगों ने बहुत विस्तार किया है, उसका एक खासा अच्छा शास्त्र भी बनाया है। उसका भी चिन्तन-मनन हमें करना चाहिए।

क्या कांग्रेस अहिंसक रचना में बाधक है?

इसके अलावा कुछ बीच के लोग हैं, जो मानते हैं कि शासन हर हालत में कुछ-न-कुछ रहेगा। शासन याने दण्डयुक्त शासन। समाज में दण्ड की आवश्यकता कायम है, क्योंकि सत्त्वगुण-रजोगुण-तमोगुण जो चलते हैं! कोई एक अवस्था ऐसी नहीं आती कि जहाँ रजोगुण और तमोगुण का लोप ही हो जाय। इसलिए हर हालत में दण्ड की आवश्यकता रहेगी, भले ही वह कम-बेशी हो—दण्ड का स्वरूप भी कुछ शान्त बने, यह दूसरी बात है। किन्तु दण्ड की आवश्यकता रहेगी, यह माननेवाले

अब जिन कारणों से यह किया गया, उनकी चर्चा मैं नहीं करना चाहता। नेताओं ने जिस ढंग से सोचा, उसके लिए कोई आधार ही नहीं था, ऐसा भी मैं नहीं कहता। हमें लगा कि जो बलशाली संस्था बन चुकी है, वह अगर चुनाव के क्षेत्र में बनी रहती है, तो शायद नवीन राज्य के लिए अधिक सुरक्षितता होगी। क्योंकि भिन्न-भिन्न पक्षों को जोड़कर एक राज्य-समाप्ति के बाद फौरन उस राज्य पर कब्जा करने के लिए दूसरे भी तैयार हो सकते हैं। इतिहास में देखा गया है कि ऐसा कभी-कभी होता है। इसलिए उसके प्रतिकार के लिए योग्य समझ करके उस समय वह किया गया होगा। उसका कुछ समर्थन भी किया जा सकता है। उसकी परीक्षा मैं नहीं करना चाहता। किन्तु यह एक घटना ऐसी है, जिसके कारण हमारे देश में अहिंसा के मार्ग में पचासों उलझनें खड़ी हुई हैं, यह हमें समझ लेना चाहिए।

नयी सेवा-संस्था की जिम्मेवारी

इसीलिए हम पर एक नयी संस्था बनाने की नाहक जिम्मेवारी आती है, जो गांधीजी के बाद नहीं आनी चाहिए थी। इस देश में हम एक ऐसी संस्था बनायें, जो सेवामय और सबसे बड़ी हो, बहुत कठिन समस्या है। एक संस्था जो ५०-६० साल से बन चुकी, जिसमें हम सब लोगों ने भक्तिपूर्वक योग दिया, जिसने इतिहास में अङ्कित रहनेवाला एक बड़ा भारी कार्य किया, उसे नगण्य समझकर कोई आगे बढ़े, यह असंभव है। फिर भी यह जिम्मेवारी नाहक छोटे-छोटे सेवकों पर डाली गयी। जिनके कन्धों में उतना जोर नहीं और जिनके दिमागों में शायद बहुत ज्यादा बल नहीं और एक महान् नेता को खो करके जो कुछ अस्त-व्यस्त भी हो सकते थे, ऐसों पर एक नाहक जिम्मेवारी डाली गयी कि आप स्वतन्त्र रूप से एक संस्था बनाइये। सेवा की छोटी-छोटी संस्था तो हम बना ही सकते हैं। वह कार्य हमारे लायक है। हम छोटे हैं, तो सेवा की छोटी-छोटी संस्थाएँ हम मजे में बना सकते हैं, चाहे कांग्रेस या महा-

वह हालत नहीं है, तो सोचा जाता है कि सेवा के लिए एक 'भारत-सेवक-समाज' बनाया जाय। भारत-सेवक-समाज सेवा करेगा, लेकिन जिस परिस्थिति में सबसे बड़ी ताकत सत्ताभिमुख है, चुनाव-प्रधान है, उस परिस्थिति में भारत-सेवक-समाज को बहुत ज्यादा बल नहीं मिल सकता। वह गौण ही रहेगा। सेवा करनेवाली गौण संस्थाएँ हिंसक समाज में भी होती हैं, क्योंकि चाहे समाज हिंसाश्रित हो, चाहे अहिंसाश्रित; जहाँ समाज का नाम लिया जाता है, वहाँ सेवा की जरूरत प्रत्यक्षतः होती है। इसलिए उस समाज में भी सेवाएँ चलती हैं, सेवा करनेवाली संस्थाएँ होती हैं। लेकिन अहिंसक समाज में सबसे बड़ी संस्था वह होनी चाहिए, जो 'सेवामय' हो। 'सेवा-प्रधान' कहने से भी मेरा समाधान नहीं हुआ, इसलिए मैंने 'जो सेवामय हो', ऐसा कहा।

लोक-सेवक-संघ

दूसरी बात, लोक-सेवक-संघ की जो कल्पना थी, उसमें सत्ता पर सत्ता चलाने की बात थी। एक सत्ता रहती, जो आज की आवश्यकता के मुताबिक राज्य-शासन करती। उसके हाथ में दण्ड होता और उसके हाथ में दण्ड देकर बाकी का सारा समाज दण्ड-रहित बनता। पर चूँकि वह भी दण्ड-सत्ता हाथ में रखनेवाली संस्था होती, इसलिए उस पर भी उससे अलिप्त रहनेवाली समाज की सत्ता रहती। याने सेवा सार्वभौम होती और सत्ता सेविका बनती, सत्ता का नियन्त्रण करने की शक्ति उस समाज में रहती। लोग उसका आशीर्वाद प्राप्त करके ही चुनाव में खड़े होते और समाज सेवा देखकर सज्जनों का चुनाव करता। इस तरह सारी बात बन जाती। लेकिन कई कारणों से वह चीज नहीं हुई और कांग्रेस प्रधानतः 'इलेक्शनियरिंग बॉडी' (चुनाव करनेवाली संस्था) रही। परिणाम यह हुआ, जैसा कि मैंने विनोद में कहा था, सारे समाज में भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों कालों का परिवर्तन 'इलेक्शन-पीरियड', 'प्रि-इलेक्शन-पीरियड' और 'पोस्ट-इलेक्शन-पीरियड' में होने लगा। याने कुल कालात्मा इन तीनों कालों में समाप्त हो गया।

उस ताकत के बारे में उनको भास है, तब तक उनकी ताकत किसी प्रकार से टूटे, ऐसी हम इच्छा नहीं करते। हम यही सुझाते हैं कि भिन्न-भिन्न संस्थाओं के हमारे भाई यह कोशिश करें कि जिसे वे अहिंसात्मक, रचनात्मक कार्य समझते हैं, वे उन संस्थाओं में प्रधान हों और दूसरी बातें गौण हो जायँ।

चुनाव को कितना भी महत्त्व क्यों न दिया जाय, आखिर वह ऐसी चीज नहीं कि उससे समाज के उत्थान में हम कुछ मदद पहुँचा सकें। वह 'डेमॉक्रेसी' में खड़ा किया हुआ एक यन्त्र है। एक 'फॉर्मल डेमॉक्रेसी' (औपचारिक लोकसत्ता) आयी है। वह माँग करती है कि राज्य-कार्य में हर मनुष्य का हिस्सा होना चाहिए। इसलिए हरएक की राय पूछनी चाहिए और मतों की गिनती करनी चाहिए। यह तो हर कोई जानता है कि ऐसी कोई समानता परमेश्वर ने पैदा नहीं की है, जिसके आधार पर एक मनुष्य के लिए जितना एक वोट है, उतना ही वह दूसरे मनुष्य के लिए भी हो—इस बात का हम समर्थन कर सकें। लेकिन यह स्पष्ट बात है कि पण्डित नेहरू को एक वोट है, तो उनके चपरासी को भी एक ही वोट है। इसमें क्या अक्ल है, हम नहीं जानते। मुझे वह शख्स मालूम नहीं, जो यह मुझे समझाये। परन्तु जब मैं इसका अपने मन में समर्थन करता हूँ, तब मुझे बड़ा ही आनन्द होता है। वह समर्थन यह है कि उसमें मेरे वेदांत का प्रचार होता है। इसमें आत्मा की समानता मानी गयी है। बुद्धि अलग-अलग है, कम-बेशी है। शरीर-शक्ति कम-बेशी है, और भी शक्तियाँ हरएक की अलग-अलग होती हैं। फिर भी हम हरएक को एक-एक वोट देते हैं। इसका इसी विचार से समर्थन होगा कि इसे माननेवाले लोग वेदान्त को मानते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। इसी आधार पर हम भी उसका समर्थन करते हैं। हमें बहुत अच्छा लगता है कि एक पत्थर हमें मिल गया, बड़ा अच्छा आधार मिल गया, जिस पर हम साम्ययोगी समाज की स्थापना कर सकते हैं।

कांग्रेस उसके विरुद्ध क्यों न खड़ी हो। अंग्रेज सरकार के रहते हुए भी हमने सेवा की छोटी-छोटी संस्थाएँ बनायीं, तो यह सरकार हर हालत में हमारे लिए पोषक ही है, मददगार है। कांग्रेस भी हर हालत में हमारी सेवा का गौरव करेगी। इसलिए छोटी-छोटी सेवा-संस्थाएँ बनाना हमारे लिए कठिन नहीं था। किन्तु हम पर यह जिम्मेवारी डाली गयी कि हम लोग सेवा की संस्था न बनायें, वरन् ऐसी संस्था बनायें, जो सेवा भी करे और सेवा के जरिये राज्य-तन्त्र पर सत्ता चलाने की शक्ति भी हासिल करे। सचमुच यह बड़ी भारी कठिन जिम्मेवारी हम पर डाली गयी। परमेश्वर सहायता करेगा, तो उसे भी छोटे, निकम्मे औजारों के जरिये वह सफल बनायेगा। वह उसकी मर्जी की बात है, लेकिन काम दुश्वार है।

सच्ची ताकत कहाँ ?

इस हालत में, हमारे जो मित्र इधर-उधर भिन्न-भिन्न राजनैतिक संस्थाओं में हैं, उन पर यह जिम्मेवारी आती है कि वे हम लोगों को कृपा कर थोड़ी मदद दें। वे यह मदद दें कि जहाँ बैठे हैं, वहाँ सेवा किस तरह ऊपर उठे, इस बारे में प्रयत्न करें। चाहे वे प्रजा-समाजवादी पक्ष में हों या कांग्रेस में या और भी किसी राजनैतिक संस्था में हों, वहाँ वे इस बात के लिए पूरी कोशिश करें कि चुनाव के जंजाल से भी अलग रहनेवाली संस्था खड़ी हो। एक संस्था के अन्दर अनेक ग्रूप पैदा होते हैं, तो वह राजनीति में बड़ी खतरनाक बात मानी जाती है। किन्तु मैं उन्हें यह नहीं सुझा रहा हूँ कि वे राजनैतिक क्षेत्र में काम करनेवाली अपनी-अपनी संस्थाओं के अन्दर दूसरे-तीसरे ग्रूप बनायें। ऐसी कोई सिफारिश मैं नहीं कर रहा हूँ। मैं नहीं चाहता कि इनमें से किसीकी ताकत टूटे, जिसे कि वे ताकत समझते हैं! जब वे ही महसूस करेंगे कि जिसको हम ताकत समझते थे, वह ताकत नहीं थी, तब तो वे खुद उसका परित्याग करेंगे। उस हालत में उन्हें सच्ची ताकत हासिल होगी। लेकिन जब तक

एक साथ सुनता हूँ, तो मेरे मन में दोनों मिलकर सिवा सत्याग्रह के, सिवा सर्वोदय के, कोई अर्थ नहीं निकलता। परंतु कई लोग उसका इतना ही अर्थ समझते हैं कि हमें समाजवादी रचना के लिए जो परिवर्तन करना पड़ेगा, वह बिलकुल आहिस्ता-आहिस्ता करना होगा। हाथ में कोई जख्म या फोड़ा हो, तो उसे तकलीफ न हो, इस तरह जैसे उस हाथ का उपयोग किया जा सकता है, वैसे ही बहुत नाजुक तरीके से—समाज-रचना में तकलीफ न हो, बहुत ज्यादा एकदम फर्क न हो, ऐसे ढंग से—काम करने को आजकल अक्सर अहिंसा समझा जाता है। याने वह एक निरुपद्रवी वस्तु होती है। **'न जातहार्देन, न विद्विषादरः'**—ऐसी स्थिति, जिसमें हम बहुत ज्यादा आगे नहीं बढ़ते और आज की हालत भी करीब-करीब बनी-सी रहती है। साथ ही समाधान भी होता है, क्योंकि हमने एक आदर्श सामने रखा और उसका कुछ-न-कुछ जप भी करते हैं, कुछ बोलते भी हैं! इसलिए जो कुछ किया जायगा, उसमें उसका थोड़ा स्वाद आ ही जायगा और धीरे-धीरे वह बात बनेगी। मुझे लगता है कि अहिंसा की यह व्याख्या अहिंसा के लिए बड़ी खतरनाक और हिंसा के लिए बहुत उपयोगी है। बुद्ध भगवान् ने यह बात हमें स्पष्ट समझायी। उन्होंने कहा : **'मन्दं पुण्यं कुर्वतः पापे हि रमते मनः।'** अगर हम पुण्य-आचरण आलसी होकर आहिस्ता-आहिस्ता करते हैं, तो पाप शीघ्र, त्वरित गति से बढ़ता है।

अहिंसा में तीव्र संवेग जरूरी

अगर अहिंसा के माने 'कम-से-कम वेग से समाज को बहुत ज्यादा तकलीफ दिये बगैर आगे बढ़ते जाना' किया जाय, तो वह अर्थ अहिंसा के हित में नहीं, हिंसा के हित में है। उससे हिंसा बहुत जोरों से बढ़ेगी। जहाँ आप शराब-बंदी को कहेंगे : 'गो स्लो', वहाँ शराबखोरी जोर से बढ़ेगी। दुर्जनता जोरदार होती है। इसलिए कृपा कर अहिंसा के लिए 'गो स्लो' वाली बात लागू मत कीजिये। उसे हिंसा के लिए लागू

मूल्य-परिवर्तन प्रमुख और चुनाव गौण

किन्तु सोचने की बात है कि जहाँ तक व्यवहार का सवाल है, मतों की गिनती कर हम एक राज्य चलाते हैं, तो उसका बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं। उसका ऐसा महत्त्व नहीं, जिससे समाज-परिवर्तन हो सके। समाज में आज लोग क्या चाहते हैं, इसे जान लेने से हमें आगे के परिवर्तन की दिशा सोचने में शायद मदद मिल सकती है। किन्तु उतने से भी समाज के परिवर्तन की प्रक्रिया में कोई मदद पहुँचती हो, सो बात नहीं। इसलिए व्यावहारिक क्षेत्र में चुनाव को कितना भी महत्त्व प्राप्त हो, तो भी जहाँ तक मूल्य-परिवर्तन का सवाल है—और मूल्य-परिवर्तन के बिना तो समाज आगे नहीं बढ़ेगा—वह गौण वस्तु हो जाती है। इतना समझकर हमारे जो लोग वहाँ हैं, वे इतना कार्य करें कि वहाँ बैठकर रचनात्मक काम के लिए बहुत जोर दें और अगर उन्हें यह महसूस हो कि 'नहीं, वहाँ एक ऐसा मसाला है, जो हमारे सारे प्रयत्न को शून्य या विफल बनाता है', तो उनको वहाँ से निकल आना चाहिए। अगर वे ऐसा करते हैं, तो हमारे जैसे कम शक्ति के लोगों को, जो बड़ा भारी जिम्मा उठाने के लिए मजबूर किये गये हैं, कुछ मदद मिलेगी।

अहिंसा की खतरनाक व्याख्या

दूसरी सोचने की बात यह है कि गांधीजी ने हर बात में अहिंसा का नाम लिया, तो हम सब लोगों के सिर पर अहिंसा का वरदहस्त ही है। किन्तु हम लोगों में से कुछ लोग सरकार में गये हैं, कुछ लोग बाहर हैं। इसलिए इन दिनों अक्सर अहिंसा का सरकारी अर्थ यह हुआ है कि समाज को कम-से-कम तकलीफ देना। समाज को पीड़ा पैदा न हो, अभी की हमारी जो व्यवस्था है, उस व्यवस्था में बहुत बाधा न पड़े, इसीका नाम है अहिंसा! आज जब यह कहा जाता है कि "समाज का 'सोशॅलिस्टिक पॅटर्न' (समाजवादी रचना) बनाना है", तो उसके साथ यह भी कहते हैं कि 'हमारा ढंग अहिंसा का रहेगा।' जब ये दो शब्द मैं

सर्वाधिकारी बना दिया है। अगर जरूरत हो, तो आपके हाथ में जो ब्रह्मास्त्र और पाशुपतास्त्र हैं, उनका भी उपयोग आप कर सकते हैं। इस तरह सारे विद्वानों का जिस पर इतना विश्वास है, वह शख्स अगर राजाजी की बात माने, तो लोग कहेंगे कि "फिर हम चुनाव में राजाजी को ही क्यों न चुनें ?" बेचारे के लिए बड़ी मुसीबत की बात है। वह क्या करे ? उसको मेण्डेट है सारी जनता का कि वह उस अक्ल को चलाये, जिसका उन्हें परिचय है और जिसे देख करके ही उसे चुना गया है। अगर वह अक्ल जेब में रखकर राजाजी की अक्ल कबूल करे, तो उस प्रजा का कितना विश्वासघात होगा ? वह कहेगी कि "अरे, क्या तुझे यह समझकर चुना था कि तू अपना सारा दिमाग राजाजी को अर्पण कर देगा ? तुझे हमने इसीलिए चुना कि तू पिछले युद्ध में बहादुर साबित हुआ और तूने हमें बचाया। तुझे अपना मददगार समझकर हमने सारी दण्ड-शक्ति तेरे हाथ में सौंपी और तू भलामानुस ऐसे तत्त्वज्ञानी की बातें सुनता है !"

सेना हटाने की शक्ति देश में कैसे आये ?

लेकिन हम अपने मन में सोचते हैं कि क्या हम दूसरे देशों को इस तरह की सलाह देने के लायक हैं ? मैंने अभी कहा कि राजाजी में त्रिविध शक्ति एकत्र हुई है, इसलिए इस प्रकार का उद्गार प्रकट करने के लिए वे सब प्रकार से अधिकारी हैं। सारी दुनिया को वे बुद्धि दे सकते हैं और दुनिया नहीं मानती, तो दुनिया का ही वह दुर्दैव है। लेकिन जिस देश के वे गिने जायँगे, क्या वह भी उन्हें इतना बल देता है ? क्या हमारे देश में हमारी ऐसी भूमिका है कि पाकिस्तान की कुछ भी हालत हो, वह हमारा वैरी नहीं है ? क्या हम लोगों को यह लगता है कि पाकिस्तान अपनी सेना बढ़ा रहा है, तो हम उसके बदले में अपनी सेना घटायें ? उधर खूब अन्धकार बढ़ रहा है, एक सादे-से लालटेन से अब काम न चलेगा। इसलिए क्या यह जरूरी नहीं कि हम अब जरा जोरदार अहिंसा बनायें और अपनी सेना छोड़ दें ?

कीजिये। वहाँ 'गो स्लो' बहुत अच्छा है, पर अहिंसा में तीव्र संवेग होना चाहिए। शास्त्र-वाक्य है : 'तीव्र संवेगानाम् आसन्नः।' अगर आप अच्छाई को जल्दी-से-जल्दी, नजदीक-से-नजदीक लाना चाहते हैं, तो उसमें तीव्र संवेग होना चाहिए। अगर अहिंसा का अर्थ इतना मृदु, नरम, निर्वीर्य किया जाय, तो उससे विरोधी शक्तियाँ, हिंसक शक्तियाँ हमारे न चाहते बढ़ेंगी, इस बात का ज्ञान सारे गांधीजी के अनुयायियों को हो, यह हमारी भगवान् से प्रार्थना है।

राजाजी का सुझाव

राजाजी ने दो-तीन बार एक महान् विचार सारी दुनिया के सामने रखा, जिसे रखने के लिए वे ही समर्थ हैं। क्योंकि वे तत्त्वज्ञानी हैं और तत्त्वज्ञानी होते हुए भी राज्य-कार्य-कुशल हैं। जिस पुरुष में तत्त्वज्ञान और राज्य-कार्य-कुशलता, दोनों का संयोग होता है और इसके अलावा जो शब्द-शक्ति के भी ज्ञाता हैं—शब्द का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए, इस विषय में भी जो प्रवीण हैं—ऐसी त्रिविध शक्तियाँ जहाँ एकत्र होती हैं, वही शख्स ऐसा कहने के लिए अधिकारी है। उन्होंने कहा कि 'यूनिलिटरल ऍक्शन' याने एकपक्षीय सज्जनता प्रकट होनी चाहिए। सामनेवाले से यह शर्त करके कि, तू अगर इतना सज्जन बनेगा, तो मैं इतना सज्जन होऊँगा; कोई सज्जन बनता है, तो इस तरह सज्जनता नहीं बढ़ सकती। सज्जनता तो स्वयमेव बढ़ती है, अपना ही विचार करके। इसीलिए उन्होंने अमेरिका को यह रास्ता सुझाया।

अब अमेरिका के लिए बड़ी मुश्किल हो गयी। अमेरिका की कुल जनता विद्वान् है, क्योंकि हिन्दुस्तान में जितना कागज खपता है, उससे १६० गुना कागज प्रतिव्यक्ति वहाँ खपता है! तो, जहाँ कुल जनता ही विद्वान् है, वहाँ के विद्वानों ने मिलिटरी-कार्य में प्रवीण एक मनुष्य के हाथ में सारी सत्ता सौंप दी है और कहा है कि फारमोसा के बारे में सब कुछ करने का पूरा अधिकार हमने आपके हाथ में सौंप दिया है। आपको

ही जानते हैं कि सर्वोदय समुद्र है और सब नदियाँ इसमें मिलनेवाली हैं। यही हमने कहा था। शायद अखबारों में गलत रिपोर्ट की गयी होगी। यह भी कहा था कि गंगा-यमुना की तरह नदियाँ आपस में मिलकर बाद में समुद्र में आयेंगी, नहीं तो कृष्णा, गोदावरी की तरह अलग रहेंगी। लेकिन समुद्र में लीन होना है, यह निश्चित है। हिंदुस्तान में जितने भी पक्ष हैं, उनमें कुछ अच्छे लोग हैं, कुछ अच्छे विचार हैं और कुछ खराब लोग हैं और कुछ गलत विचार हैं। नालों में पानी होता है, मैल भी होता है। इसी प्रकार राजनीतिक पार्टियाँ हैं। उनमें कुछ अच्छे विचार हैं, कुछ गलत विचार हैं। हम उसकी चिंता नहीं करते। हम इतना ही जानते हैं कि इसमें पानी है। हम हैं समुद्र, तो समुद्र किसीको यह नहीं कह सकता कि तुम नदी हो, तो आओ और तुम नाले हो, तो मत आओ। सबको आकर समुद्र में डूबना है। सब लोग चाहते हैं कि भारत का भला हो। हमारा विश्वास है कि भारत का भला सर्वोदय-विचार के बिना नहीं होगा। इसलिए सब पार्टियों को सर्वोदय में आना ही होगा। हम तो सबको खाने के लिए बैठे हैं। संतरा खाते हैं, तो सार लेते हैं और असार थूक देते हैं। वैसे ही हम सार ग्रहण करते हैं। उनमें जो सार है, वह सर्वोदय ही है। सर्वोदय में हम सबका भला देखते हैं। उस दृष्टि से कम्युनिज्म और कम्युनइज्म में फर्क नहीं है। मुसलमान मुसलमानों का हित, हिंदू हिंदुओं का हित चाहते हैं। मूढ़ों को मालूम नहीं कि हिंदू-मुसलमानों का हित एक-दूसरे के विरोध में नहीं है। वैसे ही ये लोग गरीब और अमीरों के हित विरोध में मानते हैं। हमारे दो हाथ हैं, हाथ की अँगुलियाँ हैं। क्या किसी एक का हित दूसरे के विरोध में है ? सहयोग के बिना काम होता ही नहीं। इसलिए सबको समान प्लैटफार्म पर लाना होगा। सबकी एक आवाज उठानी होगी। किसी घर को आग लगी, तो सब दौड़ जाते हैं—चाहे वे किसी भी धर्म के, जाति के या पार्टी के हों। वैसा ही यह सर्वोदय का काम है, सबको करना पड़ेगा। चाहे जो किसी पार्टी का, धर्म का हो। चाहे गंगा हो,

पाकिस्तान ने अमेरिका से जो मदद माँगी, उस पर हमें यह विचार सूझा। क्योंकि जब हमारे पड़ोसी इतने भयभीत हो गये हैं, तो उस हालत में सारी दुनिया को, और खास करके अपने पड़ोसी को हमें निर्भय बना देना चाहिए। तो चलो, हम यह प्रस्ताव करते हैं कि अभी तक तो हम सेना पर साठ करोड़ रुपये खर्च करते थे, पर अब अगले साल हम उस पर दस करोड़ ही रुपये खर्च करेंगे और पचास करोड़ रुपये उसमें से कम कर डालेंगे। क्या हम ऐसा करने की शक्ति रखते हैं ? साफ है कि नहीं रखते। आखिर यह शक्ति कब आयेगी ? वह आनी भी चाहिए या नहीं ? अगर आनी चाहिए, तो फिर वह शीघ्र आये। इस काम में देर नहीं चलेगी। हमारे देश को शीघ्र ही अहिंसा में अग्रसर होना होगा। इसलिए जो लोग अहिंसा की यह व्याख्या करते हैं कि धीरे-धीरे जो चलेगी, उसका नाम अहिंसा, वह बड़ी खतरनाक है। इससे अहिंसा करीब-करीब स्थिति-स्थापक बनती है, 'स्टेटस् को' का बचाव करनेवाली बनती है। थोड़ी-थोड़ी प्रगति तो होने ही वाली है, चाहे आप करें या न करें। यह तो विज्ञान का युग है। ढकेलकर ही यहाँ प्रगति होती है और वही हमें प्रगति की तरफ ढकेलेगा। इसलिए अहिंसा की व्याख्या आज खतरे में पड़ी है। यह हमारे देश के लिए सोचने का विषय है।

अहिंसा ही अंतिम शरण : २१ :

प्रश्न : (१) शायद आपने सोशियालिज्म को गंगा और कम्युनिज्म को यमुना कहा है। लक्ष्य और मार्ग शुद्ध होना ही चाहिए, ऐसा आप आग्रह रखते हैं। तो उपर्युक्त बातों का न्यायीकरण आप किस तरह कर सकते हैं ?

सब पार्टियों को सर्वोदय में आना ही होगा

विनोबा : हम नहीं जानते कौन गंगा है और कौन यमुना। इतना

बिलकुल पहाड़ के ऊपर होता है, कोई जरा नीचे होता है। समुद्र कहाँ है? वह परम नम्र है, इसलिए सबसे नीचे है। इस वास्ते हम कहते हैं कि कांग्रेस, पी० एस० पी० सबको लीन होना है समुद्र में। पंडित नेहरू ने पार्लियामेंट में क्या कहा था? हम सोशलिस्ट स्टेट बनाने जा रहे हैं। सोशलिस्ट से 'सर्वोदय' शब्द अच्छा है। अपने देश का वह शब्द है। उसका अर्थ भी अच्छा है और इस भूमि में पैदा हुआ है। लेकिन उस नाम को हम नहीं ले सकते। क्योंकि उनका काम हम कर पायेंगे कि नहीं, इसकी जरा शंका है। इसलिए सोशलिस्टिक हैं, ऐसा कहते हैं। हमारा उद्देश्य तो सर्वोदय का नहीं है। यह क्या दिखाता है? सर्वोदय में लीन होने की तैयारी चल रही है। धीरे-धीरे उतर रहे हैं। जरा धक्का मिलेगा, तो ये लोग समुद्र में जल्दी आयेंगे। धक्का कौन देगा? ग्रामदान चलाते हो, तो धक्का मिलेगा। इसमें देर हुई, तो उनके आने में भी देर होगी।

प्रश्न : (३) आपकी अहिंसा धीरे-धीरे जमीन पर चल रही है और हिंसा तो आसमान में है। बड़े-बड़े आचार्यों के प्रयत्न के बावजूद भी अहिंसा की अभिवृद्धि इतनी ही हुई है। इस हालत में क्या अहिंसा के लिए समय आनेवाला है?

मूढ़ हिंसा कब तक चलेगी?

विनोबा : बड़ा ही सुन्दर सवाल है। अहिंसा याने जमीन पर धीरे-धीरे चलनेवाली चींटी और हिंसा याने विहंगम पक्षी—ऐटम-हाइड्रोजन बम। अब सवाल है, क्या गरुड का कब्जा चींटी कर लेगी? यह कब बनेगा? ऐसा समय कभी आयेगा? हम इतना ही कहते हैं कि वह समय आज आया है। यही हमारा उत्तर है। आज वह विहंगम पक्षी नीचे गिर रहा है। फिर चींटियाँ उसका कब्जा करेंगी। रेल पर से एक ट्रेन बहुत वेग से जा रही है। रेल पर एक चींटी है। वह क्या करती है? जरा थोड़ी नीचे खिसकती है, तो बच जाती है। सुरक्षित रहती है। ट्रेन की यह ताकत नहीं कि जरा पटरी के बाहर जाकर चींटी को खतम करे। आज

यमुना हो या नाला हो। उसको सर्वोदय में लीन होना ही है। यही हमने उस दिन कहा था।

प्रश्न : (२) आपकी पक्षरहित, शासन-मुक्त समाज-रचना का स्वर्गीय एम० एन० राय के साथ साम्य दीखता है। क्या उनके रेडि-कल कम्युनिस्ट आंदोलन से आपका कोई संबंध है? १९४८ में उन्होंने राष्ट्रीय पक्ष को तोड़ने की हिम्मत की थी। वैसे आप भी अपने प्रभाव से कांग्रेस, पी० एस० पी० को तोड़ने की कोशिश करेंगे?

सर्वोदय समुद्र है

विनोबा : हम सत्ता का विकेंद्रीकरण चाहते हैं। शासन-मुक्त समाज बनाना चाहते हैं। अगर एम० एन० राय के विचार इसी प्रकार के हों, तो आनन्द की ही बात है। हम राजनीति को समाप्त करके उसकी जगह लोकनीति बनाना चाहते हैं। लोकनीति प्रेम, करुणा, समत्व के आधार पर होगी। राय आखिर में इस निर्णय पर आये होंगे, तो उनके आदर्श पर जो भी चलनेवाले लोग होंगे, उनको भूदान में जरूर आना चाहिए।

पोलिटिकल पार्टी तोड़ने की कोशिश हमने की थी। परन्तु उनमें और हममें फर्क है। उन्होंने पोलिटिकल पार्टी पहले बनायी थी और बाद में तोड़ी। उनका परिवर्तन हुआ। हमने तो पार्टी बनायी ही नहीं, इस वास्ते तोड़ने का सवाल ही नहीं। हम किसी पार्टी को तोड़ने की कोशिश नहीं करते। परन्तु हम क्या कर रहे हैं, यह सब देखते हैं। हमारे विचार स्पष्ट हैं। वे हमारे नजदीक आयें, तो हम खुश होंगे। उनको धीरे-धीरे नजदीक आना ही पड़ेगा। बालू की घड़ी में एक-एक कण नीचे गिरता है। नीचेवाला ऊपर नहीं जाता, ऊपरवाला नीचे आता है। यह समुद्र खुला है। सबको कहता है कि आ जाओ। कोशिश क्या करना है? वे सारे नीचे आने ही वाले हैं। क्या समुद्र पानी को खींचने की कोशिश करता है? वह अत्यन्त नम्र है। इसलिए सबको आना ही है। नम्र मनुष्य क्या करता है? सबके नीचे बैठता है। कोई उन्मत्त पानी

हो रही है। वह अब बुझना चाहती है। मानव को शान्ति की प्यास और शान्ति की भूख लगी है। समाज के मसले शान्ति, प्रेम, करुणा से हल हों, ऐसी अत्यन्त वासना है।

लोकतंत्र और सत्याग्रह : २२ :

इस देश में 'सत्याग्रह' शब्द का बहुतों को डर लगता है। यह हमारे लिए चिन्ता का विषय है, क्योंकि हमने यह नया मन्त्र सीखा और हम इसे दुनिया के लिए तारक मन्त्र मानते हैं। हम यह भी कहते हैं कि मानव-जाति के इतिहासभर में अभी तक जो अनुभव आया, उसके परिणामस्वरूप सामूहिक सत्याग्रह का यह एक मन्त्र मिला। अब इससे अहिंसा बलवती होगी। लेकिन इन दिनों तो सत्याग्रह शब्द से डर लगने लगा है। लोग यहाँ तक कहते हैं कि 'डेमॉक्रेसी' में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं, लोकसत्ता में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं है! पर वास्तव में सत्याग्रह के लिए तो उस सत्ता में स्थान न होगा, जिसमें हर निर्णय 'यूनानिमस' या एक राय से ही हो। सबकी सम्मति से निर्णय हो, ऐसी जहाँ समाज-रचना होगी, वहाँ स्वतन्त्र सामूहिक सत्याग्रह की जरूरत न होगी। उस समाज में पुत्र के खिलाफ माँ का सत्याग्रह और माँ के खिलाफ पुत्र का सत्याग्रह हो सकता है। एक पड़ोसी के खिलाफ दूसरे पड़ोसी का सत्याग्रह होगा। यहाँ 'खिलाफ' का अर्थ हिंसा के अर्थ में 'खिलाफ' नहीं; वरन वह उसका मददगार होगा। उसके शोधन के लिए प्रेमपूर्वक और त्याग से जो किया जायगा, उसी अर्थ को प्रकट करने के लिए अब भी 'खिलाफ' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। सारांश, पड़ोसी पर विशेष प्रकार से प्यार प्रकट करने के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह पड़ोसी के साथ होगा। किन्तु जहाँ समूह का हर फैसला सबकी सम्मति से होगा, उस समाज में सामूहिक सत्याग्रह के लिए गुञ्जाइश नहीं रहेगी, यह बात समझ में आती है। इसीलिए हम बार-बार कहते हैं कि यह 'डेमॉक्रेसी'

यह हिंसा इतनी बढ़ गयी है कि दुनिया का मसला हल करने की ताकत उसमें नहीं रही है। बड़े-बड़े सम्पन्न, समृद्ध, सब प्रकार से परिपूर्ण देश आज एक-दूसरे के डर से काँप रहे हैं। एक टेबल पर प्रेम से बातें करने बैठते हैं। परन्तु उधर सेना और शस्त्रास्त्र का पक्का मजबूत प्रबन्ध करते हैं। परिणाम यह होता है कि दुनिया आगे बढ़ ही नहीं रही है। अरबों रुपये सेना और शस्त्रास्त्र में खर्च हो रहे हैं। दुनिया में चारों तरफ भय छाया हुआ है। इसलिए एक भी मसला हल नहीं हो रहा है। आखिर अहिंसा की शरण में आना ही पड़ेगा। हम कहते हैं कि जितनी हिंसा बढ़ेगी, उतना अच्छा है। उत्तरायण बढ़ जाता है, तो दक्षिणायन आनेवाला ही है।

पुराने जमाने में क्या होता था ? कोई वाद उत्पन्न हुआ कि कुश्ती होती थी। जो जीतेगा, उसकी जय। जैसे जरासंध और भीम की कुश्ती। आज अगर वैसा होता, तो हम कितने सुखी होते। मान लो, स्टालिन और हिटलर की कुश्ती हुई होती, तो करोड़ों लोगों को मरना न पड़ता। आज क्या होता है ? एक हारता है और दूसरा जीतता है। हारनेवाला अपनी सेना और बढ़ाता है। वह जीतता है, तो दूसरा हारता है। तो वह अपनी सेना बढ़ाता है। एक ने बन्दूक ली, तो दूसरा तोप बनाता है। एक ने तोप ली, तो दूसरा बम बनाता है। इस तरह बढ़ते-बढ़ते इस हद तक आगे बढ़ेगा कि मनुष्य प्राणी ही खतम हो जायगा। इसलिए आज सब विश्व-शान्ति चाहते हैं।

इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी कम ज्ञान-प्रेमी नहीं हैं। लन्दन, बर्लिन में सबसे बड़े ग्रन्थालय हैं। उनमें दुनिया की किताबें इकट्ठा की गयी हैं। अपने देश में जो पुराना ग्रन्थ नहीं मिलेगा, वह वहाँ मिलेगा। परन्तु मौका आने पर एक-दूसरे के ग्रन्थालय पर बम डालने के लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसी मूढ़ हिंसा कब तक चलेगी ? यह हिंसा इतना जोर कर रही है, परन्तु वह मरनेवाली है। दीपक जब बुझने की तैयारी में होता है, तो एकदम बड़ा होकर बुझता है। उसी तरह हिंसा कमजोर

रूप प्रकट होता है। हमारे लिए यह सोचने की एक बात है, जिससे हमें अपने कर्तव्य-कार्य की तरफ जाने के लिए बहुत सुभीता होगा। इसलिए इस पर हम जरा सोचते हैं कि गांधीजी के जमाने में किये गये सत्याग्रह को यदि :सत्याग्रह का आदर्श समझकर चलें, तो हम गलती करेंगे। उनका एक जमाना था, उनकी एक परिस्थिति थी। उस परिस्थिति में कार्य ही 'निगेटिव' (निषेधात्मक) करना था। फिर भी उस कार्य के साथ-साथ उन्होंने काफी रचनात्मक और विधायक प्रवृत्तियाँ जोड़ दीं। यह उनकी प्रतिभा थी, जो उनसे कहती थी कि एक निषेधक (अभावात्मक) कार्य करते हुए भी अगर हम विधायक वृत्ति न रखें, तो जहाँ वह अभावात्मक (निगेटिव) कार्य सम्पन्न होगा, वहाँ और कई खतरे पैदा होंगे।

लोग उनसे बार-बार पूछते कि चरखा क्यों चलायें, यह हमें जरा समझा तो दीजिये। अंग्रेजों को यहाँ से भगाना है, तो उनके साथ चरखे का सम्बन्ध कहाँ से आने लगा, समझ में नहीं आता। फिर भी लोग यह समझकर कि गांधीजी के नेतृत्व के साथ स्वराज्य का सम्बन्ध है और इस वास्ते इसे कबूल करो, उसे कबूल करते थे। उन्हें जवाब मिलता था : "जनता में जाग्रति हुए बगैर, जनता में स्वराज्य की भावना पैदा हुए बगैर काम कैसे चलेगा? अंग्रेजों पर इसका परिणाम कैसे होगा? क्या ऐसे ही, केवल हमारे शब्दों से? इस वास्ते हमें रचनात्मक कार्य से अपने विचार फैलाकर जन-सम्पर्क बढ़ाना चाहिए। इसके कारण जन-सम्पर्क के लिए हमें एक अच्छा-सा मौका मिलता है। उन्हें थोड़ी राहत, मदद भी मिलती है। हमारी उनके साथ सहानुभूति है, इसका दर्शन उन्हें मिलता है और उनकी भी सहानुभूति हमें मिलती है। इस तरह हमारे राजनैतिक कार्य के पीछे एक नैतिक बल खड़ा होता है।" इस तरह उन्हें लोगों को समझाना पड़ता था।

विधायक सत्याग्रह

किन्तु वह जमाना ऐसा था कि उसमें लोगों को अभावात्मक कार्य

कुछ दोषमय है। इसमें अहिंसा का माद्दा कुछ ही हद तक आता है, ज्यादा नहीं। इसलिए अपने सारे फैसले सर्वसम्मति से करने की तैयारी करनी चाहिए।

पर इस विषय में हमारे साथी भी हमसे कहते हैं कि भाई, यह कैसी अव्यावहारिक बात बताते हो ? इससे व्यवहार कैसे चलेगा ? इस तरह यह वस्तु कुछ नयी-सी है, इस वास्ते इसमें काफी सोचना पड़ेगा। अपना जीवन और दिमाग ऐसा बनाना पड़ेगा, जिससे सर्वसम्मति से काम होते हुए भी वह अग्रसर हो। समाज इसी तरह सोचने लगे। कार्य-हानि न होते हुए सबके साथ कैसे काम किया जाय, यह समाज सीखे, यह सारा करना पड़ेगा। उसमें कुछ मुसीबतें जरूर हैं। लेकिन चूँकि इसमें मुसीबतें हैं, इसलिए अगर उस पर न सोचेंगे, तो हम समझते हैं, यह नया विचार, नया मत कि 'डेमॉक्रेसी में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं', अहिंसा के लिए खतरे का है। इस बारे में हमें निर्णय करना चाहिए।

गांधीजी के जमाने का सत्याग्रह

सत्याग्रह के लिए भय पैदा होने का एक कारण यह भी है, जो मैं अभी कहूँगा और वह भी अहिंसा के लिए एक खतरा है। सत्याग्रह की एक अभावात्मक (निगेटिव) व्याख्या मनुष्यों के मन में स्थिर हो गयी है। सत्याग्रह याने अडंगा लगाने का एक प्रकार, दबाव लाने का एक प्रकार, जो बहुत ज्यादा बेजा न कहा जाय। इसका अभी लोगों के मन में इतना ही अर्थ है और इसी कारण कुछ लोगों को इसका आकर्षण भी बहुत ज्यादा है। जैसे 'सत्याग्रह' शब्द का एक डर हम देखते हैं, वैसे ही एक आकर्षण भी। लोग हमसे कहते हैं कि बाबा कब तक जमीन माँगता फिरेगा ? आखिर कभी वैष्णवास्त्र भी निकालेगा या नहीं ? मान लिया कि ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र आदि हिंसा के हैं। लेकिन वैष्णव का अस्त्र, जो विष्णु का है, वह तो अहिंसा का रामबाण है। तो, बाबा वह भी निकालेंगे या नहीं ? लोग ऐसा हमसे बार-बार पूछते हैं। तब उन्हें समझाना पड़ता है कि यह जो चल रहा है, इसमें सत्याग्रह का ही एक

को प्रथम चीज मानते हैं। याने सब गुण उसके बाद आते हैं। प्राथमिक गुण है, 'लॉ एण्ड ऑर्डर'। 'लॉ एण्ड ऑर्डर' के बिना उनका काम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए जिन पर 'एडमिनिस्ट्रेशन' की जिम्मेवारी है, उनके चित्त पर स्वाभाविक ही उस उपवास की एकदम विपरीत प्रतिक्रिया होती हो, तो आश्चर्य नहीं।

सत्याग्रह का अर्थ

सत्याग्रह में एक शक्ति है, ऐसा हम मानते हैं। वह कौनसी शक्ति है? उसका स्वरूप क्या है? उस शक्ति का स्वरूप यह है कि वह सामनेवाले के वैर को डिसआर्म (निःशस्त्र) करती है। जैसे सूर्य के आने से अन्धकार मिट जाता है, वैसे सत्याग्रह में यह शक्ति है कि जो सामनेवाला मनुष्य सोचने के लिए भी राजी नहीं था या विपरीत ही सोचता था, वह सत्याग्रह के दर्शन से सोचने लगा और उसका सोचना बिलकुल निर्मल हुआ। उसकी बुद्धि के पर्दे खुल गये, मोह के आवरण दूर हो गये और उसके मन में अनुकूलता पैदा हो गयी। जहाँ यह होता है, वहाँ सत्याग्रह है। जहाँ यह नहीं होता और किसी-न-किसी प्रकार का दबाव आता है, वहाँ सत्याग्रह-शक्ति क्षीण हो जाती है। अभी आपने मेरे मुँह से ही सुना कि ग्रामदान में थोड़ा-सा 'कोअर्शन' का अंश आ जाय, तो भी डिफेन्स मेजर के तौर पर मैं उसे मान्य करने को राजी हो जाऊँगा। लेकिन जहाँ सत्याग्रह का सवाल आता है, जहाँ लोगों के पास जाकर ग्रामदान की बात समझानी होती है, जो सत्याग्रह का ही अंश है, वहाँ रत्तीभर भी 'कोअर्शन' हम सहन नहीं कर सकते। बल्कि उसमें जितना दबाव का अंश रहेगा, उतना उसका बल क्षीण होगा। मैं आपको एक मिसाल दे रहा हूँ, जो बहुत बड़ी है और जिसके बारे में बापू के साथ मेरी कई बार चर्चा भी हुई है। बापू ने कम्यूनल अवार्ड के लिए उपवास किये थे। उस समय अम्बेडकर के साथ कुछ चर्चा चल रही थी। सब चाहते थे कि उपवास जल्दी समाप्त हो। रवीन्द्रनाथ ठाकुर उस समय वहाँ आ पहुँचे। बापू के उपवास का बेजा दबाव रवीन्द्रनाथ पर पड़ा और उन्होंने

करना था। इसलिए जो सत्याग्रह उस जमाने में हुए, वे सत्याग्रह के अन्तिम आदर्श थे, ऐसा हमें नहीं समझना चाहिए। हमें यह समझना होगा कि जहाँ लोक-सत्ता आ गयी, वहाँ अगर हम सत्याग्रह का अस्तित्व मानते हैं, तो उसका स्वरूप भी कुछ भिन्न होगा। यह नहीं कि 'डेमॉक्रेसी' या लोक-सत्ता में सत्याग्रह के लिए अवकाश ही नहीं! ऐसा मानना तो बिलकुल ही गलत विचार है। पर यह भी विचार गलत है कि उस जमाने में जो निगेटिव (अभावात्मक) प्रकार के सत्याग्रह किये गये, उनके लिए डेमॉक्रेसी में बहुत ज्यादा 'स्कोप' (गुञ्जाइश) है और उनका परिणाम लोक-सत्ता में बहुत ज्यादा प्रभावशाली होगा। लोक-सत्ता में जिस सत्याग्रह का प्रभाव पड़ेगा, वह अधिक प्रभावशाली होना चाहिए, अर्थात् अधिक विधायक होना चाहिए। इस दृष्टि से भी हमें अपने आन्दोलन की तरफ देखना चाहिए कि भूदान-यज्ञ का कार्य हम जिस तरीके से कर रहे हैं, वह अहिंसा का ही एक तरीका है। परन्तु अहिंसा में वही एक तरीका है, सो बात नहीं। दूसरे भी तरीके हैं। इससे भी बलवान् दूसरे तरीके हमें मिल सकते हैं और उनका हम इस्तेमाल कर सकते हैं। अगर इस तरीके का हमने पूरा उपयोग कर लिया और इसका नतीजा पूरा देख लिया हो, तो हमें सोचने का मौका मिलेगा।

'सत्याग्रह' शब्द के उच्चारण से ही सबको आकर्षण होना चाहिए। पर होता है, विकर्षण। मान लीजिये कि किसीका उपवास शुरू हुआ। तो, मेरे मन में भी सहानुभूति का उदय होने के बदले, प्रथम क्षण कुछ ऐसा भास होता है कि इस व्यक्ति ने कुछ गलत काम किया! ऐसा नहीं लगना चाहिए, परन्तु ऐसा होता है। फिर अधिक परिचय के बाद अगर वह उपवास योग्य मालूम हुआ, तो हम वैसा कहते भी हैं, लेकिन प्रथम क्षण मेरे मन पर ऐसी प्रतिक्रिया होती है कि इसने यह क्या किया! जब मेरे मन पर भी ऐसी प्रतिक्रिया होती है, तो दूसरे लोगों के मन पर, जो कि समाज की व्यवस्था को जरा भी धक्का न लगे, ऐसा चाहते हैं, होगी ही। जो एडमिनिस्ट्रेटर्स (कारोबारी) होते हैं, वे 'लॉ एण्ड ऑर्डर'

गांधीजी का जमाना

गांधीजी के जमाने में सत्याग्रहरूपी सूर्य का उदय हुआ था। वह बिलकुल फीका-सा था। अब जमाना बदल गया है, लोकसत्ता आयी है। अब स्वाभाविक ही सवाल पैदा होता है कि क्या लोकसत्ता में सत्याग्रह के लिए गुंजाइश है? यह टालने जैसा सवाल नहीं है।

सोचने की बात है कि जहाँ आपको पूरी आजादी है कि घर-घर जाकर जो भी विचार समझाना है, समझायें; उस हालत में क्या सत्याग्रह के लिए गुंजाइश है? कुछ लोग मानते हैं कि गुंजाइश नहीं है, कुछ मानते हैं कि कम है। इस तरह माननेवालों का एक बड़ा समूह मौजूद है। पहले वे ऐसा नहीं मान सकते थे, लेकिन अब मान सकते हैं; क्योंकि परिस्थिति बदली है, देश आजाद हुआ है, लोकसत्ता आयी है, प्रचार के साधन खुल गये हैं। इस हालत में कोई उसी प्रकार का निगेटिव सत्याग्रह करे, तो हम उसका यह कहकर बचाव नहीं करेंगे कि हम छोटे लोग हैं और गांधीजी के भी सत्याग्रह में न्यूनता थी, तो हम जैसे छोटे लोगों के सत्याग्रह में तो वह रहेगी ही।

जमाने की कीमिया

हम तो कहना चाहते हैं कि हमारे जमाने का छोटा सत्याग्रही भी गांधीजी से बड़ा है। याने जमाने ने उसको बड़ा बना दिया है, ऊँचा खड़ा कर दिया है। आज आजादी, मत-प्रचार की सहूलियत आदि जो पृष्ठभूमि बनी है, वह गांधीजी के जमाने में बिलकुल ही नहीं थी। इसलिए यद्यपि गांधीजी सर्वोत्तम सत्याग्रही थे, तो भी उनके सत्याग्रह को ऐसी उपाधि का ग्रहण लगा, ग्रास हुआ कि उसके कारण अत्यन्त प्रखर तेज भी फीका दीखने लगा। इसलिए हम छोटे हैं, यह कहकर अपना बचाव नहीं कर सकते। आप छोटे हैं, परन्तु आपकी विरासत बहुत बड़ी है। इस दृष्टि से आपकी जिम्मेवारी भी बढ़ जाती है।

सत्याग्रह के संशोधन की दृष्टि से सोचते हुए हम यह नहीं कह सकते

उस 'पूना पैक्ट' को, मन से पसंद न करते हुए भी, मान्यता दी—ऐसा बाद में जो घटना हुई, उस पर से कहना पड़ता है। क्योंकि उसके बाद वे दुःखी हुए और उन्हें लगा कि इससे बंगाल का नुकसान हुआ। उस घटना की तफसील में मैं नहीं जाना चाहता और वास्तव में नुकसान हुआ या नहीं, इसकी भी चर्चा नहीं करना चाहता। परन्तु उस उपवास का परिणाम दबाव के रूप में रवीन्द्र ठाकुर जैसे महान् व्यक्ति के चित्त पर भी हुआ। अतः समझना चहिए कि उस सत्याग्रह में न्यूनता रह गयी। आप कहेंगे कि "यह शख्स बता रहा है कि बापू के सत्याग्रह में जब न्यूनता रह गयी और हमसे आशा करता है परिपूर्णता की—यह तो अजीब बात है। याने इधर अपूर्णता की मिसाल देते हुए इसने गांधीजी की अपूर्णता बतायी और उधर हम जैसे सामान्य मानवों से अपेक्षा रखता है कि तुम्हारे सब सत्याग्रहों में अपूर्णता नहीं आनी चाहिए।" हमारे कुछ मित्र हमसे कहते हैं कि "क्या कहते हो ? बापू के सत्याग्रह में भी न्यूनता का कुछ अंश रह गया ? फिर भी हमसे पूर्णता की अपेक्षा कैसे करते हो ? ऐसा पूर्ण सत्याग्रह तो हो ही नहीं सकेगा। यह तुम्हारी चर्चा हमारे लिए बिलकुल बेकार है। आपकी ऐसी अपेक्षा कभी सफल नहीं हो सकती। आप हमारे सत्याग्रह को चाहे 'निगेटिव' (नकारात्मक) कहिये, चाहे 'पैसिव रेजिस्टेन्स'; चाहे एक प्रकार का दबाव कहिये, चाहे अपूर्ण कहिये; परंतु हमारी जो योग्यता है, उसे देखते हुए हमारा सत्याग्रह उचित ही है—ऐसा आपके शब्दों से हम समझ लेते हैं। आप जो कहते हैं, उससे हमारा पूरा बचाव हो जाता है।" लेकिन अब जमाना बदल गया है। जब घनघोर निशा टूटने का आरंभ होता है, तो सूर्य भी सौम्य होता है; याने उसका रूप भी प्रखर नहीं होता, उसका तेज कम होता है, वह चंद्रवत् फीका दीखता है। यहाँ पर 'सौम्य' शब्द का मैं दूसरे अर्थ में प्रयोग कर रहा हूँ। लेकिन जमाना जरा बदल जाय, तो वही सूर्य प्रखर रूप में दिखाई देता है।

में है, उसीको सत्याग्रह कहा जाता है। वही सत्याग्रह डेमॉक्रेसी में चलेगा। सत्याग्रह का जो पुराना रूप था, उसके लिए डेमॉक्रेसी में गुंजाइश नहीं है। परिस्थिति के कारण इतना फर्क हुआ है।

गांधीजी ने राजनीति चलायी, ऐसा जो लोग समझते हैं, उन्होंने गांधीजी को समझा ही नहीं है। गांधीजी ने जितना और जो कुछ किया, वह कुल-की-कुल सौ फी सदी लोकनीति थी, ऐसा हम मानते हैं। कइयों को भास होता है कि गांधीजी की पकड़ राजनीति पर थी। परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी है कि उनकी पकड़ लोकनीति पर थी। उनके यच्चयावत्, कुल-के-कुल काम (राउण्ड टेबुल कान्फरेन्स में जाकर हिस्सा लेने के काम से लेकर सत्याग्रह चलाने तक के और राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने जो काम किये, वे सब काम) लोकनीति की स्थापना के लिए और लोकनीति को समझकर ही किये गये थे। इधर स्वराज्य मिल गया और उधर उनकी नोआखाली में यात्रा चली। एक ही दिन हमने ये दो दृश्य देखे! स्वराज्य तो मिला ही था। उसे न लेने की बात तो थी नहीं। सत्ता की आसक्ति से गलतियाँ होंगी, पर 'पॉवर करप्ट्स' कहकर उसे न लेने की बात तो नहीं थी। उसे लेना ही था।

परन्तु बापू स्वयं नोआखाली में थे। उन्होंने अपना स्थान चुन लिया था। इसमें रहस्य है। उनके कुल जीवन का वह परिपाक है। उनका जीवन स्वाभाविक उसी तरफ जा रहा था, दिल्ली की तरफ नहीं जा रहा था। दिल्ली में जो चीज बनी, वह उनके कारखाने का एक 'बाय प्राडक्ट' (एक दीगर चीज) था। उनके कार्य का जो मुख्य स्वरूप था, उसका दिग्दर्शन नोआखाली में हुआ। यथाक्रम वे वहाँ पहुँच गये। उस गुलामी के जमाने में, दुःखी जनता को गुलामी से छुड़ाने के लिए उन्होंने जो काम किया, उससे आभास होता था कि वह सत्ता-प्राप्ति का कार्य था। परन्तु वह कार्य सत्ता-प्राप्ति का नहीं था, सत्य-शोधन का था, लोकनीति की स्थापना का था। ऐसा अगर नहीं होता, तो वे कांग्रेस को लोक-सेवक-संघ बनाने की सलाह न देते।

कि हमारी उपाधि, हमारी दुर्बलता के परिमाण में हमारा सत्याग्रह ठीक है। आप यदि अपने को दुर्बल महसूस करते हैं, तो सत्याग्रह का आपको अधिकार नहीं है, ऐसा समझ लीजिये और शान्त हो जाइये। अगर सत्याग्रह का अधिकार चाहते हैं, तो आज की परिस्थिति में जो 'सत्याग्रह' पर जिम्मेवारी आयी है—सत्याग्रही पर तो आती ही है, लेकिन स्वयं सत्याग्रह पर जो जिम्मेवारी आयी है कि वह अपने नाम के उच्चारण से लोगों में भय न निर्माण करे—उसे सँभालना होगा। अगर मैं कहूँ कि "कल से मैं सत्याग्रह करूँगा", तो इतना कहने मात्र से ही लोगों के मन में मेरे लिए जो सहानुभूति थी, वह हजारगुनी बढ़नी चाहिए और जो विरोध था, वह कम होना चाहिए। ऐसा नतीजा 'सत्याग्रह' शब्द के श्रवणमात्र से होना चाहिए, फिर आगे उसकी कृति से और भी परिणाम आयेंगे ही। 'सत्याग्रह' शब्द के श्रवणमात्र से ऐसा लगना चाहिए कि यह बड़ा ही सुन्दर काम हो रहा है। जैसे किसीने किसीसे प्रेम किया या करुणा दिखायी, तो करुणा, प्रेम और दया का कार्य हुआ, ऐसा हम सुनते हैं। सुनने के प्रथम क्षण ही श्रवणों में अमृत का स्पर्श हुआ, ऐसा मालूम होता है। यह दया का कार्य, करुणा का कार्य, वात्सल्य का कार्य हुआ, ऐसा आनन्द चित्त को पहले होता है। फिर उसकी योग्यता कितनी थी, आदि बातों का मूल्यांकन तो पीछे होता है। लेकिन सुनते ही श्रवण को अमृत रसास्वादन होना चाहिए। जैसे खून हुआ, यह सुनकर किसीके भी कानों को अच्छा नहीं लगता, सुनते ही अरुचि पैदा होती है, फिर चाहे बाद में उस पर सोचा जाता हो कि उसका बचाव हो सकता है या नहीं, उसके पीछे क्या हेतु होगा, आदि। कुछ लोग बचाव करते हैं, कुछ नहीं करते, इस तरह मतभेद बाद में आता है। परन्तु प्रथम श्रवण में सबका मतैक्य है कि गलत बात हुई, वैसे ही जब प्रेम-कार्य होता है, तो प्रथम श्रवण में सबको लगता है कि उत्तम कार्य हुआ। इसी तरह 'सत्याग्रह' शब्द के प्रथम श्रवण से सारी दुनिया के मन पर अच्छा असर होना चाहिए। यह शक्ति जिस सत्याग्रह

अपने यहाँ सालभर के लिए नौकर रखता है। साल के आखिर में अगर उसने अच्छा काम किया हो, तो वह उसे फिर से रखता है; नहीं तो उसे हटाकर दूसरा नौकर रखता है। इसी तरह आपने पाँच साल के लिए नौकरों को चुना है। अगर आपको उनका काम अच्छा लगा, तो आप उन्हें दुबारा चुनेंगे, नहीं तो दूसरों को चुनेंगे।

स्वराज्य किसीके देने से नहीं मिलता

मतलब यह है कि यहाँ आप जो बैठे हैं, सब-के-सब बादशाह हैं, स्वामी हैं। लेकिन आपमें से हर व्यक्ति अलग-अलग स्वामी नहीं, सब मिलकर स्वामी हैं। इस तरह आप स्वामी तो बन गये, फिर भी अपने पास सत्ता है, इसका हमें भान नहीं है। क्योंकि एक नाटक-सा हुआ, आपकी राय पूछी गयी और आपने राय दे दी। मान लीजिये, किसी घर में चार-पाँच साल के मूर्ख और बेवकूफ लड़के हैं। अगर उनसे पूछा जाय कि घर का कारोबार कैसे चलाना चाहिए—उनसे वोट माँगे जायँ, तो क्या वे वोट देंगे? वे तो यही कहेंगे कि आप यह क्या नाटक कर रहे हैं? आप हमारे माँ-बाप हैं, आप ही हमारी चिन्ता कीजिये। वैसे ही लोगों ने कांग्रेसवालों से कहा कि आप बड़े हैं, आपने हमारी सेवा की है, आप हमारे माँ-बाप हैं, आप ही राज्य चलाइये। उधर तो वे कहते हैं कि हम आपके नौकर होना चाहते हैं, अगर आप हमें नौकरी पर रखेंगे, तो हम नौकरी करना चाहते हैं और इधर ये लोग कहते हैं कि आप ही हमारे माँ-बाप हैं, इसलिए आप ही हमारी चिन्ता कीजिये!

वास्तव में सत्ता किसीके देने से नहीं मिलती। सत्ता या अधिकार तो अन्दर से प्राप्त होना चाहिए। वैसे हिन्दुस्तान के लोग मूर्ख नहीं, काफी अच्छे और समझदार हैं। अभी जो चुनाव हुआ, वह भी कितने सुन्दर ढंग से हुआ! लोगों को लगता था कि यहाँ न मालूम क्या-क्या होगा, कितनी लड़ाइयाँ होंगी! लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बाहर के देशों के लोगों को आश्चर्य लगा कि हिन्दुस्तान के लोग अपढ़ होने पर भी

थोड़ी-सी राजनीति जाननेवाला एक सामान्य मनुष्य भी जानता है कि वह अजीब सलाह थी। कोई भी समझ सकता था कि लोक-सेवक-संघ बनने से सारी शक्तियाँ तितर-बितर होंगी। क्या बनेगा, कुछ कह नहीं सकते थे। प्रतिगामी शक्तियाँ जोर कर सकती हैं, दिल्ली पर किसका कब्जा रहेगा, पता नहीं। इसलिए एक साधारण मनुष्य भी जो चीज समझ सकता था, उतनी भी समझ क्या गांधीजी में नहीं थी?

समझने की बात है कि उनका सोचने का ढंग, जीवन का ढंग बिलकुल दूसरा ही था और वह था लोकनीति का।

(लोकसेवक-शिविर, सर्वोदयनगर, कालड़ी,
ता० १२-५-'५७ के भाषण का अंतिम अंश)

गाँव-गाँव में स्वराज्य : २३ :

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद गाँव के लोगों की हालत सुधरेगी, ऐसी आशा लोगों ने रखी थी, जो गलत न थी। अगर स्वराज्य में जनता की हालत न सुधरे, तो उस स्वराज्य की कीमत ही क्या? लेकिन वे यह समझे नहीं कि स्वराज्य के बाद हमारी हालत सुधारना हमारे ही हाथ में है। वे समझते हैं कि जैसे पहले मुसलमानों का या अंग्रेजों का राज्य था, वैसे अब कांग्रेस का राज्य आ गया है। लेकिन मुसलमानों के और अंग्रेजों या और भी किसी राजा के राज्य में आपके वोट किसीने माँगे नहीं थे। आज यहाँ जो राज्य चलाते हैं, वे लोगों के चुने हुए नौकर हैं। आप सब लोगों को सत्ता दी गयी है कि आप अपना राज्य जैसा चलाना चाहें, वैसा चलाइये और अपना राज्य चलाने के लिए कौन-से नौकर रखने हैं, यह भी आप ही तय कीजिये। इस तरह आपसे वोट माँगा गया, आपने वोट दिया और पाँच साल के लिए अपने नौकर कायम किये। किसान

खाने की चीजें कम हों, तो पहले बच्चे को खिलाना और बाद में कुछ न बचे, तो खुद फाका करना, नम्बर चार का अधिकार है। आज का हमारा राज्य 'मातृ-राज्य' है न ? फिर हमें गाँव-गाँव में उसके नमूने दिखाने चाहिए।

गाँव-गाँव में जो बुद्धिमान्, सम्पत्तिमान् और समझदार होंगे, वे गाँव के माता-पिता बन जायँ और गाँव की सेवा कर गाँव का राज्य चलायें। बुद्धिमान् पिता अपने लड़कों के लिए यही इच्छा करते हैं कि वे हमसे ज्यादा बुद्धिमान् बनें। पिता को तो तब खुशी होती है, जब उसका लड़का उससे आगे बढ़ जाता है। इसी तरह गुरु को तब खुशी होती है, जब उसका शिष्य दुनिया में उसका विस्मरण करा देता है—लोग गुरु का नाम भूल जाते और शिष्य को ही याद करते हैं। उसे लगता है कि मैंने अपने शिष्य को ज्ञान दिया और फिर भी मेरा नाम दुनिया में कायम रहा, तो मैंने ज्ञान ही क्या दिया ? मेरा नाम मिटकर शिष्य का नाम चले, तभी मैं सच्चा गुरु होऊँगा। इसलिए गाँव में जो बुद्धिमान् लोग होंगे, वे इस तरह से काम करेंगे कि सब लोग उनसे ज्यादा बुद्धिमान् बनें। तो फिर ग्रामराज्य का रामराज्य बनेगा।

ग्रामराज्य और रामराज्य

स्वराज्य के माने हैं, सारे देश का राज्य। जब दूसरे देश की सत्ता अपने देश पर नहीं रहती, तो स्वराज्य हो जाता है। लेकिन जब हरएक गाँव में स्वराज्य हो जाता है, तब उसे 'ग्रामराज्य' कहा जाता है। गाँव के सब लोग बुद्धिमान् बन जायँ और किसी पर सत्ता चलाने की जरूरत ही न रह जाय, इसका नाम है 'रामराज्य'। जब गाँव के झगड़े शहर के अदालत में जाते हैं और शहर के लोग उनका फैसला करते हैं, तो उसका नाम है 'गुलामी', 'दास्य' या 'पारतन्त्र्य'। गाँव के झगड़े गाँव में ही मिटाये जायँ, तो उसका नाम है स्वातन्त्र्य या स्वराज्य और गाँव में झगड़े ही न हों, तो उसका नाम है रामराज्य। हमें पहले ग्राम-

यहाँ इतने अच्छे ढंग से चुनाव कैसे हो सका। इसका कारण यही है कि हिन्दुस्तान के लोग दस हजार साल के अनुभवी हैं। ये अपढ़ जरूर हैं, लेकिन अनुभवी हैं, इसलिए ज्ञानी हैं।

हिन्दुस्तान के लोग यद्यपि समझदार हैं, फिर भी वर्षों से उन्हें गुलामी की आदत पड़ गयी है। वे सोचते हैं कि सरकार माँ-बाप की तरह हमारी चिन्ता करेगी। इसलिए अब, जब कि उनके हाथ में सत्ता आयी है, उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि वास्तव में हमारे हाथ में सत्ता आयी है। क्या माता को माता का अधिकार कोई देता है? माता तो अपने में मातृत्व का स्वयं अनुभव करती है। क्या शेर को किसीने जंगल का राजा बनाया है? वह तो खुद अपना अधिकार महसूस करता है। इसी तरह स्वराज्य-शक्ति का लोगों को अन्दर से भान होना चाहिए। पूछा जा सकता है कि आखिर वह कैसे होगा? क्या गाँव-गाँव के लोग दिल्ली का राज्य चलायेंगे? नहीं, गाँव-गाँव के लोग तो गाँव-गाँव का ही राज्य चलायेंगे। इस तरह उन्हें राज्य चलाने का अनुभव हो जायगा।

गाँव-गाँव में 'मातृ-राज्य' दीख पड़े

इस जमाने में जो राज्य होता है, वह 'राज्य' नहीं, 'प्राज्य' होता है—लोगों का राज्य होता है। पहले के जमाने में जो लोगों को दबाता था, वही राजा होता था। कहा जाता है कि जंगल का राजा शेर होता है। इसके माने यह हैं कि जो जंगल के प्राणियों को खा जाता है, वह राजा होता है। संस्कृत में जानवरों के राजा को याने सिंह या शेर को 'मृगराज' कहते हैं। उस राजा के दर्शन होते ही सारे मृग थर-थर काँपते हैं। इस प्रकार की राज्य-सत्ता अब न चलेगी। अब तो राज्य-सत्ता सेवा की सत्ता होगी। माता को घर में क्या अधिकार होता है? बच्चे को भूख लगी है, तो उसे दूध पिलाना माता का पहला अधिकार है। बच्चे को सुलाकर फिर सोना, उसका नम्बर दो का अधिकार है। बच्चा बीमार पड़ा, तो रात को जागना, नम्बर तीन का अधिकार है। घर में

जैसे शहर में रहते। लेकिन जब जन्म से लेकर मरण तक का सारा व्यवहार गाँव में ही चलता है, तो पूरी विद्या गाँव में क्यों नहीं चलनी चाहिए ?" ये लोग ऐसे दरिद्री हैं कि एक-एक प्रांत में एक-एक युनिवर्सिटी स्थापन करने की योजना करते हैं। लेकिन मेरी योजना में हर गाँव में युनिवर्सिटी होगी। सोचने की बात है कि क्या गाँव को टुकड़ा रखेंगे ? चार साल तक की शिक्षा याने एक टुकड़ा गाँव में रहेगा। फिर गाँववाले आगे की शिक्षा प्राप्त करना चाहें, तो उन्हें गाँव छोड़कर जाना पड़ेगा। इसके कोई मानी नहीं हैं। मेरे ग्राम में मुझे पूरी तालीम मिलनी चाहिए। मेरा ग्राम टुकड़ा नहीं, पूर्ण है! 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्'—पूर्ण है यह और पूर्ण है वह ! ये लोग कहते हैं कि यह भी टुकड़ा है और वह भी टुकड़ा है और सब मिलकर पूर्ण है। किन्तु हमारी योजना में इस तरह टुकड़े-टुकड़े सीकर पूर्ण बनाने की बात नहीं है। हम चाहते हैं कि हर गाँव में राज्य के सब विभागों के साथ एक परिपूर्ण राज्य हो।

गाँव-गाँव राज्य-कार्य-धुरन्धर

इस तरह हर छोटे-छोटे गाँव में राज्य होगा, तो हर गाँव में राज्य-कार्य-धुरन्धरों का समूह होगा। गाँव-गाँव में अनुभवी लोग होंगे। दिल्लीवालों को राज्य चलाने में कभी मुश्किल मालूम हुई, तो वे सोचेंगे कि दो-चार गाँवों में चला जाय और वहाँ के लोग किस प्रकार राज्य चलाते हैं, यह देख आया जाय। क्योंकि राज्यशास्त्र-विद्या-पारंगत लोग गाँव-गाँव में रहते हैं। इसलिए गाँव-गाँव में विद्यापीठ होना चाहिए। आज तो लोग कहते हैं कि गाँव में राज्यशास्त्र का ज्ञाता कोई है ही नहीं। जिले में भी उसके ज्ञाता नहीं, सारे प्रदेश में दो-तीन ही होंगे। जब स्वराज्य चलाना चाहते हैं, तो राज्यशास्त्र के ज्ञाता इतने कम होने से कैसे काम चलेगा ? इसलिए गाँव-गाँव में ऐसे ज्ञाता होने चाहिए। आज हालत ऐसी है कि पंडित नेहरू ने एक दफा कहा था कि "हमें जरा प्रधानमंत्री-पद से छुट्टी दीजिये", तो सारे लोग घबड़ा गये और उनसे कहने लगे कि "आपके बिना हमारा कैसे चलेगा ?" यह कोई स्वराज्य नहीं ! असली

राज्य बनाना होगा और फिर रामराज्य। देश में स्वराज्य तो हो गया, अब हमें ग्रामराज्य बनाना है। इसीलिए भूदान-यज्ञ चल रहा है। हम गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझाते हैं कि तुम्हारे गाँव का भला किसमें है, इस पर तुम खुद सोचो। अपने गाँव को एक राष्ट्र समझो। आज आप आन्ध्र-राष्ट्र और भारत-माता की जय बोलते हैं, उसी तरह अपने गाँव की जय बोलनी चाहिए।

हरएक ग्राम की जय होती है, तो देश की जय होगी। जब हरएक अवयव काम करेगा, तभी सारा शरीर काम करेगा। आँख, कान, पाँव, हाथ, दाँत अच्छा काम करेंगे, तो सारा शरीर अच्छा काम करेगा। अगर इनमें से एक भी कम काम करे, तो देह का काम अच्छा नहीं चलेगा। इसी तरह सारे गाँव अपना काम अच्छी तरह से चलायेंगे, गाँव-गाँव में स्वराज्य बनेगा, तो देश का स्वराज्य भी अच्छा बनेगा। अतः हमें हरएक गाँव में राज्य चलाना होगा। एक देश में विचार के जितने विभाग और जितने काम होते हैं, उतने सारे गाँव में होंगे। वहाँ आरोग्य-विभाग होता है, तो गाँव में भी आरोग्य-विभाग चाहिए, वहाँ उद्योग-विभाग, कृषि-विभाग, तालीम-विभाग, न्याय-विचारणा-विभाग होते हैं, तो गाँव में भी उतने सारे विभाग होने चाहिए। वहाँ पर परराष्ट्र के साथ सम्बन्ध आता है, तो ग्राम में भी परग्राम के साथ सम्बन्ध आयेगा।

ग्रामे-ग्रामे विश्वविद्यापीठम्

ग्राम-ग्राम में विद्यापीठ होना चाहिए : 'ग्रामे-ग्रामे विश्वविद्यापीठम्।' यह है सच्चा ग्रामराज्य! किसीने हमसे कहा कि "प्राथमिक शाला हर गाँव में होनी चाहिए, हाईस्कूल बड़े गाँव में होने चाहिए और विशाखपत्तनम् जैसे शहर में कॉलेज होना चाहिए", तो मैंने उनसे कहा : "अगर ईश्वर की ऐसी योजना होती, तो गाँव में दस साल की उम्र तक के ही लोग रहते। फिर उसके बाद पन्द्रह-बीस साल तक की उम्र तक के लोग बड़े गाँव में रहते और उस उम्र से अधिक उम्रवाले लोग विशाखपत्तनम्

गाँव के सभी लोग राज्यशास्त्र के ज्ञाता हो जायँगे और कभी झगड़ा करेंगे ही नहीं, तो उस हालत में शासन-मुक्ति हो जायगी और रामराज्य आयेगा।

ग्राम-संकल्प

यह सब हमें करना है। इसीलिए भूदान-यज्ञ शुरू हुआ है। हम गाँववालों से कहते हैं कि अपने गाँव की हालत सुधारने के लिए तुम लोगों को कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिए। आपके गाँव में भूमिहीन हों, तो उन्हें अपने ही गाँव की जमीन का एक हिस्सा देना चाहिए। फिर गाँव-गाँव में उद्योग खड़े करने चाहिए। आपको निश्चय करना होगा कि हम बाहर का कपड़ा नहीं खरीदेंगे, अपने गाँव में कात-बुनकर ही पहनेंगे। मैं मानता हूँ कि जो बाहर का कपड़ा पहने हैं, वे नंगे हैं। अभी मेरे सामने जो लोग बैठे हैं, वे सारे बाहर का कपड़ा पहने हैं। इसलिए यह निर्लज्ज और नंगों की सभा है। अगर इन लोगों को बाहर से कपड़ा न मिले, तो ये फटे कपड़े या लँगोटी ही पहनेंगे और आखिर में नंगे रहेंगे। क्योंकि उनके पास कपड़ा बनाने की विद्या नहीं है।

गाँव-गाँव में आयोजन

यह सब काम सरकार के कानून से नहीं होगा। कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि भूदान का काम बाबा को क्यों करना पड़ता है, सरकार अपनी जमीन क्यों नहीं बाँटती? किन्तु सरकार जमीन बाँटेगी, तो 'ग्रामराज्य' नहीं, 'दिल्ली-राज्य' होगा। अब 'लंदन-राज्य' के बदले 'दिल्ली-राज्य' आया है, लेकिन हम चाहते हैं कि 'दिल्ली-राज्य' के बदले 'गाँव का राज्य' आये। जिस तरह अपनी भूख मिटाने के लिए हमें ही खाना पड़ता है, दूसरा कोई हमारे लिए खा नहीं सकता, इसी तरह हमारे ग्रामराज्य के लिए हमें ही भूदान करना पड़ेगा, दूसरे न कर सकेंगे। फिर आज जैसे लोग दिल्ली में बैठे-बैठे सोचते हैं कि अपने देश में बाहर से कौन-कौन चीजें आनी चाहिए और देश की कौन-कौन-सी चीजें बाहर जानी चाहिए, उसी तरह गाँव-गाँव के लोग सोचेंगे कि अपने गाँव में

स्वराज्य तो वह है, जब पंडित नेहरू मुक्त होने की इच्छा प्रकट करें, तो लोग उनसे कहें कि "जी, जरूर मुक्त हो जाइये। आपने आज तक बड़ी सेवा की है, आपको मुक्त होने का हक है।"

अक्ल का बँटवारा

इस तरह हमें, जो राजसत्ता दिल्ली में इकट्ठी हुई है, उसे गाँव-गाँव बाँटना है। हम तो परमेश्वर के भक्त हैं, इसलिए हम ईश्वर का ही उदाहरण सामने रखें। ईश्वर ने अगर अपनी सारी अक्ल वैकुंठ में रखी होती और किसी प्राणी को वह दी ही न होती, तो दुनिया कैसे चलती ? फिर तो किसी मनुष्य को अक्ल की जरूरत पड़ने पर वैकुंठ में टेलीग्राम भेजकर थोड़ी-सी अक्ल मँगवानी पड़ती। आज आपके मंत्रियों को विमान से दौड़ना पड़ता है, तो भगवान् को कितना दौड़ना पड़ता ? लेकिन भगवान् ने ऐसी सुंदर योजना की है कि सबको अक्ल बाँट दी है। मनुष्य, घोड़ा, गधा, साँप-बिच्छू, कीड़े-मकोड़े, सबको अक्ल दी है। किसी एक जगह पर बुद्धि का भंडार नहीं रखा। इसीलिए कहा जाता है कि भगवान् निश्चिंत होकर क्षीरसागर में निद्रा लेते हैं। क्या हमारे मंत्री इस तरह निद्रा ले सकते हैं ? लेकिन भगवान् इस तरह निद्रा लेते हैं कि इसका पता भी नहीं चलता है कि वे वहाँ हैं। असली स्वराज्य तो वह होगा, जब दिल्ली के लोग सोते रहेंगे। दिल्ली के क्षीरसागर में हमारे प्रधानमंत्री सोते हुए सुनाई पड़ेंगे। लेकिन आज तो हम यह सुनते हैं कि हमारे प्रधानमंत्री अठारह घंटे तक जागते हैं। क्या यह भी कोई स्वराज्य है ?

शासन-विभाजन

पहले लंदन में सत्ता थी, तो वहाँ से पार्सल होकर दिल्ली आयी है। यह तो बड़ी कृपा हुई। लेकिन वह पार्सल दिल्ली में ही अटक गया है, उसे अब गाँव-गाँव पहुँचाना है। हमें लोगों को स्वराज्य की शिक्षा देनी है, तो यह सारा करना होगा। इसीका नाम है, शासन-विभाजन। शासन का आज जो केंद्रीकरण हुआ है, इसके बदले हमें शासन का विभाजन करना होगा और हर गाँव में शासन या सत्ता बाँटनी होगी। फिर जब

'रामराज्य' या 'अराज्य' नाम स्वेच्छाधीन

आज मैंने सूत्र-रूप में विचार रखा है। पहली बात है केन्द्रीय स्वराज्य, दूसरी बात है विभाजित स्वराज्य और तीसरी बात है राज्य-मुक्ति अथवा रामराज्य। अब उसे 'रामराज्य' कहना है या 'अराज्य' —यह हरएक की अपनी-अपनी मर्जी की बात है। ईश्वर नहीं है, यह भी कह सकते हैं और ईश्वर क्षीरसागर में सोया है, यह भी कह सकते हैं। लेकिन ईश्वर पसीना-पसीना होकर काम कर रहा है, यह नहीं कह सकते। या तो ईश्वर नहीं है या वह अकर्ता होकर बैठा है, इन्हींमें से एक बात हो सकती है। ईश्वर कर्ता है और सब दूर अपनी सत्ता चलाता है, यह बात न होनी चाहिए। यही तत्त्वज्ञान, यही ब्रह्मविद्या हमें अपने देश में लानी है।

समर्थों का परस्परावलम्बन ही ग्राह्य

हम चाहते हैं कि आप सब लोग उत्साह से भाई-भाई बनकर काम में लग जाइये। कुछ लोग पूछते हैं कि विनोबाजी की योजना परस्परावलम्बन की नहीं, स्वावलम्बन की है। इतना तो वे कबूल करते हैं कि विनोबा की योजना परावलम्बन की नहीं है। परन्तु वे कहते हैं कि 'परस्परावलम्बन' चाहिए। वैसे हम भी परस्परावलम्बन चाहते हैं। आज बाबा ने दूध पीया, तो क्या बाबा ने खुद गाय का दूध दुहा था? लोगों ने बाबा के लिए सारा इन्तजाम किया था। इस तरह बाबा से जो सेवा बनती है, वह करता जाता है और लोग उसके लिए इन्तजाम करते हैं। किन्तु परस्परावलम्बन दो प्रकार का होता है, एक असमर्थों का और दूसरा समर्थों का। पहला अन्धे और लँगड़े का परस्परावलम्बन है। अन्धा देख नहीं सकता, पर चल सकता है और लँगड़ा देख सकता है, पर चल नहीं सकता; इसलिए दोनों परस्परावलम्बन या सहयोग करते हैं। लँगड़ा अन्धे के कन्धे पर बैठता है। लँगड़ा देखने का काम करता है और अन्धा चलने का। इस तरह क्या आप समाज के कुछ लोगों को अन्धा और कुछ को लँगड़ा रखकर दोनों का परस्परावलम्बन चाहते हैं? बाबा

कौन-सी चीजें बाहर से आयें और गाँव की कौन-सी चीजें बाहर जायँ। आज तो चाहे जो अपनी मर्जी के अनुसार बाहर की चीजें खरीदता जाता है। लेकिन इसके आगे यह न चलेगा। सारे गाँववाले मिलकर चर्चा करेंगे और निर्णय करेंगे। अगर किसीको गुड़ की जरूरत हुई, तो गाँव-वाले उस बारे में सोचेंगे और तय करेंगे कि इस साल गाँव में गुड़ नहीं बन सकता, इसलिए एक साल के वास्ते बाहर से गुड़ खरीदा जाय। लेकिन गाँव के लोग वह गुड़ भी बाजार में जाकर न खरीदेंगे, गाँव की दूकान से ही एक साल के लिए खरीदेंगे और फिर गाँव में गन्ना बोकर अगले साल के लिए पैदा करेंगे। गाँव की दूकान में वही गुड़ रखा जायगा और वही खरीदा जायगा।

दिमाग अनेक, पर हृदय एक

इस तरह सारा गाँव एक हृदय से सोचेगा। जहाँ गाँव में पाँच सौ लोग रहेंगे, वहाँ एक हजार हाथ होंगे, एक हजार पाँव होंगे, पाँच सौ दिमाग होंगे; लेकिन दिल एक होगा। गीता के एकादश अध्याय में विश्व-रूप-दर्शन की बात है। विश्व-रूप-दर्शन में हजारों हाथ हैं, हजारों पाँव हैं, कान हैं, आँखें हैं, लेकिन उसमें आपको यह नहीं मिलेगा कि हृदय हजारों हैं। विश्व-रूप का हृदय एक ही होगा। इसी तरह गाँव का हृदय एक होगा। पाँच सौ दिमाग होंगे। वे चर्चा करके बात तय करेंगे। यह हमारी सर्वोदय की योजना है।

त्रैराशिक की गुंजाइश नहीं

हम जानते हैं कि यह सब करने में कुछ समय लगेगा। लेकिन ज्यादा समय नहीं लगेगा। एक गाँव में एक साल का समय लगा, तो हिन्दुस्तान के पाँच लाख गाँवों में कितना समय लगेगा, इस तरह का त्रैराशिक नहीं किया जा सकता। एक गाँव के आम पकने शुरू होते हैं, तो सारे हिन्दुस्तान के पाँच लाख गाँवों के आम पकने लग जाते हैं। इसलिए आपके गाँव में ग्रामराज्य बनने में जितना समय लगेगा, उतने समय में कुल हिन्दुस्तान के पाँच लाख गाँवों में राम-राज्य बन जायगा।

ग्राम-स्वराज्य की स्थापना

आज सारी दुनिया में क्या हो रहा है ? भिन्न-भिन्न देशों में चन्द लोगों की हुकूमत चलती है, पर नाम तो है लोकशाही का ! यह नाम-मात्र की, प्रातिनिधिक लोकशाही है। प्रजा स्वयं राज्य नहीं चलाती है, प्रतिनिधि के जरिये राज्य चलाती है। जिनके हाथों में आपने सत्ता सौंप दी है, वे पाँच साल तक के राजा से भी ज्यादा ताकत रखते हैं और वे ऐसे काम कर बैठते हैं कि दूसरी आनेवाली सरकार उन कामों को नहीं मिटा सकती। मान लीजिये, हमारी एक सरकार है और उसने व्यापारी-करार किये हैं और पाँच साल के बाद राज्य बदल जाता है, फिर भी वह पुराना व्यापारी-करार बदलना संभव नहीं होता ! इस तरह से पुरानी सरकार के बहुत काम नयी सरकार को जबरन् करने पड़ते हैं। विज्ञान के जमाने में पाँच साल में वे बहुत कुछ कर सकते हैं। उस हालत में उनके हाथ में जो सत्ता आती है, वह बड़ी ही भयानक होती है।

मान लीजिये, पंडित नेहरू जाहिर करते हैं कि "भारत के लिए खतरा है, तो सबको सेना में भरती होने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस वास्ते और-और योजनाएँ हम बन्द करेंगे। खादी आदि को हमने पैसा दे दिया है, लेकिन अब देश पर बड़ा खतरा आया है, इस वास्ते अब इतना बड़ा खर्च नहीं कर सकते ! अब हमें सेना पर सारा पैसा खर्च करना पड़ेगा।" ऐसा कहने पर भला पार्लमेंट में विरोधी दल कुछ बोलेगा ? वह भी वही बोलेगा, जो कांग्रेसवाले बोलेंगे। और बातों में विरोध करेंगे, लेकिन इस बारे में एक भी शख्स यह नहीं कहेगा कि सेना का खर्च कुछ कम करो ! यह स्वातन्त्र्य नहीं है।

पक्षभेद का विष

सच पूछो तो आज दुनिया में किसीको सच्ची आजादी नहीं है। जब तक यह प्रातिनिधिक लोकशाही चलेगी और जब तक गाँव का कारोबार

भी परस्परावलम्बन चाहता है। किन्तु वह चाहता है कि दोनों आँखवाले हों, दोनों पाँववाले हों और फिर हाथ में हाथ मिलाकर दोनों साथ-साथ चलें। बाबा समर्थों का परस्परावलम्बन चाहता है। और ये लोग व्यंग्य-युक्त या अक्षम लोगों का परस्परावलम्बन चाहते हैं।

गाँव का कच्चा माल गाँव में ही पक्का बने

हम जानते हैं कि सारी-की-सारी चीजें एक गाँव में नहीं बन सकतीं। एक गाँव को दूसरे गाँव के साथ और गाँव को शहरों के साथ सहयोग करना पड़ता है। लेकिन हम यह नहीं चाहते कि गाँवों में शहरों से चावल कुटवाकर, आटा पिसवाकर और चीनी बनवाकर लायी जाय। हम चाहते हैं कि ये चीजें गाँव में ही बनें। लेकिन गाँवों में चश्मा, थर्मामीटर, लाउडस्पीकर जैसी चीजों की जरूरत पड़े, तो वे शहर से लायी जायँ। आज यह होता है कि शहरवाले गाँववालों के उद्योग खुद करते हैं। गाँव के कच्चे माल का पक्का माल गाँव में ही बन सकता है। लेकिन आज शहरों में यन्त्रों के द्वारा वह बनाया जाता है। और उधर परदेश का जो माल शहरों में आता है, उसे रोकते नहीं। हम चाहते हैं कि गाँव के उद्योग गाँव में चलें और परदेश से जो माल आता है, उसे रोकने के लिए वह माल शहरों में बने। अगर गाँव के उद्योग खतम होंगे, तो न सिर्फ गाँवों पर, बल्कि शहरों पर भी संकट आयेगा। फिर गाँव के बेकार लोगों का शहरों पर हमला होगा और ऊपर से परदेशी माल का हमला तो होता ही रहेगा। इस तरह दोनों हमलों के बीच शहरवाले पिस जायेंगे। इसलिए हमारी योजना में गाँव और शहरों के बीच इस तरह का सहयोग होगा कि गाँववाले अपने उद्योग गाँव में चलायेंगे और शहरवाले परदेश से आनेवाली चीजें शहर में बनायेंगे। इस तरह प्रत्येक गाँव पूर्ण होगा और पूर्णों का सहयोग होगा।

कोटिपाम (आन्ध्र)

९-८-'५५

"केन्द्रीय सरकार, प्रांतीय सरकार, राष्ट्रीय विकास-खंड, सामुदायिक विकास-खंड, प्लानिंग कमीशन आदि पर भरोसा रखना गाँव के लिए खतरनाक है। गाँववालों को अपने पाँवों पर खड़ा रहना चाहिए।" अब इससे ज्यादा कोई क्या कह सकता है ? और, आप तो ऐसे श्रद्धावान् भक्त हैं कि व्याख्यान पढ़ते भी नहीं। अच्छे-से-अच्छे नेता का व्याख्यान गाँव-वालों तक तो पहुँचता ही नहीं और उन पर पूर्ण विश्वास रखकर हम चुपचाप बैठ जाते हैं। बस, प्रतिनिधियों को भेज दिया है, वे सारा करेंगे ! यह कैसा स्वराज्य है ? जहाँ लोग अपनी जिम्मेवारी महसूस नहीं करते, वहाँ पर क्या स्वराज्य होगा ? आप परमेश्वर पर विश्वास रखकर हाथ पर हाथ धरकर बैठते नहीं, खेती में काम करते हैं, तभी तो फसल आती है। याने जितना भरोसा आप ईश्वर पर नहीं रखते, उससे ज्यादा सरकार पर रखते हैं; क्योंकि आप जानते हैं कि ईश्वर का नियम क्या है, जैसे को तैसा। अगर आप आलसी रहे, तो क्या ईश्वर आपको फसल दे देगा ? 'श्रान्तस्य सख्याय देवः'—बिना थके हुए देव किसीकी मदद नहीं करता। जब परमेश्वर भी आपसे काम की अपेक्षा करता है, तो क्या सरकार नहीं करती होगी ?

लोकशाही का तमाशा

परन्तु इसमें आपका भी दोष नहीं है। यह लोकशाही बनी ही इस तरह से है। एक उम्मीदवार लोगों से कहता है कि "तुम हमें चुनो, तो हम तुम्हें स्वर्ग में ले जायेंगे !" दूसरा कहता है कि "तुम हमें चुनो। यदि उसे चुनोगे, तो वह तुम्हें नरक में ले जायगा। हम तुम्हें स्वर्ग दिखायेंगे !" कोई यह नहीं कहता कि "तुम्हारा नसीब तुम्हारे हाथ में है।" इस प्रकार से जब तक कार्य जारी रहेगा, तब तक दुनिया में समाधान, शांति, स्वराज्य नहीं रहेगा।

कल हमने अंबर चरखा देखा। सौ-डेढ़ सौ बहनें सूत कात रही थीं। उन्हें रोज एक-एक रुपया मिल रहा था। लोग खादी का कपड़ा तो पहनते नहीं, यह सब सरकार के भरोसे चल रहा है ! सरकार जब तक

हम अपने हाथ में नहीं ले लेंगे, तब तक सच्चा स्वातंत्र्य नहीं मिलेगा। यहाँ के गाँवों की योजना हम करेंगे, अपनी बुद्धि से करेंगे, अपनी शक्ति से करेंगे, क्या ऐसा कोई सोचता है? उसके लिए एकता चाहिए। लेकिन आज ठीक इससे उल्टी बात करते हैं! हम अपना कारोबार नहीं करेंगे, हमारे प्रतिनिधि करेंगे। हम प्रतिनिधियों को चुनेंगे, इसका मतलब क्या है? आपकी अनेक पार्टियाँ होंगी। दिल्लीवालों को सत्ता देने के लिए आप अपनी सत्ता को आपस-आपस में वैर करके काटेंगे। इतना ही नहीं कि आपने सिर्फ दिल्ली को अधिकार दिया और आप आलसी बनकर बैठे, बल्कि आपने पार्टी-विरोध खड़ा करके आपस-आपस में ही वैर खड़ा किया, ताकि यहाँ की ताकत बढ़ ही न सके। यह कांग्रेसवाला, यह पी० एस० पी० वाला, यह कम्युनिस्ट, यह जनसंघी, यह ब्राह्मण, यह ब्राह्मणेतर, यह हिन्दू, यह मुसलमान, यह वक्कालिका, यह लिंगायत, इस तरह के भेद बढ़ाकर वैर निर्माण किया। परिणामस्वरूप दिल्ली के स्वराज्य के लिए आपने अपने स्वराज्य को काटा। इसमें क्या तथ्य है, यह आप सोचिये। आप लोगों में एकता होती और आप आपसी होते, तो भी ठीक; आपका काम प्रतिनिधि करते, तो ठीक था। लेकिन आपस-आपस में वैर नहीं चाहिए था। सच्चा स्वराज्य तो तब होगा, जब गाँव-गाँव में स्वराज्य होगा। कम-से-कम इतना तो करो कि अपने गाँव की एकता में जरा भी बाधा न पड़े। चुनाव में किसीको वोट भले दे दो, पर यह तय कर लो कि हमारे लिए एक ही पक्ष है, और वह पक्ष है, ग्राम-पक्ष। ऐसा करेंगे, तभी गाँव की ताकत बढ़ेगी। दिल्ली के चुनाव के नाम से आप अपने गाँव में ही पक्ष बनायेंगे, तो आपकी सारी शक्ति क्षीण हो जायगी और आपकी शक्ति क्षीण हो गयी, तो दिल्लीवालों की भी शक्ति क्षीण हो जायगी। अगर हरएक गाँव अपने पाँवों पर खड़ा नहीं होता है, तो दिल्लीवाले क्या करेंगे?

गाँव पैरों पर खड़े हों

कुछ समय पहले पंडित नेहरू ने एक व्याख्यान में कहा था कि

स्वशासन की स्थापना : २५ :

[नवजीवन-मंडल प्रशिक्षण शिविरार्थियों के बीच दिया हुआ प्रवचन]

हमारी सेवा के बुनियाद में मुख्य वस्तु यह है कि आज दुनिया केन्द्रित शासन की पकड़ में जकड़ी हुई है। केन्द्रित शासन रखकर वह हिंसा से बचने के उपाय के बारे में सोच रही है; क्योंकि हिंसा से बुरे परिणाम अधिक और अच्छे परिणाम कम हो रहे हैं। जब विज्ञान बढ़ा नहीं था, तब हिंसा से यद्यपि हानियाँ होती थीं, तो भी कुछ तात्कालिक लाभ भी होते थे। लेकिन आज विज्ञान बढ़ा हुआ है, इसलिए हिंसा के शस्त्रास्त्र अत्याचारी हो गये हैं। वे मनुष्य के वश में नहीं रहे। इसीलिए दुनियाभर के राजनीतिज्ञ सोच रहे हैं कि कुछ ऐसी चीज निकलनी चाहिए, जिससे लड़ाइयाँ बंद हों। बीच में 'शान्ति की स्थापना कैसे हो ?' इस बारे में सोचने के लिए यूरोप में एक परिषद् बुलायी गयी थी, जिसमें दुनिया के चार बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि इकट्ठा हुए थे, जो एक-दूसरे को अपना दुश्मन समझते थे और आज भी नहीं समझते, ऐसी बात नहीं है। उन्होंने काफी कोशिश की। उन्हें कुछ विश्वास हो गया, जो पहले नहीं था कि दोनों ओर शांति की इच्छा और आकांक्षा काफी है। इसलिए शांति स्थापित हो सकती है। हम सब जानते हैं और दुनिया भी जानती है कि इस तरह का वातावरण तैयार करने में इस देश का कुछ हाथ रहा। फिर भी वह अल्प हाथ रहा, मुख्य हाथ तो विज्ञान का रहा है, जिसने मनुष्य के सामने एक बड़ी समस्या खड़ी की है। इसलिए कुछ-न-कुछ बातें चलेंगी, हालत सुधरती जायगी और शांति की राह निकलेगी।

अशांति का कारण केन्द्रित सत्ता

जब हम सारी दुनिया के इतिहास की ओर देखते हैं—जो लड़ाइयों से भरा हुआ है—तो उसमें ज्यादा समय शांति का ही दिखाई देता है। लेकिन वह लड़ाइयों से भरा इसलिए दीखता है कि शांति के काम मनुष्य-

चलायेगी, तब तक योजना चलेगी ! आज ही हमने पढ़ा कि साढ़े सोलह करोड़ रुपया खादी के लिए मंजूर हुआ था। लेकिन अब वह साढ़े चार करोड़ किया गया है। अब वैकुंठभाई कहते हैं कि जिन प्रान्तों में योजना की थी, उनमें कटौती करेंगे। अगर सरकार यह काम करती है, तो स्तुति करेंगे, नहीं करेगी, तो निंदा करेंगे। इतनी पराधीन जनता रही, तो स्वराज्य कैसा ?

ग्राम-स्वराज्य स्थापित करें

आज हर जगह परस्पर भय छाया हुआ है। हम नहीं समझते कि स्वराज्य का कोई लक्षण हमारे सामने प्रकट होता है। लोग बिलकुल अनाथ दीखते हैं। जो समझनेवाले लोग हैं, वे तो पक्ष और टुकड़े करने के सिवा और कोई काम नहीं करते। किसी काम में एक होकर जनता की अच्छाई का काम नहीं करते। बाबा के स्वागत के लिए आप सब एक हो गये। कल हम चले जायेंगे, तो क्या यह एकता यहीं खतम हो जायगी ? यह आपको सोचना होगा। जब तक इस प्रदेश में स्वराज्य-प्राप्ति नहीं होती, तब तक यह समिति कायम रखें। हर गाँव में हमें ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करनी है। ग्राम-ग्राम में ग्रामदान हो, लोग अपनी-अपनी मालकियत छोड़ दें, ग्रामोद्योग बढ़ायें। गाँव में झगड़ा हो, तो उसका न्याय गाँव में ही हो। वकील के पास गाँव का झगड़ा न जाय। सब मिलकर काम करें और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करें। ग्राम में कोई पक्षभेद न रहे। सब लोग मिलकर अपने गाँव की योजना बनायें।

आपको सोचना चाहिए कि इन सारी पार्टियों में भेद क्यों हैं ? सभी शांतिपूर्ण साधनों से समाजवाद चाहते हैं। पी० एस० पी०, कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट—सबका यही एक ध्येय है। फिर ये सब लोग गाँव के उद्धार में क्यों नहीं लग जाते ? यह सारा आप सोचें, तो काम होगा और सच्चे स्वराज्य की स्थापना होगी।

काठाल, कारवार

१३-२-'५८

में चारों ओर युद्ध की बातें चलतीं। फिर हमारे जैसे मूर्ख लोग कहते रहते कि यह नीति ठीक नहीं, तो लोग हमारी बात सुन लेते, पर हालत वैसी ही चलती रहती।

आज हम कह सकते हैं कि हम भाग्यवान् हैं, क्योंकि हमें पण्डित नेहरू जैसे विवेकी नेता मिले हैं। ऐसे ही अकबर के जमाने में लोग अपने को भाग्यवान् समझते थे और कहते थे कि हमें अच्छा बादशाह मिला है। जहाँ अकबर के जमाने में लोग भाग्यवान् थे, वहीं औरंगजेब के जमाने में कम्बख्त बन गये। इसी तरह दूसरे किसीके नेतृत्व में अभागे बनेंगे। इसलिए कोई केन्द्रित सत्ता हो, जिसके हाथ में सैन्य-शक्ति हो, वही सारे देश के लिए योजना बनाये, यह बात ही गलत है। देश में शान्ति रखने या अशान्ति में डुबोने की ताकत केंद्रीय शासन में रहती है और लोग वैसे-के-वैसे मूर्ख रह जाते हैं। फिर उनके नेता दावा करते हैं कि हमने जो किया, उसे जनता का समर्थन प्राप्त है। हम हिटलर को तानाशाह कहते हैं, पर वह भी दावा करता था कि मैं लोगों द्वारा चुना हुआ हूँ—बहुत अधिक वोटों से चुना हुआ हूँ। आज दुनिया की हालत ऐसी है कि बड़े-बड़े लोगों के हाथों में सत्ता तथा सेना रहती है और वे लोगों पर शासन चलाते हैं। अमेरिका का राष्ट्रपति रूजवेल्ट चार बार चुनकर आया। इस तरह आज भी लोगों और सरकार के बीच पाल्य-पालक संबंध है, जैसा कि राजाओं के जमाने में था। हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न कानून बनते हैं। बंबई और मद्रास में शराबबंदी कानून लागू है, तो बिहार-बंगाल में खुलकर नशाबाजी चल रही है। और काशी नगरी तो नशे में डूबी हुई है। गंगा-स्नान और मद्य-पान—यह वहाँ का कार्यक्रम है। अब क्या यह कहा जा सकता है कि बंबई और मद्रास का लोकमत शराबबंदी के अनुकूल और बिहार-बंगाल तथा काशी का लोकमत शराबबंदी के प्रतिकूल है? स्पष्ट है कि इसमें लोकमत का कोई सवाल ही नहीं है। वहाँ इस मामले में भाग्यवान् शासक मिले हैं और यहाँ नहीं मिले!

स्वभाव के अनुकूल होने से वह उसका ज्यादा बोलबाला नहीं करता। बातचीत करके शांति का कुछ रास्ता निकल पड़े, तो भी यह भरोसा नहीं कर सकते कि दस वर्ष के बाद भी शांति रहेगी। वास्तव में शान्ति तब तक स्थापित नहीं हो सकती, जब तक केन्द्रित शासन कायम है और हर राष्ट्र में केन्द्रित सत्ता चल रही है। अगर केन्द्रित सत्ता का अर्थ यह होता हो कि केन्द्र में कुछ नीतिमान् लोग हैं, वे लोगों को सलाहभर देते हैं—लोग उनकी सलाहभर लेते हैं—लोग गाँव-गाँव में अपना काम चलाते हैं और जब उनकी सलाह की जरूरत हो, तो वह लेते हैं, तब वे भी सलाह देते हैं। परन्तु अपनी सलाह का कोई आग्रह नहीं रखते। किन्तु वह सलाह ज्ञान से युक्त और नीति से प्रेरित सलाह हो, तो सब लोग उसे ग्रहण करते हैं और न हो, तो नहीं ग्रहण करते—तो वह केन्द्रित शासन नहीं रहता, बल्कि विकेन्द्रित शासन का ही एक प्रकार बन जाता है।

जनता का राज्य नहीं आया

आज की हालत ऐसी है कि प्राचीन राज्य-परंपरा और इस हालत में हम कुछ ज्यादा फर्क नहीं देखते हैं। अकबर राजा हुआ, तो हिंदुस्तान सुखी हुआ। औरंगजेब राजा हुआ, तो हिन्दुस्तान दुःखी हुआ। आज भी करीब-करीब वही हालत है। बावजूद इसके कि वोट लेने का एक नाटक या स्वांग चलता है। मान लीजिये कि जब पाकिस्तान ने तय किया था कि हम अमेरिका की सहायता लेंगे, उस समय अगर पण्डित नेहरू कहते कि हम बाहर से मदद तो नहीं लेंगे, पर हमारी शक्ति कम है, इसलिए शस्त्रास्त्र बढ़ायेंगे, तो हिन्दुस्तान में बहुत-से लोग उसे पसन्द करते और भारत में शस्त्रास्त्रों का जोर-शोर चलता। लेकिन उन्होंने कहा कि पाकिस्तान ने यह तय किया है, तो उससे हमारा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। हम पहले जैसे थे, वैसे ही रहेंगे। हम शान्त और आत्मनिर्भर रहेंगे, तो लोगों में भी विश्वास आयेगा और वे शान्त रहेंगे। अभी गोवा के मामले में पण्डित नेहरू प्रस्ताव करते कि 'गोवा पर हमला करना चाहिए', तो हिन्दुस्तान के बहुत-से लोग उसका समर्थन करते और आज हिन्दुस्तान

तो वह प्रेम का परिणाम होगा—और झगड़ा हुआ भी, तो वह भी प्रेम का ही होगा। अगर सरकार की योजना गलत निकली, उसके साथ हमारा मेल न हुआ और हमें गाँव-गाँव जाकर यह समझाने का मौका आया कि सरकार की योजना गलत है, तो उस हालत में जरूर झगड़ा हो सकता है। परन्तु हमारा वह झगड़ा प्रेम का रहेगा। हम सरकार का परिवर्तन करना चाहते हैं।

भूदान के काम में पहले कई प्रकार की शंकाएँ थीं। इससे नैतिक भावना तैयार होती है, यह अच्छा है। किन्तु इसमें जो छोटे-छोटे दान दिये जाते हैं, उनसे कई समस्याएँ पैदा हो गयी हैं—ऐसा विचार सरकार और दूसरे भी लोगों में चलता है। परन्तु जब से भूदान की परिणति ग्रामदान में हुई, तब से दिल्ली पर भी इसका अच्छा परिणाम हुआ है। हम समझते हैं कि भूदान ग्रामदान की दिशा में जोर करेगा, तो हम आज की सरकार का जल्द-से-जल्द परिवर्तन करने में समर्थ होंगे और प्रेम से ही झगड़ा टल जायगा। परंतु ऐसा न हुआ और झगड़े का मौका आया, तो भी हमें उसका कोई डर नहीं मालूम होता, क्योंकि हमारा तरीका प्रेम का है। इसलिए हमारे सामने यह समस्या उपस्थित ही नहीं होती।

लेकिन सरकार का हमारे साथ झगड़ा न हो, तो भी हमारा उसके साथ झगड़ा है ही। हम इस प्रकार की केन्द्रित सरकार ही नहीं चाहते। लेकिन यह तो जनता में इस प्रकार की ताकत पैदा करने पर निर्भर है। अगर हम वह ताकत तैयार करेंगे, तो सरकार को उस दिशा में जाना लाजिमी है, क्योंकि आखिर यह लोकमत की सरकार है। लेकिन तत्त्वतः देखा जाय, तो हम कबूल करते हैं कि इस बारे में हमारा कुल सरकारों के साथ झगड़ा है, तो अपनी सरकार के साथ भी है।

कंचिक चर्ला
२६-१२-'५५

तो वह प्रेम का परिणाम होगा—और झगड़ा हुआ भी, तो वह भी प्रेम का ही होगा। अगर सरकार की योजना गलत निकली, उसके साथ हमारा मेल न हुआ और हमें गाँव-गाँव जाकर यह समझाने का मौका आया कि सरकार की योजना गलत है, तो उस हालत में जरूर झगड़ा हो सकता है। परन्तु हमारा वह झगड़ा प्रेम का रहेगा। हम सरकार का परिवर्तन करना चाहते हैं।

भूदान के काम में पहले कई प्रकार की शंकाएँ थीं। इससे नैतिक भावना तैयार होती है, यह अच्छा है। किन्तु इसमें जो छोटे-छोटे दान दिये जाते हैं, उनसे कई समस्याएँ पैदा हो गयी हैं—ऐसा विचार सरकार और दूसरे भी लोगों में चलता है। परन्तु जब से भूदान की परिणति ग्रामदान में हुई, तब से दिल्ली पर भी इसका अच्छा परिणाम हुआ है। हम समझते हैं कि भूदान ग्रामदान की दिशा में जोर करेगा, तो हम आज की सरकार का जल्द-से-जल्द परिवर्तन करने में समर्थ होंगे और प्रेम से ही झगड़ा टल जायगा। परंतु ऐसा न हुआ और झगड़े का मौका आया, तो भी हमें उसका कोई डर नहीं मालूम होता, क्योंकि हमारा तरीका प्रेम का है। इसलिए हमारे सामने यह समस्या उपस्थित ही नहीं होती।

लेकिन सरकार का हमारे साथ झगड़ा न हो, तो भी हमारा उसके साथ झगड़ा है ही। हम इस प्रकार की केन्द्रित सरकार ही नहीं चाहते। लेकिन यह तो जनता में इस प्रकार की ताकत पैदा करने पर निर्भर है। अगर हम वह ताकत तैयार करेंगे, तो सरकार को उस दिशा में जाना लाजिमी है, क्योंकि आखिर यह लोकमत की सरकार है। लेकिन तत्त्वतः देखा जाय, तो हम कबूल करते हैं कि इस बारे में हमारा कुल सरकारों के साथ झगड़ा है, तो अपनी सरकार के साथ भी है।

कंचिक चर्ला
२६-१२-'५५

बच्चे को ऐसी तालीम देंगे, तो वे बच्चे अहिंसक समाज-रचना के स्तंभ होंगे।

कुजेन्द्री
२४-९-'५५

सरकार का अन्त करें : २६ :

किन्तु हम कहते हैं कि दुनिया में तब तक शान्ति नहीं होगी, जब तक इन सरकारों से हम मुक्ति नहीं पायेंगे। कम्युनिस्ट चाहते हैं कि आखिर सरकार का क्षय हो, पर आज वह परिपुष्ट होनी चाहिए। यानी क्षय है उधार, पुष्टि है नकद। किन्तु आज की हालत में सरकार को मजबूत बनाने की बात आती है, तो गुलामी के सिवा उससे कुछ नहीं निकलता। इसलिए आज से ही सरकार का क्षय होना चाहिए, यह सर्वोदय का विचार है।

सारांश, जहाँ तक व्यक्तियों का ताल्लुक है, हरएक को मन तथा इन्द्रियों पर काबू रखने का ज्ञान होना चाहिए। समाज में एक-दूसरे के हितों के साथ एक-दूसरे के हितों का विरोध नहीं है, यह समझकर समाज-रचना करनी होगी। सरकार की बिल्कुल जरूरत नहीं है, यह समझकर उसके क्षय का आरम्भ आज से ही करना होगा।

विजयवाड़ा
१६–१८ दिसम्बर '५५

हमारा कुल सरकारों के साथ झगड़ा

एक भाई ने एक बड़ा मजेदार सवाल पूछा कि आपकी ग्रामराज्य की और विकेन्द्रीकरण की बातें चलती हैं, तो क्या आपका इस विषय पर सरकार से झगड़ा होगा या नहीं? इसका उत्तर हम यह देते हैं कि झगड़ा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। अगर झगड़ा न हुआ,

सत्ता थोड़ी-बहुत सब तरफ बँटे, लेकिन महत्त्व की व्यवस्था केन्द्र में ही रहे। ऐसा विचार रखनेवाले मानते हैं कि शासन हमेशा होना चाहिए और सबका नियमन करने की शक्ति समाज द्वारा नियुक्त सरकार को मिलनी चाहिए।

३. तीसरा विचार हमारा है। हम भी मानते हैं कि अन्तिम हालत में समाज शासन-मुक्त होगा। यह पक्ष प्रारम्भिक अवस्था में एक हद तक शासन-व्यवस्था की जरूरत महसूस करता है, लेकिन अन्तिम स्थिति में शासन की कोई आवश्यकता नहीं मानता। इस व्यवस्थाशून्य समाज की ओर बढ़ने के लिए वह अधिराज्य की भी आवश्यकता नहीं मानता, बल्कि व्यवस्था और सत्ता के विकेन्द्रीकरण द्वारा उस ओर कदम बढ़ाना चाहता है। अन्तिम स्थिति में कोई शासन नहीं रहेगा, केवल नैतिक नियमन रहेगा। ऐसा आत्मनिर्भर समाज निर्माण करने के लिए सर्वत्र स्वयंपूर्ण क्षेत्र बनने चाहिए। उत्पादन, विभाजन, रक्षण, शिक्षण जहाँ का वहीं हो। केन्द्र में कम-से-कम सत्ता रहे। इस तरह हम प्रादेशिक स्वयंपूर्णता में से विकेन्द्रीकरण साध लेंगे।

सरकारी दृष्टि से मौलिक अन्तर

सरकार के प्लानिंग कमीशन (योजना-आयोग) और हमारी दृष्टि में यही मूलभूत अन्तर है। आयोग के एक सदस्य से पूछा गया कि क्या आपके प्लानिंग कमीशन के सामने यह आदर्श है ? उन्होंने कहा : "हमारे मन में यह जरूर है कि हरएक गाँव अपनी मुख्य-मुख्य जरूरतों के बारे में थोड़ा-बहुत स्वावलम्बी बने, कुछ गाँव मिलकर अपना-अपना इन्तजाम भी कर लें; लेकिन अन्त में शासनशून्य स्थिति की कल्पना हमारी नहीं है।" मैंने कहा कि हमारी अहिंसक योजना में तो यह बात है कि अर्थशास्त्र की भाषा में व्यवस्था की आवश्यकता धीरे-धीरे कम हो और अन्त में बिलकुल ही न रहे। कम्युनिस्ट भी अन्त में शासन-मुक्त समाज चाहते हैं, पर वे आज अपना अधिराज्य चाहते हैं। वे कहते हैं : आज अधिक-से-

राष्ट्र को धारण करनेवाले = धृतराष्ट्र

ये जो धृतराष्ट्र होते हैं—राष्ट्र का धारण करनेवाले, वे अंधे होते हैं। उनका एक दायरा होता है, उसीमें वे सोचते हैं। वे कहते हैं कि जमीन का बँटवारा होगा, तो जमीन सबके लिए पूरी नहीं मिलेगी और हिंदुस्तान में अशांति पैदा होगी। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि "बाबा बड़ा खतरनाक काम कर रहा है। लोग जाग जायँगे और फिर उन्हें जमीन न मिलेगी, तो असंतोष पैदा होगा। आज जो संतोषमूलक राज्य चल रहा है, वह न रहेगा।" हम इस आक्षेप को कबूल करते हैं। हम जरूर असंतोष पैदा करना चाहते हैं। व्यास भगवान् ने लिखा है : 'असंतोषः श्रियो मूलम्।' असंतोष पैदा करने का काम दशरथ से नहीं बनता। उस काम के लिए राम और लक्ष्मण चाहिए। इसलिए बच्चों पर राम का काम करने की जिम्मेवारी है। हमारा अनुभव है कि बच्चों की जमात एक आवाज में कहती है कि सबको जमीन मिलनी चाहिए।

सरुनगर
४-२-'५६

शासन-मुक्ति का विचार : २७ :

हमारे सामने तीन प्रकार के विचार हैं :

१. पहला विचार यह है कि अन्तिम अवस्था में सरकार क्षीण होकर शासन-मुक्त व्यवस्था हो जायगी। लेकिन वहाँ जाने के लिए आज हाथ में अधिकतम सत्ता होनी चाहिए। ऐसा माननेवाले आरम्भ में अधि-राज्यवादी और अन्त में राज्यविलयवादी कहलाते हैं।

२. दूसरा विचार यह है कि राज्य-शासन शुरू से था, आज भी है और आगे भी रहेगा। शासनमुक्त समाज हो ही नहीं सकता। इसलिए समाज में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे सबका भला हो। शासन-

टोटेलिटेरियनिज्म और डेमॉक्रेसी

हम बहुत बार सुनते हैं कि "हमें डेमॉक्रेसी (लोकतन्त्र) के जरिये काम करना पड़ता है, इसलिए हम शीघ्रता से काम नहीं कर सकते; टोटेलिटेरियन (सर्वाधिकारवादी) होते, तो काम शीघ्र होता।" लेकिन आप इस विचार को अपने दिमाग से निकाल दें। जहाँ दूर-दृष्टि नहीं होती, वहाँ लोग कहते हैं कि "इंजेक्शन से शीघ्र आरोग्य मिलता है, इसलिए दूसरी औषधियों से वह शीघ्र फलदायी है।" किन्तु अगर जहर का इंजेक्शन दें, तो चार घण्टे के अंदर बीमारी के साथ बीमार का भी अंत हो जायगा। पूछा जा सकता है कि "यह तो जहर का इंजेक्शन है नहीं। बीमारी शीघ्र चली जाती है और बीमार भी नहीं मरता। फिर हम टोटेलिटेरियनिज्म क्यों न अपनायें?" सुनने में तो यह बात बहुत ठीक मालूम पड़ती है; लेकिन वास्तव में वह केवल शीघ्र परिणामदायी ही नहीं, शीघ्र कुपरिणामदायी भी है। उस रास्ते से सिर्फ शीघ्र राहत ही नहीं मिलती, बल्कि शीघ्र अनेक रोग भी पैदा होते हैं। इसके बावजूद निसर्गोपचार से थोड़ी देर लगती है, लेकिन हमेशा के लिए रोग से मुक्ति मिलती है। दूसरी दवा से शीघ्र लाभ का आभास होता है, लेकिन डॉक्टर के पंजे से तभी छूटते हैं, जब शरीर छूटता है।

'मुख में राम, बगल में छुरी!'

हमारे लिए यह तरीका काम का नहीं है। लोकतन्त्र में भी शीघ्र फल की सामर्थ्य है, बशर्ते हम उसका ठीक-ठीक अर्थ समझें। अगर हम लोकतन्त्र का ठीक अर्थ समझें, तो हमारा नियोजन आज ही से ऐसा होना चाहिए कि सेना की कम-से-कम आवश्यकता रहे, लोग अपनी रक्षा का भार स्वयं उठायें। याने उनमें इतनी निर्भयता और निर्वैरता हो कि सेना की जरूरत ही न रह जाय। अगर हम ऐसी योजना बनायेंगे, तभी सच्चा लोकतन्त्र होगा और वह शीघ्र फलदायी भी होगा। आज हम इधर तो लोकतन्त्र की बात करते हैं, उधर अर्थ-व्यवस्था पूँजीवादी और लश्करशाही

अधिक सत्ता होगी और अन्त में वह शून्य हो जायगी। दूसरे कहते हैं कि शासन-व्यवस्था आज है और आगे भी रहेगी। बहुत-सी केन्द्रित रहेगी, तो कुछ तकसीम भी की जायगी। हम कहते हैं कि अगर बहुत-सी या सारी-की-सारी शासन-व्यवस्था केन्द्रित रही, तो आगे उसका विलीन होना मुश्किल होगा। इसलिए आज ही से हम उसे विकेन्द्रीकरण की ओर ले जायँ। हमारे सारे नियोजन की यही बुनियाद होगी। आज ही मेरा आग्रह नहीं है कि हरएक गाँव सारी-की-सारी चीजें बनाये। गाँवों के समूह भी स्वयंपूर्ण बनाये जा सकते हैं। सारांश, हम प्रादेशिक आत्मनिर्भरता में से सामाजिक व्यवस्था-शून्यता की ओर कदम बढ़ाने की दृष्टि से ही सारा नियोजन करेंगे।

अधिक-से-अधिक स्वावलम्बन

हमारा ध्येय तो यह हो कि हरएक व्यक्ति अधिक-से-अधिक स्वावलम्बी बने। भगवान् की भी यही योजना है। इसीलिए उसने सबको केवल मन, बुद्धि आदि अन्तःकरण ही नहीं दिये, बल्कि आँख, कान, नाक जैसे अलग-अलग बाह्यकरण भी दिये हैं। उसने किसीको दशकर्ण, किसीको दशाक्ष, किसीको दशहस्त, तो किसीको दशपाद नहीं बनाया। उसने ऐसी योजना नहीं की कि अगर दशकर्ण को देखने की आवश्यकता पड़े, तो वह दशनेत्र की तरफ दौड़े और दशनेत्र को सुनने की जरूरत हो, तो उसे दशकर्ण के पास जाना पड़े! भगवान् ने इतना अधिक विकेन्द्रीकरण कर दिया है कि अब उसमें नियमन की जरूरत ही नहीं रही। इसलिए भगवान् खुद भी है या नहीं, इस बारे में कुछ लोग बेशक शंका प्रकट कर सकते हैं। अगर वह ऐसी सुन्दर व्यवस्था न करता, तो उसे आज के मन्त्रियों के इतनी ही दौड़धूप करनी पड़ती। एक जगह शक्कर, दूसरी जगह अनाज और तीसरी जगह तेल, ऐसी व्यवस्था रही, तो हरएक चीज यहाँ से वहाँ भेजने की फिक्र रहेगी। और कभी झगड़ा हो गया, तो किसीको एक चीज मिलेगी, किसीको दूसरी मिलेगी। ऐसी व्यवस्था हमें कभी भी शासनमुक्त समाज की ओर नहीं ले जा सकती।

नहीं। फिर भी इस देश की आजादी की लड़ाई एक विशेष ढंग से लड़ी गयी। दुनिया के इतिहास में यह बात गौरव के साथ लिखी जायगी। यही देश था, जहाँ आजादी के लिए शांतिमय साधनों का आग्रह रखा गया। हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमने परिपूर्ण शांति का अनुसरण किया, फिर भी हमारे नेताओं का यही आग्रह रहा कि शांति के तरीके से ही लड़ाई हो। और पूरे देश ने टूटा-फूटा ही क्यों न हो, शांति का प्रयत्न किया। उसीके परिणामस्वरूप इस देश को आजादी प्राप्त हुई। हम यह भी दावा नहीं करते कि हम लोगों के प्रयत्न से ही आजादी मिली। यह अहंकार रखने की गुंजाइश भी नहीं और उसे हम लाभदायी भी नहीं समझते। हम जानते हैं कि हिन्दुस्तान की आजादी की प्राप्ति में दुनिया की ताकतों का भी योग है। दुनिया में एक ऐसी परिस्थिति थी, जिसके कारण अंग्रेजों को इस देश को अपने हाथ में ज्यादा दिन रखना कठिन था। फिर भी यह मानना होगा कि उसके साथ-साथ यहाँ भी कुछ प्रयत्न किया गया और उसका बहुत ही सुंदर असर इस देश के इतिहास पर हुआ। यहाँ यह भी देखने को मिला कि जिस देश के साथ हमारा झगड़ा था, उसके साथ स्नेह-सम्बन्ध बना रहा। इसमें जितना भारत का गौरव है, उतना ही इंग्लैंड का भी, यह हम जानते हैं। ऐसे एक विशेष तरीके से यहाँ की लड़ाई लड़ी गयी, इसलिए हमारे देश से बाहर की दुनिया कुछ अपेक्षा रखती है और इस देश की आवाज आज दुनिया में बुलंद है। हमारे पास कोई विशेष सेना-शक्ति नहीं, कुछ संपत्ति भी ज्यादा नहीं। फिर भी जो कुछ असर इस देश का दुनिया पर होता है, इसका कारण हमारे साधन हैं, जिससे इस देश की आजादी की लड़ाई लड़ी गयी। इसलिए हम पर एक विशेष जिम्मेवारी आती है। हमें उस जिम्मेवारी की गंभीरता महसूस करनी चाहिए।

आत्मज्ञान और विज्ञान

हमें समझना चाहिए कि हमारा देश बच्चा नहीं, दस हजार साल का अनुभवी, पुराना देश है। मैं कभी आत्मा का वर्णन पढ़ता हूँ, तो उसमें

रखते हैं। जिस चीज का नाम लेते हैं, उसीके खिलाफ काम करते हैं। इसीलिए उसका थोड़ा-सा फल मिलता है और एक समय ऐसा भी आयेगा, जब लोकतन्त्र का कुछ भी फल न निकलेगा। आज थोड़ा-सा फल दीखता है, यह भी आश्चर्य की ही बात है। कहते हैं न, **'मुख में राम, बगल में छुरी'**—ऐसी ही असंगत हमारी यह नीति है। हम लोकतन्त्र के साथ-साथ केन्द्रित योजना और लश्कर चाहते हैं। मुँह में लोकतन्त्र है और बगल में केन्द्रीकरण तथा लश्कर है। उस मूर्ख को आप क्या कहेंगे, जो सूत कातता भी जाता है और तोड़ता भी जाता है? हम लोकतन्त्र के साथ-साथ उसके विनाश के तत्त्व भी लेते रहेंगे, तो परिणाम कैसे निकलेगा?

लोकतन्त्र का सच्चा अर्थ समझें!

हम एक विचारक हैं और विचारक के नाते अपना काम करते जाते हैं। अहिंसा हमारी नीति है, जिसका तत्त्व समन्वय है। हमारा विचार किसीके साथ थोड़ा भी मेल खाता हो, तो उसके साथ सहानुभूति और सहकार करने को हम तैयार रहते हैं। हरएक व्यक्ति के विचार में थोड़ा-बहुत भेद अवश्य रहेगा—**पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना**। लेकिन कुल मिलाकर हमारी मूलभूत राय एक है। हमारे मन में यह सन्देह न रहे कि टोटेलिटेरियनिज्म नहीं है, इसलिए हमारा काम शीघ्र नहीं होता। हम लोकतन्त्र का सच्चा अर्थ समझें और पूरे अर्थ के साथ उसका प्रयोग करें, तो हमारा काम शीघ्रतम होगा।

सेवापुरी (बनारस)
१५-४-'५२

आजादी की लड़ाई की विशेषता

हमारे देश को दीर्घ प्रयत्न के बाद स्वाधीनता प्राप्त हुई है। आजादी की लड़ाई दूसरे देशों में भी लड़ी गयी। इसमें बहुत त्याग करना पड़ता है, यह भी सब लोग जानते हैं। अतः इसमें हमारे देश की कोई विशेषता

तो बिलकुल ही नालायक हैं। जहाँ हमें गायों और बैलों को भी रक्षण देना है और मानव के समान उन्हें भी मानना है, वहाँ हमें और भी बहुत व्यापक बनना है। गायों का रक्षा-शास्त्र भी हमें पढ़ना होगा।

अवश्य ही आज यूरोप में गायों की हालत हमारे देश से कहीं अधिक अच्छी है, फिर भी मानना होगा कि हमारे समाज-शास्त्र में जो खूबी है, वह पश्चिम के समाज-शास्त्र में नहीं है। वहाँ जो सबसे श्रेष्ठ शब्द है, वह है 'ह्यूमेनिटी' (Humanity) याने 'मानवता'। किन्तु हमारे यहाँ जो सबसे श्रेष्ठ शब्द है, वह है 'भूतदया'। हम जहाँ 'सर्वभूतहिते रताः' कहते हैं, वहीं वे कहते हैं : 'ग्रेटेस्ट गुड ऑफ दि ग्रेटेस्ट नंबर' (Greatest good of the greatest number) याने मानव-समाज के अधिक-से-अधिक हिस्से का भला ! वे 'सर्वमानवोदय' भी नहीं चाहते। कहते हैं, 'अधिकतम मानवोदय' होना चाहिए, जब कि हम मानवता से भी व्यापक चीज मानते हैं। सारांश, अवश्य ही आज हमारा आचरण बहुत गिरा हुआ है। संभव है कि पश्चिमी देशवासियों की तुलना में हम नीचे साबित हों, फिर भी जहाँ तक व्यापक चिंतन का ताल्लुक है, यहाँ का चिंतन बहुत व्यापक हुआ है याने हम मानवता से कम कभी नहीं सोचते।

आज की दयनीय दशा

किन्तु आज इस देश में एक विचित्र दशा दीख पड़ती है। यहाँ के लोग अपने को विशिष्ट प्रांतवाले समझते हैं। कोई अपने को 'आंध्र' समझता है, कोई 'कन्नड', तो कोई 'बंगीय' ! जिस देश के लोग अपने को 'सोऽहम्' कहते थे, याने मैं वह हूँ, जो अत्यन्त व्यापक तत्त्व है—ऐसा मानते थे, उस देश के लोग अपने को जाति में ही सीमित मानते हैं। जो अपने को मानवता से भी अधिक व्यापक समझते थे, वे आज 'भारतीय' से भी अपने को कम समझने लगे ! S. R. C. (राज्यपुनस्संगठन-आयोग) ने कुछ बातें प्रकट कीं, तो एक प्रदेश खुश है और दूसरा नाखुश है। एक बात में एक को आनन्द है, तो उसीमें दूसरे को दुःख।

मुझे इस देश का वर्णन दीख पड़ता है। 'नित्यः शाश्वतः अयं पुराणः'—यह नित्य और शाश्वत है, यह पुराण है। यह है आत्मा का वर्णन और यही लागू होता है भारतवर्ष को। भारत के इतिहास में ही कुछ ऐसी विशेषता है, जिसके कारण दुनिया की नजर इस देश की ओर है। निस्सन्देह दो हजार साल में जो मौका हिन्दुस्तान को नहीं मिला, वह आज मिला है। आत्मज्ञान की परम्परा इस देश में प्राचीन काल से थी।

अब विज्ञान की शक्ति भी दुनिया में प्रकट हुई है। इधर भारत की इस प्राचीन आत्मज्ञान-शक्ति और विश्व की अर्वाचीन विज्ञान-शक्ति का योग हो रहा है। ज्ञान और विज्ञान का जहाँ योग होता है, वहाँ सब तरह का क्षेम आ जाता है। लेकिन वह क्षेम तब होता है, जब उन ज्ञान-विज्ञान का हमारे जीवन में प्रवेश होता है।

भारत का व्यापक चिंतन

हिंदुस्तान में आवाज उठी है—'मानवता एक है।' हम वेद में पढ़ते हैं कि मानवता ग्रहण करो, बुद्धिमान् जन ! मानवता का स्वीकार करो। 'प्रति गृहीत मानवः सुमेधसः'—हे मेधावी जन ! मानवता ग्रहण करो। इस तरह मानवता की महिमा इस देश ने गायी है। मानवता से कोई छोटी चीज इस देश की संस्कृति को मंजूर नहीं। यहाँ के ज्ञानियों ने कोशिश की है कि मानवता से भी ज्यादा व्यापक हम बन सकें, तो बनें। इसीलिए हमने यहाँ के समाज में गायों को भी स्थान दे दिया। मैं बहुत बार समझाता हूँ कि हिंदुस्तान में अपना समाजवाद चलता है। इन दिनों पश्चिम में समाजवाद पैदा हुआ है, जिसे 'सोशलिज्म' (Socialism) कहते हैं। वह कहता है कि सभी मनुष्यों को समान अधिकार है। किन्तु हिन्दुस्तान का समाजवाद कहता है कि मानव-समाज में हम गो-वंश को शामिल करते हैं और जो रक्षा हम मानव को देंगे, वही गायों को भी देंगे। यह छोटी प्रतिज्ञा नहीं, बहुत विशाल समाज-वाद है। इसके लिए हम लायक बने हैं, सो नहीं। उस लिहाज से हम

लक्षण है कि उसका सार्वत्रिक विभाजन होता है। सर्वोत्तम सत्ता वही होती है, जिसके बारे में हमें शंका हो कि कोई सत्ता चलाता है या नहीं। हमें भी यह शंका होनी चाहिए कि दिल्ली में कोई राज्य चल रहा है या नहीं। अपने गाँव का कारोबार तो हम ही देखते हैं। केन्द्रीय सत्ता इस तरह परमेश्वरीय सत्ता का अनुकरण करनेवाली होनी चाहिए। उसके बदले में सारी-की-सारी सत्ता हम केन्द्र के हाथ में सौंप देते हैं। इसलिए सभी चाहते हैं कि केन्द्र पर हमारा प्रभाव पड़े।

वर्तमान चुनाव-पद्धति के दोष

दूसरी बात इस बारे में सोचने की यह है कि हम लोगों ने पश्चिम से चुनाव का एक तरीका अपनाया है। हम देखते हैं कि इस देश में जाति-भेद जितना फैला है, उतना पहले नहीं था। भूमिहार-ब्राह्मण और राजपूत-भेद बिहार में जाकर देखिये। कम्मा और रेड्डी-भेद आन्ध्र में देखिये। ब्राह्मण और ब्राह्मणेतरवाद मद्रास में देखिये। इस तरह हर प्रान्त में अनेक प्रकार के भेद बढ़ गये। सोचने की बात है कि जिस जाति-भेद पर राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक सबने प्रहार किया और जो टूट भी रहा था, वह आज इतना क्यों बढ़ रहा है? कारण यही है कि यहाँ चुनाव ने जाति-भेद को बढ़ावा दिया। जब चुनाव से इतना भयानक परिणाम होता है, तो उसके तरीके को बदलने की सख्त जरूरत है।

चुनाव से जाति-भेद की वृद्धि पहला दुष्परिणाम है। दूसरा यह है कि आज जो तरीका चलता है, उसमें जिसके पास ज्यादा पैसा है, वही इसमें भाग ले सकता है। जिसके हाथ में ज्यादा संपत्ति है, वही चुनाव में खड़ा होता है। इस हालत में गरीब और मूक जनता की आवाज कैसे उठेगी?

और भी एक बात है। चुनाव होते हैं, परन्तु जो लोग खड़े होते हैं, उनके चेहरे भी हम नहीं जानते। लाखों मतदाताओं की ओर से जिन्हें चुनना है, उनके गुण तो गुण, उनका चेहरा भी हम नहीं जानते। इस

अगर ऐसी योजना है, तो वह सर्वोदय-योजना नहीं है। यह मानवता नहीं, पशुता है।

हम कबूल करते हैं कि जहाँ भाषा के अनुसार प्रान्त-रचना होती है, वहाँ जनता को सहूलियत मिलती है। जब तक किसान की भाषा में राज्य का कारोबार नहीं होता, तब तक स्वराज्य का अनुभव हो नहीं सकता। इसलिए भाषानुसार प्रान्त-रचना का हम बड़ा महत्त्व मानते हैं। लेकिन इसमें ज्यादा अभिमान की बात होने का मुख्य कारण हमारे देश द्वारा पश्चिमी देश की रचना का अनुकरण करना ही है, जो खतरनाक है।

सत्ता का विभाजन हो

स्वराज्य के बाद इस देश में 'वेलफेयर स्टेट' (Welfare State) का प्रारम्भ किया गया। इस 'वेलफेयर स्टेट' का अर्थ है, अधिक-से-अधिक सत्ता कुछ लोगों के हाथों में रहेगी और वे लोगों का सारा जीवन नियन्त्रित करेंगे। पूरे देश के पाँच लाख देहातों की योजना दिल्ली में बनेगी। जीवन के जितने अंग-प्रत्यंग हैं, सभी विषयों में दिल्ली में बात तय होगी। समाज में क्या-क्या सुधार हो, शादियाँ किस ढंग से हों, भारत में छूत-अछूत-भेद कैसे मिटाया जाय, देश में कौन-सी चिकित्सा-पद्धति लागू की जाय, हिन्दुस्तान में किस भाषा का प्रचलन हो, सिनेमा किस ढंग से चले आदि जीवन के सभी विषयों में दिल्ली में योजना तय होगी। अगर हम इतनी अधिक सत्ता केन्द्र को सौंपते हैं, तो सारा जन-समुदाय पराधीन हो जाता है, अनाथ बन जाता है। इसलिए दिल्ली की सत्ता ही कम होनी चाहिए।

हरएक को जितनी अक्ल की जरूरत है, उतनी अक्ल परमेश्वर ने बाँट दी और अब क्षीर-सागर में शयन करता है। अगर उसने सारी अक्ल का भण्डार अपने पास रखा होता, तो वह पसीना-पसीना हो जाता। परन्तु उसने मनुष्य और प्राणियों को बुद्धि दे दी। इससे वह इतना तटस्थ रहता है कि कुछ लोग कहते हैं कि वह है ही नहीं। सर्वोत्तम सत्ता का यही

कौन-सी पद्धति चलायी जाय, यह सरकार सोचती है और हम कहते हैं : 'यह बड़ा जुल्म है।'

शिक्षण सरकार के हाथ में न हो

दूसरी मिसाल लीजिये। आज शिक्षण पर राजसत्ता का नियंत्रण है। जो 'टेक्स्ट बुक' प्रदेश की सरकार तय करे, वही उस प्रान्त के सब बच्चों को पढ़नी होगी। इसका मतलब यह है कि बच्चों के दिमागों में अपने विचार ठूँसने की शक्ति सरकार के हाथों में है। अगर सरकार कम्युनिस्ट होगी, तो वह बच्चों को कम्युनिज्म सिखायेगी। फासिस्ट हो, तो फासिज्म सिखायेगी। सरकार सोशलिस्ट हो, तो बच्चों को सोशलिज्म सीखना होगा और पूँजीवादी हो, तो सर्वत्र पूँजीवाद का गौरव सिखाया जायगा। सरकार प्लानिंगवाली हो, तो प्लानिंग की महिमा बच्चों के दिमाग में ठूँसी जायगी। मतलब यह है कि बच्चों के दिमाग को आजादी नहीं रहेगी। हमारे देश में माना गया था कि शिक्षण पर राज्य की सत्ता होनी ही नहीं चाहिए। सांदीपनि गुरु पर वसुदेव की सत्ता नहीं चल सकती थी। वसुदेव का लड़का श्रीकृष्ण सेवक बनकर सांदीपनि के पास गया और सांदीपनि कृष्ण को सुदामा के साथ लकड़ी चीरने का काम देते थे। वहाँ कौन-सी 'टेक्स्ट बुक' चलनी चाहिए, यह वसुदेव नहीं देखता था। क्षत्रिय-सत्ता या राज-सत्ता शिक्षण पर हरगिज नहीं चल पाती थी। परिणाम यह हुआ कि संस्कृत भाषा में आज जितना विचार-स्वातन्त्र्य है, उतना कहीं नहीं देखा जाता। हिन्दू-धर्म के अन्दर छह-छह दर्शन निकले और वे भी परस्पर एक-दूसरे का विरोध करते थे—इतना विचार का स्वातन्त्र्य यहाँ चला। इसका कारण यही है कि राजसत्ता का कोई काबू शिक्षण पर नहीं था।

सारांश, अगर आज भी हिन्दुस्तान में लोगों की तरफ से शिक्षण की योजना चलेगी और सरकार का शिक्षण-विभाग खतम हो जायगा, तो हिन्दुस्तान को और एक सत्ता मिल जायगी। इस तरह सरकार का एक-

तरह चुनाव से खर्च बढ़ रहा है, जाति-भेद बढ़ रहा है और अच्छे मनुष्य ही चुनकर आयेंगे, इसका भी कोई भरोसा नहीं ।

आरोग्य का काम जनता उठा ले

अगर हम चाहते हैं कि हमारा समाज अहिंसा पर खड़ा हो, तो हमें दूसरे ढंग से सोचना चाहिए। उसके लिए हमें समाज की रचना अपने विचार से करनी चाहिए, केवल पश्चिम के अनुकरण से काम न चलेगा। आज दुनिया के सभी देशों के लोग शांति के लिए प्यासे हैं। सभी ऐटम और हाइड्रोजन की शक्ति से भयभीत हैं। वे समझ गये हैं कि इनसे दुनिया का निश्चित नाश होगा, कुछ काम नहीं होगा। अगर हम शांति चाहते हैं, तो उसके अनुकूल रचना भी करनी होगी। सरकार का एक-एक कार्य जनता को अपने हाथ में लेना होगा। काम कम होते-होते सरकार ही क्षीण हो जाय, ऐसी योजना करनी होगी।

एक मिसाल लीजिये। यहाँ 'प्रेम-समाज' के लोग बीमारों और दुःखियों की सेवा करते हैं। इस तरह हिन्दुस्तान के कुल बीमारों की सेवा करने का काम जनता उठा ले, तो सरकार का स्वास्थ्य-विभाग खतम हो जायगा। और यह होगा, तो बहुत बात बनेगी। जैसे 'रामकृष्ण-मिशन' के मठों ने सर्वत्र बीमारों की सेवा का काम उठा लिया है। जगह-जगह वैसी ही संस्थाएँ बनें और लोग वही काम उठा लें। फिर जनता का जिस चिकित्सा-पद्धति पर विश्वास हो, वही चलेगी। बी० सी० जी० का जो वाद चल पड़ा है, वह उठेगा ही नहीं। आज हालत यह है कि सरकार चाहे, तो सब लड़कों को बी० सी० जी० के इंजेक्शन दिलवा सकती है। राजाजी इस बारे में बहुत बोल चुके हैं। यह सारा इसीलिए होता है कि इस देश ने केन्द्र के हाथ में सब सत्ता सौंप दी है। बच्चों को कैसी दवा दी जाय, यह हम ही तय करने लगें, तो सरकार का यह एक काम कम होकर उसकी सत्ता क्षीण हो जायगी। इस तरह देश को एक और आजादी मिल जायगी। पर आज आरोग्य के लिए

(Welfare State)। किन्तु जब से यह कल्पना हमने की, तभी से हिन्दुस्तान पराधीन हो गया। कभी-कभी सोचता हूँ कि १५ अगस्त १९४७ हमारा स्वतन्त्रता-दिन है या परतंत्रता-दिन ? क्योंकि इसके पहले हम कुछ-न-कुछ करते थे। बिहार में भूकम्प हुआ, तो जमनालालजी बजाज वहाँ दौड़ पड़े। जनता ने काम शुरू किया। गुजरात में बाढ़ आयी, तो वल्लभभाई दौड़े गये। वहाँ की बाढ़ में लोगों ने खूब काम किया, जिसे देख अंग्रेज सरकार को भी शर्म आयी और वे काम करने लग गये। पर अगर आज बाढ़ आती है, तो कोई एक-दूसरे की मदद नहीं करता। कहते हैं, 'सरकार मदद करेगी।' गत वर्ष बिहार में बारिश में बाढ़पीड़ित क्षेत्र में मेरी यात्रा चल रही थी। मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिलों में जबरदस्त बाढ़ थी और सीतामढ़ी के बहुत-से देहात पानी के अन्दर डूबे थे। फिर भी सीतामढ़ी शहर में सिनेमा बंद नहीं हुआ। मैंने वहाँ की सभा में कहा था : "लोग पीड़ित हैं। उनकी मदद के लिए कम-से-कम १०-१५ दिन के वास्ते सिनेमा बंद करो। इतनी निठुरता क्यों ?" कारण स्पष्ट है, वे सोचते हैं कि सरकार करेगी। उसमें हमारा क्या कर्तव्य है। हर बात में सरकार पर आधार रखना स्वतंत्रता का नहीं, गुलामी का लक्षण है।

जन-शक्ति से मसले हल हों

आज भूदान की तरफ लोगों का ध्यान क्यों जाता है ? विदेशी लोग हमारी यात्रा में साथ घूमते हैं। दुनिया के बहुत सारे लोगों का ध्यान इसने खींच लिया है। क्योंकि लोग सोचते हैं कि यहाँ जनशक्ति के जरिये जमीन के बँटवारे का काम हो रहा है, बड़ी अद्भुत बात है। लेकिन यहाँ के लोग बाबा से पूछते हैं कि "तुम पैदल-पैदल क्यों घूमते हो ? सरकार से कानून बनवा लो, काम खतम हो जायगा !" पर वे सोचते नहीं कि क्या कानून से प्रेम भी किया जा सकेगा ? हमने सरकार को जमीन बाँटने से रोका कहाँ है ? अब तक सरकार ने जमीन क्यों नहीं बाँटी ? अगर वह जमीन बाँट देती, तो हमारी यात्रा बंद पड़ती और

एक कार्य जनता के हाथ में आयेगा और सरकार की सत्ता क्षीण होती जायगी, तो दुनिया में अहिंसा और शान्ति टिक पायेगी। नहीं तो केन्द्रीय सत्ता के हाथ में लोग रहेंगे, तो समझ लीजिये कि दुनिया खतरे में है।

लोकशाही का ढोंग

क्या आप यह समझते हैं कि आपको मतदान का अधिकार मिला, इसलिए आपके हाथ में सचमुच सत्ता आ गयी? कलकत्ते में गायों के खून की नदियाँ बहती हैं, तो क्या आप यह समझते हैं कि वहाँ के लोग उसके लिए अनुकूल हैं? उत्तर-प्रदेश में गो-वध की बन्दी हो गयी, तो क्या उत्तर-प्रदेश का लोकमत बंगाल से अलग हो गया? बात यह है कि यहाँ लोकमत का कोई सवाल ही नहीं। बंगाल का मुख्य मन्त्री जिस तरह सोचता है, उसी तरह वहाँ का काम चलता है। उत्तर-प्रदेश और बिहार में शराब की नदी बहती है। काशी में जितनी बड़ी विशाल गंगा नदी बहती है, उतनी ही विशाल शराब की नदी भी। उधर मद्रास और बम्बई में शराब की बंदी है। तब क्या आप समझते हैं कि बम्बई और मद्रास का लोकमत शराब के विरुद्ध और बिहार तथा उत्तर-प्रदेश का अनुकूल है? स्पष्ट है कि अगर अच्छा मुख्य मन्त्री आये, तो राज्य अच्छा और गलत आये, तो राज्य गलत! मुगलों के राज्य में भी तो यही होता था। अकबर आया, तो अच्छा राज्य चला और औरंगजेब आया, तो खराब। जैसे उस समय लोकमत का कोई सवाल नहीं था, वैसे आज भी नहीं है, यद्यपि 'वोटिंग' (Voting) का ढोंग अवश्य चला है।

कहने के लिए तो ये सारे आपके 'सेवक' कहलायेंगे। आप मालिक हैं, पाँच साल के लिए आपने इन नौकरों को चुना है। लेकिन अगर हम मालिक जाग्रत न रहेंगे, तो ये ही नौकर कल 'पक्के मालिक' बन जायँगे। और वे कहते हैं कि आपके कल्याण के लिए हमारे हाथ में ज्यादा-से-ज्यादा सत्ता होनी चाहिए। इसका नाम है कल्याणकारी राज्य

अशांति का वातावरण पैदा न होता ? लेकिन परमेश्वर की कृपा से हमें एक ऐसे मनुष्य मिले हैं, जिनकी अक्ल ठिकाने पर है। याने हिन्दुस्तान में शांति रखना या देश को अशांति में डुबोना, यह सारा पंडित नेहरू पर निर्भर है। इस तरह किसी एक व्यक्ति के हाथ में सारे देश को ऊपर उठाने या नीचे गिराने की ताकत कानून से देना गलत है। अगर किसीके पास नैतिक शक्ति हो और लोग उसकी सलाह मानते हों, तो दूसरी बात है। गांधीजी की सत्ता हिन्दुस्तान पर चलती थी, लेकिन वह नैतिक सत्ता थी। सब लोग उनकी बात मानने या न मानने के लिए मुक्त थे। इस तरह महापुरुषों की नैतिक सत्ता चले, तो उसमें कोई उज्र नहीं। लेकिन देश को बनाने या बिगाड़ने की कानूनी सत्ता किसी एक के हाथ में देना गलत है

हम तो यह भी चाहते हैं कि लोग नैतिक सत्ता भी बिना सोचे-समझे कबूल न करें। बाबा यह नहीं चाहता कि बाबा की तपस्या देखकर आप लोग उसकी बात बिना समझे कबूल करें। वह यही चाहता है कि उसकी बात आपको जँचे, तभी आप उसे स्वीकार करें। हमने स्पष्ट जाहिर किया है कि हमारी बात समझे बिना कोई हमें दान देगा, तो उससे हमें दुःख होगा। हमारी बात समझकर कोई दान देता है, तो हमें खुशी होती है। हम चाहते हैं, जन-शक्ति और लोक-हृदय का उद्धार हो। हम चाहते हैं कि सामूहिक संकल्प-शक्ति प्रकट हो, समुदाय की चित्त-शुद्धि हो। इस प्रकार की शक्ति प्रकट किये बिना अपना देश और दुनिया खतरे से नहीं बचेगी।

विशाखपत्तनम्
२७-१०-'५५

नेता की नहीं, ईश्वर की मदद

हमेशा यह शिकायत की जाती है कि हमारे कार्यकर्ताओं के पीछे कोई बड़ा मनुष्य नहीं है। यह सोचने की बात है कि बड़ा कौन है। इस दुनिया में जो सबसे छोटे होते हैं, वे ईश्वर के राज्य में सबसे बड़े होते हैं।

हम दूसरा काम करते। लेकिन सरकार जिन लोगों की बनी है, वे सारे बड़े-बड़े जमीनवाले हैं। कांग्रेसवालों और सरकार की बात मैं छोड़ देता हूँ। कम्युनिस्ट दरिद्रों के पक्षपाती कहलाते हैं, लेकिन उन्होंने भी यही कहा कि "कम्युनिस्टों का राज्य आयेगा, तो हम बीस एकड़ का सीलिंग करेंगे।" कृष्णा-गोदावरी की तरीवाली २० एकड़ जमीन याने महाराष्ट्र की ५०० एकड़ जमीन! यहाँ २० एकड़ तरीवाला मनुष्य लखपती बनेगा। इतनी जमीन रखने के लिए कम्युनिस्ट राजी हैं, तो दूसरों की बात ही क्या? फिर भी मान लीजिये कि कानून से यह काम किया जायगा, तो क्या लोगों में प्रेम और जन-शक्ति पैदा होगी? इसीलिए दुनिया का भूदान की तरफ ध्यान है।

लोक-शक्ति के जरिये ऐसे विलक्षण कार्य होने जा रहे हैं, जिसकी आज तक किसीने कल्पना तक नहीं की, क्योंकि इसमें जन-शक्ति बढ़ती है। लोग प्रेम से जमीन दान देते हैं और एक मसला हल करते हैं। यह एक ऐसा कार्य होगा, जिससे दुनिया के दूसरे मसले हल हो सकेंगे। मान लीजिये, भूदान का काम जन-शक्ति से हो गया और गाँव-गाँव में प्रेम से जमीन बँट गयी, तो कितना बड़ा काम होगा। कोरापुट जिले में छह सौ (अब लगभग दो हजार) ग्राम-दान मिले हैं। वहाँ जमीन की मालकियत मिट गयी, तो अब वहाँ सरकार के कानून को कौन पूछता है? अगर गाँव-गाँव के लोग तय करें कि हम जमीन की मालकियत नहीं रखेंगे, तो कौन उनके सिर पर मालकियत थोपेगा?

सत्ता विचार की ही चले, व्यक्ति की नहीं

इस तरह अपने देश का एक-एक मसला सरकार-निरपेक्ष जन-शक्ति से हल करना चाहिए। नहीं तो सारी सत्ता सरकार के हाथ में रहेगी और दुनिया में शान्ति रहना मुश्किल हो जायगा। अभी पाकिस्तान ने अपना शस्त्रास्त्र-संभार बढ़ाने के लिए अमेरिका की मदद लेना तय किया। उस समय अगर पंडित नेहरू का दिमाग ठिकाने पर न रहता और वे कहते कि "हम सबको युद्ध के लिए तैयार होना चाहिए" तो क्या हिंदुस्तान में

आपको अपना खाना खुद खाना होगा, अपनी नींद खुद सोना होगा। हिन्दुस्तान का मसला हिन्दुस्तान हल करेगा। बाबा ने अपना मसला हल किया है। उसने अपनी कोई मालकियत नहीं रखी। जैसे साँप दूसरे के घर में जाकर रहता है, वैसे बाबा भी दूसरे के घर में जाकर रहता है। बाबा ने साँप का चरित्र उठा लिया है। वह अपना घर बनाता नहीं। भागवत में अवधूत मुनि ने कहा है कि 'मैं साँप से यह बोध लेता हूँ', उसी तरह बाबा ने साँप से बोध लिया और अपनी मालकियत छोड़ दी। वह अपनी देह की भी मालकियत नहीं मानता, बल्कि यही मानता है कि यह सारी देह समाज की सेवा के लिए है। उसने स्वयं अपने लिए कोई वासना नहीं रखी। तो, बाबा का यह प्रश्न हल हो गया है। इसलिए बाबा को कोई समस्या नहीं हल करनी है। वह सारे देश की समस्या है, उसे सारा देश हल करेगा।

आज दुनिया में लोग बड़े-बड़े बम बनाते हैं, लेकिन ये सारे शस्त्रास्त्र खतम हो जायँगे। उन्हें कौन तोड़ेगा? जिन हाथों ने ये बनाये हैं, वे ही हाथ उन्हें तोड़ेंगे। ये सारी-की-सारी तलवारें, बंदूकें लोहे के कारखानों में वापस आयेंगी और वहाँ उनका रस बनाकर हल तैयार किये जायँगे। सारे-के सारे शस्त्रास्त्र पिघलने के लिए आनेवाले हैं, जहाँ उनसे अच्छे-अच्छे औजार बनेंगे—काटने के लिए हँसिया, खेती के लिए हल और सूत कातने के लिए तकुए। यह कौन बनायेगा? जिन लोगों ने ये शस्त्र बनाये, वे ही बनायेंगे। कब? जब विचार बदलेगा, तब। विचार बदलने पर सारी-की-सारी सृष्टि का संहार हो जाता और नयी सृष्टि पैदा होती है। सूर्य की किरणें फैलते ही सभी लोग अपने बिस्तर लपेट लेते हैं। जो बिछाते हैं, वे ही लपेट लेते हैं। इसी तरह जिन्होंने ये शस्त्रास्त्र बनाये हैं, उन्हींकी समझ में जब आयेगा कि इनसे कोई मसला हल नहीं होता, तो वे ही इन्हें खतम कर देंगे। लोग पूछते हैं कि इतनी बड़ी भारी योजनाएँ गिरेंगी? भूकंप में क्या होता है? जितना बड़ा मकान होता है, उतना ही वह जल्दी गिरता है। छोटे

अगर आपको किसी नेता की मदद मिलती, तो आप ईश्वर की मदद से वंचित रह जाते, ईश्वर की ज्योति आपके हृदय में प्रकट न होती। [अगर जमीन मिलती, तो आपको यही लगता कि उस नेता की ताकत के कारण मिली और नहीं मिलती, तो लगता कि उसमें ताकत नहीं है। याने यश और अपयश, दोनों आप उस नेता पर डालते। आपकी हृदय-शुद्धि का कोई सवाल ही नहीं रहेगा। इसलिए आज की हालत बहुत अच्छी है, उससे आपके अन्तर में जो ज्योति है, वह बढ़ेगी, आपको आत्म-निरीक्षण का मौका मिलेगा और ईश्वर ने चाहा, तो आपकी ही ताकत बढ़ेगी और आपकी शक्ति से ही काम होगा। लेकिन फिर अहंकार मत रखो कि हमारी शक्ति से काम हुआ। आपको समझना चाहिए कि यह कार्य नया है, इसलिए नये मनुष्यों के लिए ही है। नया कार्य पुराने लोगों के लिए नहीं होता। ईश्वर अगर नये कार्य पैदा करता है, तो उसके लिए नये मनुष्यों को भी पैदा करता है। पुराने नेता नये कार्य को पहचानें, यह आशा रखना व्यर्थ है। पुराने लोग आपके काम को अच्छा कहते हैं, आपको आशीर्वाद देते हैं, इससे ज्यादा क्या चाहिए ? समझना चाहिए कि भगवान् ने आपके लिए सब द्वार खोल दिये हैं, आप जाइये और बे-रोक-टोक काम कीजिये। आपके प्लैटफार्म पर बोलने के लिए कोई नहीं आता है, वह बिलकुल खाली है, आपके लिए ही खाली रखा है। बारिश में, ठण्ढ में, धूप में घूमना पड़ता है, छोटे-छोटे गाँवों में जाना पड़ता है, लोगों को बार-बार समझाना पड़ता है। कौन जायगा बारिश में और काम करेगा ? इसलिए वह सारा कार्यक्रम हमारे लिए खाली रखा है। अतः परमेश्वर का नाम लेकर उत्साह के साथ काम करो।

भवानी (कोइम्बतूर)
२३-८-'५६

शस्त्रों के हल बनेंगे

बाबा जप करेगा और काम आप लोग करेंगे। क्या आपका काम बाबा करेगा ? आपका खाना बाबा खायेगा ? आपकी नींद बाबा सोयेगा ?

के बीच बहुत अधिक सम्पर्क नहीं था। दिल्लीवालों को, जो उस समय 'हस्तिनापुरवाले' कहलाते थे, रोम का ज्ञान न था। रोमवालों को दिल्ली का भी कोई खास ज्ञान नहीं था। लेकिन दोनों प्रदेशों में राजा ही राज्य करते थे। पुराने यूनान में भी राजा होते थे। पुराने चीन, हिन्दुस्तान और दूसरे देशों में भी राजा ही राज्य करते थे। दुनिया के कुल लोगों ने एकत्र बैठकर उन राजाओं को पसन्द किया था, ऐसा नहीं; बल्कि जैसा कि मैंने अभी कहा, विभिन्न देशों का एक-दूसरे के साथ खास परिचय भी न था। अवश्य ही कई व्यापारी इधर-से-उधर आते-जाते थे, लेकिन वे थोड़े थे। कुछ प्रवासी भी आते-जाते थे। 'ह्यू-एन-त्संग' चीन से यहाँ आया था और यहाँ से भी 'परमार्थ' नाम का मनुष्य उधर गया था। इस तरह विचारों का कुछ-न-कुछ आदान-प्रदान होता रहा, फिर भी विभिन्न देशों में जो राज्य-संस्थाएँ बनीं, वे स्वतन्त्र ही थीं। उनमें वे स्वाभाविक ही बनीं, याने लोगों को यही सूझता था कि अच्छा राज्य-कारोबार चलाने के लिए कोई राजा होना चाहिए।

मेंढ़क और राजा

पुरानी कहानी है। एक बार मेंढ़कों को राजा की इच्छा हुई। उन्होंने सोचा, बिना राजा के अपना इन्तजाम अच्छा नहीं होता। उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि "हे भगवन्, हमारे लिए कोई राजा भेज दो।" भगवान् ने प्रार्थना सुन ली और एक बैल भेज दिया। बैल नीचे उतरा, तो पाँच-पचास मेंढ़क उसके नीचे दबकर मर गये। उन्होंने भगवान् से कहा, "हमें ऐसा राजा नहीं चाहिए। दूसरा कोई राजा भेज दीजिये।" भगवान् ने एक बड़ा भारी पत्थर ऊपर से नीचे फेंक दिया। उसके नीचे दो-चार सौ मेंढ़क खतम हो गये। वे बहुत घबराये। उन्होंने पुनः भगवान् से कहा, "आपने हम पर बड़ी आफत डाली।" भगवान् ने उत्तर दिया, "हमने जो बैल भेजा, वह हमारा वाहन है। पर उससे आपका काम नहीं बना, तो हमने एक स्फटिक-शिला भेजी, जिस पर हम

मकान टिक भी जाते हैं। उसके लिए क्या करना होगा? विचार फैलाना पड़ेगा और वही बाबा कर रहा है।

मुलुर (कोइम्बतूर)
६-१०-'५६

ग्रामदान की बुनियाद पर सर्वोदय का मकान

कुछ लोगों ने बीच का एक मार्ग निकाला है। कुछ अच्छा काम किया, देवता के सामने अपना नैवेद्य समर्पण किया, तो अब तारक देवता के सामने कितना समर्पण करोगे? आप इस पर सोचें। बाबा तो प्रेम के लिए घूमेगा, क्योंकि उसे सिर्फ भू-दान का काम नहीं करना है। भू-दान के बाद गरीबों को बसाना है, उनके संस्कार सुधारने हैं, ग्रामराज्य की स्थापना करनी है, सर्वत्र नयी तालीम शुरू करनी है। ग्रामदान तो बुनियाद है, उसके आधार पर सर्वोदय का मकान बनाना है।

तेनी (मदुराई)
२-१२-'५६

सर्वोदय याने शासन-मुक्ति : २८ :

तमिलनाड़ में सर्वोदय-विचार माननेवाले कम नहीं। राजनैतिक पक्षों में और सरकार के अन्दर काम करनेवालों में भी सर्वोदय पर श्रद्धा रखनेवाले कई सज्जन हैं। लेकिन सर्वोदय का एक मूलभूत विचार अभी लोगों को समझना बाकी है। वह सारी दुनिया को समझना बाकी है और तमिलनाड को भी समझना बाकी है।

सर्वत्र स्वतन्त्र राज्य-संस्थाएँ

कुल दुनिया में लोगों ने एक राज्य-संस्था बनायी है। पहले वह केवल एक व्यक्ति के हाथ में थी, जो 'राजशाही' कहलायी। एक जमाने में कुल दुनिया में उस प्रकार की राजशाही चली। पुराने जमाने में विभिन्न देशों

ही लोग रहते हैं, जिन्हें मुख्यमंत्री चुनता है। यह तो बिलकुल राजाओं की-सी ही व्यवस्था हो गयी। मुख्यमंत्री सारे मंत्रियों को चुनता और प्रधान-मंत्री (प्राइम मिनिस्टर) केन्द्रीय मंत्रिमण्डल को चुनता है—याने एक राजा और उसके चन्द सरदार, यही हुआ। पहले भी राजा अकेला राज्य न करता था, उसे भी दूसरे मंत्रियों की जरूरत पड़ती थी। अकबर के मंत्रिमण्डल में ९ मंत्री थे ही। उसने टोडरमल, अब्दुल फैजी आदि मन्त्रियों को चुना और सबने मिलकर राज्य चलाया।

केन्द्रित सत्ता के दोष

अब अगर प्रधानमंत्री अच्छा रहा, तो राज्य अच्छा चलेगा और वह अक्ल खो बैठेगा, तो आप सभी खतम हो जायँगे। आज सारी दुनिया को आग लगाने की शक्ति आइक, बुलगानिन, ईडन, चाओ और माओ के हाथ में आ गयी है। उनमें से किसी एक के भी दिमाग में दुनिया को आग लगाने का विचार आये, तो वह लगा सकता है। सारी दुनिया को आग लगाने के लिए इन चार-पाँच लोगों के एकमत की भी जरूरत नहीं। किसी एक का दिमाग बिगड़ जाय, तो भी काफी है। किन्तु अगर दुनिया में शान्ति रखनी है, तो उन सबको एकमत होना पड़ेगा। यह कितनी भयानक हालत है! कुल दुनिया के २५० करोड़ लोगों ने अपनी सत्ता आठ-दस लोगों के हाथ में सौंप दी है। आजकल सर्वत्र इन्हीं आइक-माइक और चाऊ-माऊ की चर्चाएँ चलती हैं। इन्हींकी चर्चाओं से अखबार भरे रहते हैं। कारण लोग घबराये हैं कि न मालूम ये लोग कब आग लगायेंगे!

दो दिन पहले हमने अखबार में पढ़ा कि कोयम्बतूर जिले के धारापुर में मक्खन का भाव छह रुपये से चार रुपया हो गया। अब बेचारे मक्खन बेचनेवालों की क्या हालत होगी? अभी लड़ाई शुरू नहीं हुई, तब ऐसी हालत है; तो महायुद्ध शुरू होने पर दाम कहाँ-से-कहाँ बढ़ जायेंगे, कोई नहीं कह सकता। हिन्दुस्तान के देहातों के लोग सर्वथा दुःखी हो

हमेशा आसन लगाकर बैठते हैं। वह भी आपको अच्छी नहीं लगी। अब कौन-सा राजा भेजा जाय ? इसलिए बिना राजा के ही आपका काम अच्छा चलेगा, यही आप समझ लीजिये।" तब से मेंढ़कों ने 'राजा' का नाम छोड़ दिया। मनुष्यों का भी यही हाल है।

सिर-गिनती की लोकशाही

अब सवाल है कि इनके बदले में राज्य-संस्था चाहिए या नहीं ? अगर चाहिए, तो उसका तरीका क्या हो ? आज तो पाँच साल में एक बार चुनाव या सिर-गिनती होती है। ५१ लोगों की एक राय पड़ी और ४९ लोगों की दूसरी राय पड़ी, तो ५१ लोगों के मतानुसार ही राज्य चलता है। पर ऐसा क्यों ? राजसत्ता पर ४९ लोगों का प्रतिबिंब क्यों न पड़े ? क्या इसका कोई उत्तर है ? क्या ४९ लोगों का कोई विचार ही नहीं ? सबके विचारों का मिश्रण होकर राज्य चले, यह अलग बात है। किन्तु यहाँ तो सिर्फ गिनती से राज्य चलता है। वह भी हरएक के सिर की एक गिनती ! सिर्फ रावण को दस मत का अधिकार रहेगा, बाकी सब लोगों को एक ही मत का अधिकार ! यह भी कोई राज्य-व्यवस्था है ?

उसमें भी जो लोग चुनकर आते हैं, वे कभी अच्छे होते हैं, तो कभी बुरे। राजाओं के जमाने में भी कभी अच्छे राजा आते थे, तो कभी बुरे। हाँ, उस समय कोई राजा यह दावा नहीं कर सकता था कि "मैं प्रजा की तरफ से यह सब कर रहा हूँ।" अगर वह गोली चलाता, तो अपनी जिम्मेवारी से चलाता था। लेकिन आज की सरकार गोली चलायेगी, तो यही कहेगी कि "लोगों की तरफ से, लोगों के हित के लिए गोली चलायी गयी।" इसका मतलब यह हुआ कि आज जो गोली चलायी जायगी, उसकी पूरी जिम्मेवारी जनता पर आयेगी। राज्य-संस्था में और लोकशाही में इतना ही फर्क पड़ा और कुछ भी नहीं। यहाँ कोई मुख्यमंत्री बनता है, तो वह अपना एक मन्त्रिमण्डल बनाता है। उसके मंत्रिमण्डल में वे

न पिलायेंगी ? क्या लोग अपने घर के आँगन में झाड़ू न लगायेंगे ? माता-पिता अपने बच्चों को कहानी, रामायण आदि न सुनायेंगे ? आज जो यह सब होता है, उनमें से क्या नहीं होगा, यह बताइये। हाँ, झगड़े न होंगे, इसलिए वकीलों को काम न मिलेगा, तो उनकी कुछ दूसरी व्यवस्था कर दी जायगी। किन्तु सरकार अगर दो साल छुट्टी ले ले, तो लोगों का भ्रम-निरसन तो हो जाय कि इन राज्य करनेवालों के बिना दुनिया का कुछ नहीं चल सकता। हाँ, अगर यह सूर्यनारायण न उगे, तो दुनिया खतम हो जायगी। दान और तप न होगा, ऊपर से परमेश्वर की कृपा की बारिश न हो, तो दुनिया खतम हो जायगी। ईश्वर की कृपा की बारिश की जरूरत है, सरकार की नहीं।

इन दिनों तमिलनाड़वाले कहते हैं कि हमें ईश्वर नहीं, सरकार चाहिए। क्या नसीब है! बेचारे ईश्वर के पीछे पड़े हैं, उसे मिटाने की बात करते हैं, लेकिन सरकार को तोड़ने की बात नहीं करते। भाई, ईश्वर को क्यों मिटाते हो ? वह तो एक कोने में बैठा है, उससे आपका क्या बिगड़ता है ? आप कहें कि वह 'है' तो है, 'नहीं' तो नहीं है। आश्चर्य की बात है कि जो बेचारा आपके कहने पर निर्भर है, उसके पीछे आप हाथ धोकर पड़े हैं, लेकिन जो सत्ता आपके सिर चढ़ बैठी है, जिसके नीचे आप खतम हो रहे हैं, उसे और भी सिर पर दृढ़ करते जायँ। हम समझ नहीं पाते कि यह कैसी अक्ल है ? जो ईश्वर बेचारा गरीब है, 'नहीं है' कहने पर उसे भी सह लेता है, उसके पीछे क्यों लगे हैं और जो आपके सिर पर प्रतिक्षण नाचते हैं, उन्हें सिर पर क्यों उठा रहे हैं ? मैं यह केवल 'हिन्दुस्तान सरकार' की बात नहीं करता और न 'मद्रास सरकार' की ही बात करता हूँ। उनका जिक्र करने का कोई कारण ही नहीं है। हम उनकी कोई हस्ती ही नहीं मानते। आप लोगों ने चुना है, तो वे सरकारें वहाँ बैठी हैं। हम तो आप लोगों की कीमत मानते हैं।

चोड़ीनायकल्लुर (मदुराई)

१०-१२-'५६

जायँगे। इन सबका एकमात्र कारण समूचे देश का भला-बुरा करने का अधिकार एक शख्स के हाथ में सौंपना ही है। आज का चित्र तो यह है कि हरएक देहात में किस तरह का काम हो, इसकी योजना दिल्ली में बनती है और वह भी वे लोग बनाते हैं, जो देहात का दर्शन करने की भी जरूरत नहीं मानते। वे ही तय करते हैं कि जितने बुनकर हैं, सबको लैसंस ले लेना चाहिए, जैसे कि शराब की दूकान खोलने के लिए लैसंस लेना पड़ता है। यह है लोगों की तरफ से चुनी हुई सरकार की योजना!

सर्वोदय याने शासन-मुक्ति

यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ कि सर्वोदय क्या है, यह विचार अभी समझना बाकी है। 'सर्वोदय' याने अच्छा शासन या बहुमत का शासन नहीं, बल्कि शासन-मुक्ति या शासन का विकेन्द्रीकरण ही है। कोई भी काम बहुमत से नहीं, सर्वसम्मति से और गाँव की जन-शक्ति से होना चाहिए।

सरकार को दो साल की छुट्टी दे दें

ये सभी राज्य चलानेवाले अगर शरीर-परिश्रम में लग जायँ, तो सारी दुनिया का कारोबार अच्छा चलेगा। आज तो ये लोग थोड़ा-सा काम करते और बहुत-सी छुट्टियाँ लेते रहते हैं। प्रोफेसर छह महीने की छुट्टी लेते हैं, विद्यार्थियों को तीन-तीन महीने की छुट्टी मिलती है, इस तरह अनेक को छुट्टी मिलती है।

मैंने एक बार सुझाव रखा कि इन राज्य करनेवालों को दो साल की छुट्टी देकर देख लेना चाहिए कि उनके बिना देश में क्या-क्या गड़बड़ी होती है। क्या मक्खन बनानेवाला मक्खन नहीं बनायेगा? क्या तरकारी बेचनेवाला तरकारी न बेचेगा? खरीदनेवाला उसे न खरीदेगा? क्या लोगों की शादियाँ न होंगी? क्या बच्चे जन्म न पायेंगे? मरनेवाले न मरेंगे? उन्हें जलाने के लिए जानेवाले न जायँगे? माताएँ बच्चों को दूध

न दिलायेंगी ? क्या लोग अपने घर के आँगन में झाड़ू न लगायेंगे ? माता-पिता अपने बच्चों को कहानी, रामायण आदि न सुनायेंगे ? आज जो यह सब होता है, उनमें से क्या नहीं होगा, यह बताइये । हाँ, झगड़े न होंगे, इसलिए वकीलों को काम न मिलेगा, तो उनकी कुछ दूसरी व्यवस्था कर दी जायगी । किन्तु सरकार अगर दो साल छुट्टी ले ले, तो लोगों का भ्रम-निरसन तो हो जाय कि इन राज्य करनेवालों के बिना दुनिया का कुछ नहीं चल सकता । हाँ, अगर यह सूर्यनारायण न उगे, तो दुनिया खतम हो जायगी । दान और तप न होगा, ऊपर से परमेश्वर की कृपा की बारिश न हो, तो दुनिया खतम हो जायगी । ईश्वर की कृपा की बारिश की जरूरत है, सरकार की नहीं ।

इन दिनों तमिलनाड़वाले कहते हैं कि हमें ईश्वर नहीं, सरकार चाहिए । क्या नसीब है ! बेचारे ईश्वर के पीछे पड़े हैं, उसे मिटाने की बात करते हैं, लेकिन सरकार को तोड़ने की बात नहीं करते । भाई, ईश्वर को क्यों मिटाते हो ? वह तो एक कोने में बैठा है, उससे आपका क्या बिगड़ता है ? आप कहें कि वह 'है' तो है, 'नहीं' तो नहीं है । आश्चर्य की बात है कि जो बेचारा आपके कहने पर निर्भर है, उसके पीछे आप हाथ धोकर पड़े हैं, लेकिन जो सत्ता आपके सिर चढ़ बैठी है, जिसके नीचे आप खतम हो रहे हैं, उसे और भी सिर पर रख करते जायँ । हम समझ नहीं पाते कि यह कैसी अक्ल है ? जो ईश्वर बेचारा गरीब है, 'नहीं है' कहने पर उसे भी सह लेता है, उसके पीछे क्यों लगे हैं और जो आपके सिर पर प्रतिक्षण नाचते हैं, उन्हें सिर पर क्यों उठा रहे हैं ? मैं यह केवल 'हिन्दुस्तान सरकार' की बात नहीं करता और न 'मद्रास सरकार' की ही बात करता हूँ । उनका जिक्र करने का कोई कारण ही नहीं है । हम उनकी कोई हस्ती ही नहीं मानते । आप लोगों ने चुना है, तो वे सरकारें वहाँ बैठी हैं । हम तो आप लोगों की कीमत मानते हैं ।

बोडीनायकनूर (मदुराई)

१०-१२-'५६

जायँगे। इन सबका एकमात्र कारण समूचे देश का भला-बुरा करने का अधिकार एक शख्स के हाथ में सौंपना ही है। आज का चित्र तो यह है कि हरएक देहात में किस तरह का काम हो, इसकी योजना दिल्ली में बनती है और वह भी वे लोग बनाते हैं, जो देहात का दर्शन करने की भी जरूरत नहीं मानते। वे ही तय करते हैं कि जितने बुनकर हैं, सबको लैसंस ले लेना चाहिए, जैसे कि शराब की दूकान खोलने के लिए लैसंस लेना पड़ता है। यह है लोगों की तरफ से चुनी हुई सरकार की योजना !

सर्वोदय याने शासन-मुक्ति

यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ कि सर्वोदय क्या है, यह विचार अभी समझना बाकी है। 'सर्वोदय' याने अच्छा शासन या बहुमत का शासन नहीं, बल्कि शासन-मुक्ति या शासन का विकेन्द्रीकरण ही है। कोई भी काम बहुमत से नहीं, सर्वसम्मति से और गाँव की जन-शक्ति से होना चाहिए।

सरकार को दो साल की छुट्टी दे दें

ये सभी राज्य चलानेवाले अगर शरीर-परिश्रम में लग जायँ, तो सारी दुनिया का कारोबार अच्छा चलेगा। आज तो ये लोग थोड़ा-सा काम करते और बहुत-सी छुट्टियाँ लेते रहते हैं। प्रोफेसर छह महीने की छुट्टी लेते हैं, विद्यार्थियों को तीन-तीन महीने की छुट्टी मिलती है, इस तरह अनेक को छुट्टी मिलती है।

मैंने एक बार सुझाव रखा कि इन राज्य करनेवालों को दो साल की छुट्टी देकर देख लेना चाहिए कि उनके बिना देश में क्या-क्या गड़बड़ी होती है। क्या मक्खन बनानेवाला मक्खन नहीं बनायेगा ? क्या तरकारी बेचनेवाला तरकारी न बेचेगा ? खरीदनेवाला उसे न खरीदेगा ? क्या लोगों की शादियाँ न होंगी ? क्या बच्चे जन्म न पायेंगे ? मरनेवाले न मरेंगे ? उन्हें जलाने के लिए जानेवाले न जायँगे ? माताएँ बच्चों को दूध

का मादा बढ़ेगा, वैसे-ही-वैसे सरकार की जरूरत कम होती जायगी। फिर सरकार आज्ञा देनेवाली नहीं, बल्कि सलाह देनेवाली संस्था बन जायगी। इस तरह जैसे-जैसे जनता का नैतिक स्तर ऊपर उठेगा, वैसे-ही-वैसे हुकूमत की, हुकूमत चलाने की शक्ति क्षीण होती जायगी—हुकूमत कम होती जायगी। आखिर में तो हम यही आशा करते हैं कि हुकूमत मिट भी जायगी।

शासनहीनता, सुशासन और शासन-मुक्ति

सर्वोदय के अन्तिम आदर्श में हम शासन-मुक्त समाज की कल्पना करते हैं। हम 'शासन-हीन' शब्द का प्रयोग नहीं करते। शासनहीनता तो कई समाजों में होती है, जहाँ अन्धाधुन्ध कारोबार चलता है। जहाँ किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं होती, दुर्जन लोग चाहे जो करते हैं, उस अवस्था को 'शासन-हीन' कहा जायगा। ऐसा शासन-हीन हमारा आदर्श नहीं। हम तो चाहते हैं कि शासनहीनता मिटकर 'सुशासन' हो और उसके बाद सुशासन मिटकर शासन-मुक्त समाज बने। शासन-मुक्त समाज में व्यवस्था न रहेगी, सो बात नहीं। उसमें व्यवस्था तो रहेगी, पर वह गाँव-गाँव में बँटी रहेगी। उसमें दण्ड की आवश्यकता नहीं रहेगी। समाज में कुछ नैतिक विचार इतने मान्य होंगे कि समाज के आचरण में आये होंगे, समाज के छोटे-छोटे लड़कों को भी उसकी तालीम मिली होगी। ऐसे समाज के लोग खुद होकर नैतिक विचार को मानकर चलेंगे। वह समाज स्वयं शासित होगा।

संग्रह भी पाप है

आज लाखों लोग चोरी नहीं करते, तो वे इसलिए नहीं करते कि चोरी के विरुद्ध कानून है। कानून है तो ठीक ही है, पर लाखों लोग इसलिए चोरी नहीं करते कि 'चोरी करना गलत है' यह नैतिक विचार उन्हें मान्य है। जैसे आज चोरी करना गलत है, यह मान लिया गया, इसलिए सब लोग चोरी न करना सहज ही मान लेते हैं—चाहे किसी

शासनहीनता : सुशासन : शासन-मुक्ति : २९ :

प्रश्न : सरकार का स्वरूप कैसा होना चाहिए ?

उत्तर : यह तो लोगों की हालत पर निर्भर है। मान लीजिये कि किसी कुटुम्ब में बिलकुल छोटे-छोटे बच्चे और जवान माता-पिता हैं। वहाँ माता-पिता की आज्ञा ही चलेगी और छोटे बच्चों को उनकी आज्ञा में रहना पड़ेगा, यही उस कुटुम्ब का स्वरूप होगा। जिस कुटुम्ब में लड़के बिलकुल छोटे नहीं हैं; समझदार हो गये हों और माता-पिता प्रौढ़ होकर कुछ काम कर सकते हों, वहाँ दोनों के सहयोग से काम चलेगा, केवल माता-पिता की आज्ञा नहीं चलेगी—उस कुटुम्ब का स्वरूप यह होगा। और जिस कुटुम्ब में लड़के प्रौढ़ और माता-पिता बिलकुल बूढ़े हो गये हों, वहाँ लड़के ही सारा कारोबार चलायेंगे। माता-पिता सिर्फ सलाह देंगे—न उनकी आज्ञा चलेगी, न उनका बच्चों के साथ सहयोग होगा।

सरकार का स्वरूप जनता की शक्ति पर निर्भर

इस तरह कुटुम्ब का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार का होगा। लेकिन तीनों हालतों में उसका मुख्य तत्त्व प्रेम ही रहेगा और उसे बाधा न पहुँचे, इसी दृष्टि से उसके बाह्य स्वरूप में परिवर्तन होगा। जैसे कुटुम्ब का मूल-तत्त्व प्रेम है, वैसे ही समाज का मूल-तत्त्व 'सर्वोदय' होना चाहिए। 'सर्वोदय' समाज का मूल-तत्त्व दिखानेवाला एक उत्कृष्ट शब्द है। जिस समाज में प्रजा-जन बिलकुल अज्ञानी हों, उन्हें सोचने की शक्ति प्राप्त न हुई हो, उस समाज की सरकार के हाथ में ज्यादा शक्ति रहेगी और लोग सरकार से संरक्षण की अपेक्षा रखेंगे, जैसे छोटे बच्चे माता-पिता से संरक्षण की अपेक्षा रखते हैं। जहाँ प्रजा की दशा अज्ञानी की और हालत कमजोर हो, वहाँ की सरकार सर्वोदय चाहनेवाली, लेकिन कल्याणकारी सरकार होगी। उस सरकार को 'माँ-बाप सरकार' का स्वरूप आयेगा। किन्तु जैसे-जैसे प्रजा की शक्ति, योग्यता और ज्ञान बढ़ेगा, प्रजा में परस्पर सहयोग

'शासन-मुक्ति' के पेट में आ जाती है। जैसे माता के पेट में गर्भ रहता है, तो उसे माता से पोषण मिल जाता है—यह जानता भी नहीं कि उसे माता से पोषण मिल रहा है—वैसे ही सर्वोदय-विचार से उसके गर्भ की समानतावादी समाज-रचना आदि बातों को पोषण मिलता है। इसमें 'अ-शासन' या 'शासन-हीनता' से 'सु-शासन' की ओर और 'सु-शासन' से 'शासन-मुक्ति' की ओर जाना है। इस तरह हम एक-एक कदम आगे बढ़ेंगे। लेकिन अगर हमारा अन्तिम आदर्श शासन-मुक्ति का होगा, तो हमें सुशासन भी इस तरह चलाना होगा कि शासन-मुक्ति के लिए राह खुली रहे। जैसे साधारण असंयमी मनुष्य को गृहस्थाश्रम की शिक्षा दें, तो वह गृहस्थ बनता और उसमें संयम आ जाता है; किन्तु यदि वह गृहस्थाश्रम में ही स्थिर हो जाय और वानप्रस्थाश्रम की ओर न बढ़े, तो आगे नहीं बढ़ सकता। फिर तो जो गृहस्थाश्रम संयम के लिए उसे साधक हुआ, वही बाधक बन जाता है। सारांश, असंयम मिटाने के लिए गृहस्थाश्रम की स्थापना करनी होगी और गृहस्थ को अपने सामने वानप्रस्थ का आदर्श रखना होगा—गृहस्थाश्रम इस तरह चलाना होगा कि आगे कभी-न-कभी वानप्रस्थ लेना है। इसी तरह समाज की आज की हालत में हमें एक तरफ से शासन-मुक्ति की ओर ध्यान देते हुए सुशासन चलाना चाहिए और दूसरी तरफ से शासन-मुक्ति के लिए जनशक्ति संगठित करने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

हमारा दोहरा प्रयत्न

इसीलिए हम भूदान-यज्ञ में जनता की शक्ति को जगाना चाहते हैं, जनता को अपने पैरों पर खड़ा करना चाहते हैं। दूसरी ओर शराबबन्दी के लिए कानून बने, ऐसी भी अपेक्षा करते हैं, क्योंकि शराबबन्दी के खिलाफ काफी जनमत तैयार हो चुका है। अगर शराबबन्दी न होगी, तो देश में सुशासन न होगा—दुःशासन होगा, जो शासन-मुक्ति में बाधा देगा। इसलिए हम शासनमुक्ति चाहते हुए शराबबन्दी-कानून

दण्ड या कानून का भय न हो, तो भी चोरी न करेंगे। इसी तरह लोग 'संग्रह' को भी बुरा मानने लगेंगे। वे अपने पास संग्रह न करेंगे। कुछ संग्रह हो जायगा, तो फौरन बाँट देंगे। जिस तरह आज समाज में व्यभिचार बहुत बुरा माना जाता है, लोग उससे बचे ही रहना चाहते हैं—चाहे उसके विरुद्ध कोई सरकारी कानून न हो, तो भी लोगों के विचार में व्यभिचार न करना कानून माना जाता है। इसी तरह समाज में 'संग्रह गलत है' यह विचार मान्य हो जायगा। फिर उस समाज में 'अपरिग्रह' भी माना जायगा। तब आज के कई झमेलों का समाधान हो जायगा। 'चोरी करना पाप है' यह विचार ठीक है, पर वह एकांगी है। किन्तु जब 'संग्रह करना पाप है' यह विचार भी समाज को मान्य हो जायगा, तो दोनों मिलकर पूर्ण विचार बन जायगा। तब समाज का स्वास्थ्य बढ़ेगा। आज जिसके पास ज्यादा संग्रह है, उसीका समाज में गौरव होता है, किन्तु कल ऐसी स्थिति आयेगी कि जिसके पास ज्यादा संग्रह हो, उसकी अवस्था चोर जैसी मानी जायगी।

सर्वोदय-समाज की ओर

इस तरह जब समाज-रचना का आधार 'अपरिग्रह' हो जायगा, तब सरकार की शक्ति की भी कम-से-कम आवश्यकता पड़ेगी। गाँव के लोग ही अपने गाँव का सारा कारोबार देख लेंगे और ऊपर की सरकार केवल निमित्तमात्र रहेगी। वह केवल सलाह देनेवाली सरकार होगी, हुकूमत चलानेवाली नहीं। ऐसी सरकार में जो लोग होंगे, वे नीतिवान्, चरित्रवान् और सदाचारी होंगे। इसलिए उनके हाथ में नैतिक शक्ति रहेगी, भौतिक नहीं। हम इसी प्रकार का सर्वोदय-समाज लाना चाहते हैं। हमें इसी दिशा में अपनी सारी कोशिश करनी चाहिए।

सुशासन की बातें शासन-मुक्ति के गर्भ में

आजकल 'समाजवादी समाज-रचना' या और भी जो बातें चलती हैं, सारी 'सुशासन' की बातें हैं, शासन-मुक्ति की नहीं। इसलिए वे

जनता पहले आगे आयेगी और जनता के पीछे-पीछे आने का काम सरकार का होगा। इस तरह सुशासन भी रहेगा और हम शासन-मुक्ति की तरफ भी आगे बढ़ेंगे। हम शासन-मुक्ति की कोशिश करते हैं, तो कम-से-कम सुशासन तो हो ही जायगा। करोड़ रुपया प्राप्त करने की आशा रखते हैं, तो लाख रुपया तो हो ही जाता है।

दिगापहंडी
१४-९-'५५

सरकार बड़ी भयानक वस्तु

सरकार ऐसी भयानक वस्तु है कि उससे भयानक दूसरी चीज नहीं। दुनिया में कभी भी इतनी मजबूत सरकार नहीं थी, जितनी आज है। सरकार चलानेवालों का दावा है कि प्रजा का कल्याण करने के लिए ही उन लोगों ने अपने हाथ में सत्ता रखी है। समाज को इतना नियन्त्रित कर दिया है कि कुल लोगों की सत्ता मुट्ठीभर लोगों ने अपने हाथों में कर रखी है। विभिन्न देशों के प्रतिनिधि अपने ही हाथों में उन-उन देशों का भला-बुरा सोचने का अधिकार रखते और लोग दीन-हीन, लाचार रहते हैं। बेचारे कहते हैं कि इनके बिना हमारा काम कैसे चलेगा? आज जनता को नाममात्र का वोट का अधिकार दिया गया है।

बुद्धि-स्वातन्त्र्य पर प्रहार

रूस में भी आज यही हो रहा है। प्रजा को कितना अच्छा खाना दिया जाय, यह बात भी सरकार ही तय करती है। पर यह चीज गौण है। मुख्य चीज है, बुद्धि का स्वातन्त्र्य। सरकार जनता की बुद्धि का भी नियन्त्रण करती है। जो चीज आज तक किसी भी ज्ञानी मनुष्य के हाथ में न थी, वह आज के शिक्षा-विभाग के हाथ में है। ज्ञानी मनुष्यों ने उपनिषद् लिखे, लेकिन वे ऐसी जबरदस्ती नहीं कर सकते थे कि उन्हींकी पुस्तक आप पढ़ें। पर आज शिक्षा-विभाग का अधिकारी जो किताब तय करता है, सारे विद्यार्थियों को उसीका अध्ययन करना पड़ता और उसीकी

की माँग भी करते हैं। लेकिन जमीन के बारे में हम चाहते हैं कि गाँव की कुल जमीन गाँव की हो। इस तरह उधर तो हम स्वतन्त्र रीति से लोक-शक्ति संगठित करने का प्रयत्न करते हैं और इधर शासन को सुशासन में परिवर्तित करने की कोशिश भी करते हैं।

कानून याने समाप्तम्

गाँव की कुल जमीन गाँव की बन जाय, अगर इस तरह का सक्रिय लोकमत बन जाय याने लाखों लोग भूदान दे दें, तो आगे गाँव की जमीन गाँव की हो, इस तरह का कानून बनेगा। वह कानून लोकमतानुसारी होगा—वह लोगों को प्रिय होगा, अप्रिय नहीं। मान लीजिये कि हर गाँव के ८० फीसदी लोगों ने जमीन दान दी और २० फीसदी लोग दान देने को तैयार न हुए। उन्हें मोह है, इसलिए तैयार नहीं हुए, पर उन्होंने विचार को तो पसन्द किया ही। उस हालत में भी सरकार का कानून बन सकता है। इसलिए इधर हमारी कोशिश तो यही रहेगी कि सारे-के-सारे लोग इस विचार को पसन्द करें, ताकि सरकार के लिए सिर्फ उसका नोट लेना, उस पर मुहर लगाना, इतना ही काम बाकी रह जाय। जैसे हम एक अध्याय पूरा-का-पूरा लिख डालते हैं और जहाँ लिखना समाप्त होता है, वहाँ आखिर में 'समाप्तम्' लिख देते हैं, वैसे ही जनता एक काम को कर डालती है, तो वहाँ 'समाप्तम्' लिखने का काम सरकार का होता है। लेकिन लोक-शक्ति से अध्याय लिखने का काम पूरा न हो, अध्याय अधूरा ही रह जाय और उस पर भी सरकार 'समाप्तम्' लिख दे, तो केवल वह लिखने से अध्याय पूरा नहीं होता, पूरा लिख डालने से अध्याय पूरा होता है। जैसे बाल-विवाह नहीं होना चाहिए। इसका अध्याय हम लिख रहे थे, तो सरकार ने बीच में लिख डाला कि 'समाप्तम्'। परन्तु वह समाप्त नहीं हुआ और आज भी बाल-विवाह जारी है।

सरकार का भी एक काम होता है। अन्तिम अवस्था में सरकार का कोई काम नहीं होता, पर आज की हालत में होता है। लेकिन आज भी

राज्य नहीं, स्वराज्य

आज देश में 'निष्काम-सेवा' करीब-करीब गायब है। निष्काम सेवा याने ऐसी सेवा, जिसमें अपने लाभ की इच्छा न हो, अपने पक्ष के लाभ की इच्छा न हो और न उसमें प्रतिष्ठा की भी बात हो। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले निष्काम-सेवा का लोगों को कुछ अभ्यास था। उन दिनों कांग्रेस में कई लोग केवल स्वराज्य की भावना से निष्कामता से काम करते थे। रचनात्मक काम करनेवाले भी गरीबों की सेवा निष्काम बुद्धि से करते थे।

स्वराज्य के बाद निष्काम-सेवा नहीं रही

पर स्वराज्य-प्राप्ति के बाद देश बदल गया। लोग अनेक राजनैतिक पक्षों में बँट गये। फिर कुछ सेवक, जो पहले लोगों की सेवा करते थे, सरकार के अन्दर दाखिल हो गये। स्वराज्य हाथ में लेने के बाद उसे चलाना चाहिए, यह भी एक कर्तव्य माना गया, इसलिए योग्यता और वजन रखनेवाले लोग सरकार के अन्दर गये। जो लोग सरकार में गये, वे निष्काम नहीं हो सकते, ऐसा नहीं; कुछ तो हो ही सकते हैं। हम जानते हैं कि महाराज जनक अत्यन्त निष्काम थे और उन्हींकी मिसाल निष्काम कर्म के बारे में भगवद्गीता में दी गयी है। लेकिन वैसे लोग हाथ की उँगलियों पर ही गिने जायँगे। बाकी बहुत से लोग वहाँ सत्ता का ही अनुभव करते हैं। इसलिए उनसे निष्काम-सेवा नहीं बनती।

रचनात्मक काम करनेवाले पहले सरकारी मदद की अपेक्षा न करते थे। एक प्रकार से उनका काम सरकार के विरुद्ध ही था। इसलिए उन्हें काफी त्याग करना पड़ता था। उन्हें कुछ तनख्वाह भी दी जाती थी, तो वह बिलकुल कम-से-कम दी जाती थी और उनका सबका भार जनता पर ही था। लेकिन आज हालत बदल गयी है, आज सरकार की योजना

परीक्षा देनी पड़ती है। अगर 'फासिस्ट' सरकार हो, तो विद्यार्थियों को 'फासिस्ट' विचारों की किताबें मिलेंगी। पूँजीवादी सरकार में पूँजीवादी विचारों की किताबें विद्यार्थियों को पढ़नी होंगी। कम्युनिस्टों की सरकार होगी, तो उनके विचारों का अध्ययन विद्यार्थियों को करना होगा। सारांश, जैसी सरकार होगी, वैसी विद्या विद्यार्थियों को दी जायगी। जिन्हें स्वातन्त्र्य का ज्यादा-से-ज्यादा अधिकार है, उनके दिमागों में बने-बनाये विचार ठूँसे जायँगे!

स्वातन्त्र्य का अधिकार सबसे ज्यादा विद्यार्थियों को है। वे कह सकते हैं कि ज्ञान में कोई जबरदस्ती नहीं चल सकती, हम जो ठीक समझेंगे, वही पढ़ेंगे। प्राचीनकाल के ऋषि कहते थे : **'यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि'**—हमारी जो अच्छी चीजें हों, उनका अनुकरण करो, हमारी जो चीजें बुरी हों, उनका नहीं। लेकिन इन दिनों तो अनुशासन को गुणों का राजा माना जाता है! लोग कहते हैं कि विद्यार्थियों में अनुशासन कम हो गया है। हमें तो आश्चर्य होता है कि इतनी रद्दी तालीम में भी विद्यार्थी अनुशासन का पालन क्यों करते हैं? मुझे याद है कि मेरे कॉलेज के दिनों में एक प्रोफेसर थे, जिनका व्याख्यान मुझे पसन्द नहीं था। मुझे लगता था कि इनके व्याख्यान से मेरा कल्याण नहीं हो सकता, तो उसे मैं क्यों सुनूँ? और इसलिए मैं क्लास के बाहर चला जाता था।

विजयवाडा

१८-१२-'५५

है कि हमें कुछ मिलना चाहिए। अभी कांग्रेस ने जाहिर किया है कि जिन्होंने कुछ काम किया है, वे अपने काम का हिसाब पेश करें और उसके अनुसार उन्हें कुछ पद आदि मिलेगा। कुछ लोग अपने काम की रिपोर्ट पेश करेंगे कि हमने इतने-इतने दिन काम किया, इसलिए हम चुने जायँ। उन्हें ऐसी अपेक्षा रखने का अधिकार भी है, लेकिन उनकी निष्कामता कहाँ रही? वह शुद्ध सेवा नहीं, वह तो सौदा हो गया।

राजसत्ता से धर्म-प्रचार सम्भव नहीं

अब मैं दूसरा हिसाब लगाऊँगा। आज की हालत में जन-शक्ति पर श्रद्धा और जन-सेवा पर विश्वास बहुत ही कम दीखता है। राजनैतिक पक्षों में काम करनेवाले मानते हैं कि सत्ता के जरिये ही काम होगा, उनका सरकार की शक्ति पर जो विश्वास है, वह जन-शक्ति पर नहीं है। वे कुछ जन-सेवा भी करेंगे, तो इतना ही करेंगे कि सरकार के जरिये लोगों को कुछ मदद पहुँचायेंगे। लोग भी उनसे ऐसा ही पूछेंगे कि आप हमारी तरफ से प्रतिनिधि बने हैं, तो आपने हमारे लिए क्या किया? इसलिए लोगों को उनकी अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं और राजनैतिक पक्षों में काम करनेवालों का भी जन-शक्ति पर विश्वास नहीं। इस हालत में स्वतन्त्र जन-सेवा की कोई कीमत नहीं रही। फिर भी वे लोग सेवा करेंगे, क्योंकि उसके जरिये वे सत्ता पर काबू रख सकेंगे। वे सोचते हैं कि हम सेवा करेंगे, तभी लोग हमें चुनेंगे और तभी हमारे हाथ में सत्ता आयेगी। इसलिए वह सेवा सत्ता की दासी है।

लोक-जीवन में सुधार, परिवर्तन, लोगों में क्रान्ति लाना आदि काम सरकारी शक्ति से कभी नहीं हो सकता। अगर सरकारी शक्ति से जन-क्रांति होना सम्भव होता, तो बुद्ध भगवान् के हाथ में जो राज्य था, उसे वे क्यों छोड़ते? इन दिनों लोग बुद्ध भगवान् की नहीं, बल्कि अशोक की मिसाल देते हैं। वे कहते हैं कि अशोक का परिवर्तन हुआ और उसने धर्म-प्रचार किया, तो फिर राज्य-शक्ति से धर्म-प्रचार हुआ न? हम कहना

में कुछ रचनात्मक कार्यकर्ता दाखिल हुए हैं। वहाँ उन्हें अनेक प्रकार की सहूलियतें मिलने लगी हैं। उन्हें त्याग की आवश्यकता भी उतनी नहीं रही। उन्हें जनता पर आधार रखने की आवश्यकता भी न रही। उनकी यह श्रद्धा हो गयी कि सरकार पर आधार रखकर ही काम हो सकता है। इस हालत में भी निष्काम-सेवा करनेवाले हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम, तीन-चार हाथों की उँगलियों पर उनके नाम गिने जा सकते हैं।

राजनैतिक पक्षवालों की हालत

जो लोग राजनैतिक पक्षों में बँट गये हैं, उनमें से कुछ लोग पद लिये हुए हैं, कुछ म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि में गये, तो कुछ कांग्रेस संस्था के अध्यक्ष, मन्त्री आदि बने। इन दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष आदि के हाथ में भी बहुत सत्ता रहती है, क्योंकि आज कांग्रेस शासनकर्त्री संस्था है। ऐसी हालत में निष्काम सेवक कौन होंगे? दुनिया में कुछ तो होंगे ही, ईश्वर के भक्त कहीं-न-कहीं होते हैं, तो वहाँ भी होंगे। जो लोग दूसरे राजनैतिक पक्षों में काम करते हैं, उनके हाथ में सत्ता नहीं है, किन्तु वे सत्ता के अभिलाषी हैं और उनका सारा ध्यान इसीमें रहता है कि कांग्रेस के या सरकार के काम में कहाँ त्रुटियाँ हैं। इस तरह दूसरों की गलतियाँ गिननेवाला अपना चित्त शुद्ध नहीं रख सकता। जहाँ चित्त-शुद्धि का अभाव आया, वहाँ निष्काम-सेवा कहाँ से होगी? फिर भी उनमें कुछ लोग निष्काम होंगे।

सेवा का सौदा

इस तरह स्वराज्य-प्राप्ति के बाद जो सेवा हो रही है, उसका हिसाब हमने लगा लिया। अब भी 'रामकृष्ण मिशन' जैसी कुछ संस्थाएँ काम करती हैं, जो पहले भी करती थीं। उनमें कुछ निष्काम सेवक जरूर होंगे। निष्काम सेवा ही सच्ची सेवा है। बाकी सेवा तो एक प्रकार का सौदा है। किसीने जेल में कई साल बिताये, तो वह कहता है हमें भी कुछ मिलना चाहिए। किसीने भूदान में कुछ त्याग किया, तो वह भी कहता

रवीन्द्रनाथ का जो असर आज बंगाल पर है, वह बंगाल के किसी भी राजा का नहीं। शंकर, रामानुज, माणिक्कवाचकर और नम्मालवार का तमिलनाड पर आज तक जो असर है, वह न किसी पांड्य का है, न पल्लव का है और न चोल राजा का है। यहाँ पर सब लोग भस्म लगाते हैं, तो क्या वह किसी पांड्य या चोल राजा की आज्ञा से लगाते हैं? आखिर किसके नाम पर लोग अपने जीवन में इतना त्याग करते हैं? विवाह-संस्था जैसी उत्तम संस्था किसने बनायी? उसमें कौन-सा कानून आता है? माताएँ बच्चों की परवरिश करती हैं, तो किस राजा के या किस सरकार के हुक्म से? असंख्य यात्राएँ चलती हैं, वह किसकी आज्ञा से? मरने पर श्मशान-विधि और श्राद्ध-विधि आदि होती है, तो किसकी आज्ञा से? यहाँ पर जो 'तिरुक्कुरल' पढ़ा जाता है, 'तिरुवाचकम्' का रटन किया जाता है, वह क्या किसी युनिवर्सिटी की आज्ञा से होता है, या किसी म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की आज्ञा से? आज लोगों की जो विवेक-बुद्धि बनी है, वह किसने बनायी है? आज इतना दान दिया जाता है, वह किसकी आज्ञा से दिया जाता है? इतना सारा तप, उपवास, एकादशी, रोजा किया जाता है, वह किसकी आज्ञा से? हिन्दुस्तान में बहुत-से लोग स्नान किये बगैर दोपहर का भोजन नहीं करते, वह किसकी आज्ञा से?

सिकन्दर और डाकू की कहानी

सिकन्दर बादशाह की कहानी है। एक डाकू को पकड़कर उसके सामने लाया गया था। सिकंदर ने डाकू से पूछा : "तू क्या करता है?" डाकू ने कहा : "तू जो करता है, वही मैं करता हूँ।" इस पर सिकंदर ने कहा : "तेरी और मेरी बराबरी ही क्या? मैं तो बादशाह हूँ।" डाकू बोला : "तू जो काम करता है, वही मैं भी करता हूँ। लेकिन तू सफल हुआ और मैं नहीं, इतना ही फर्क है। चोर तू भी है और मैं भी, परन्तु तू सफल चोर है, इसलिए लोगों के सिर पर बैठा है और मैं असफल चोर

चाहते हैं कि वे लोग इतिहास का जरा भी ज्ञान नहीं रखते। जब से बुद्ध-धर्म को सरकारी शक्ति का बल मिला, तब से बुद्ध-धर्म के हिन्दुस्तान से उखड़ने की तैयारी हुई। जब से ईसाई-धर्म को कान्स्टेन्टाइन के बाद राजसत्ता का आधार मिला, तब से ईसाई-धर्म नाममात्र का रहा। ईसा के पहले अनुयायी जैसे शुद्ध धर्म का आचरण करते थे, उसका लोप हुआ, चर्च बना और ढोंग पैदा हुआ। यहाँ पर शैव-वैष्णव-जैन दिखाई देते हैं, परन्तु जब से इनको राजसत्ता का बल मिला, तब से हजारों लोग शैव, वैष्णव और जैन बने। लेकिन वे वास्तव में शैव, वैष्णव या जैन नहीं, बल्कि राजनिष्ठ और राजभक्त बने। आज दुनिया में गिनती के लिए तो हजारों शैव, वैष्णव, जैन और लाखों हिन्दू, ईसाई हैं; लेकिन उनका आचरण क्या है ?

राजसत्ता के जरिये सद्‌विचार या सद्धर्म फैल सकता है; यह कल्पना ही मन से निकाल दीजिये। बल्कि अगर सच्चे अर्थ में राजसत्ता धर्म के साथ जुड़ जाय, तो धर्म राजसत्ता को ही खतम कर देगा। दोनों एक साथ नहीं रह सकेंगे। अन्धकार और सूर्यनारायण एक साथ नहीं रह सकते। धर्म अगर सचमुच में राजसत्ता के साथ आ गया, तो वह राजसत्ता को तोड़ देगा। दूसरों पर सत्ता चलाना धर्म-विचार नहीं। सबकी सेवा करना, प्रेम से समझाना ही धर्म-विचार है। लाख-लाख लोग एकदम धर्मनिष्ठ बनें, यह भी क्या कोई धर्मनिष्ठा है ?

किसी राजा की आज्ञा से काम नहीं चलता

हिन्दुस्तान का कुल इतिहास देखने से यह मालूम होता है कि हिन्दुस्तान का समाज जहाँ-जहाँ आगे बढ़ा, वहाँ-वहाँ सत्पुरुषों के ही जरिये आगे बढ़ा। बुद्ध और महावीर का जो असर आज भी भारत पर दीखता है, वह उनके जमाने के किसी भी राजा का नहीं रहा। कबीर और तुलसीदास का जो प्रभाव आज उत्तर प्रदेश पर है, वह उत्तर प्रदेश के किसी राजा का नहीं है। चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस और

पैदा करती है, लोगों के हृदय में आत्मशक्ति का भान पैदा करता है। अपने गाँव का कारोबार हम ही चला सकते हैं, कोई भी बाहर की सत्ता हमें रोक नहीं सकती, ऐसी ताकत पैदा होनी चाहिए।

स्वराज्य के दो लक्षण

दुनिया की दूसरी कोई भी सत्ता अपने ऊपर न चलने देना स्वराज्य का एक लक्षण है और दूसरे किसी पर अपनी सत्ता न चलाना स्वराज्य का दूसरा लक्षण है। किसीकी सत्ता नहीं मानेंगे और हम दूसरे किसी पर अपनी सत्ता नहीं चलायेंगे, ये दोनों बातें मिलकर ही स्वराज्य होता है। यह सब काम सरकारी शक्ति से नहीं, लोकमानस में परिवर्तन लाने से ही होगा। उसके लिए हृदय-शुद्धि की जरूरत है। हृदय-शुद्धि करने का कार्यक्रम जनता में जाकर करना होगा। उसके लिए यज्ञ, दान, तप आदि सब हैं।

मलयकोटाई (कोयम्बतूर)
२९-१०-'५६

सत्ता कैसे मिटे ?   : २१ :

आज लोगों ने धर्म-कार्य और सेवा-कार्य का जिम्मा चंद लोगों पर सौंप दिया है। या यों कहिये कि चंद लोगों ने कुशलता से कुल जिम्मा या सत्ता अपने हाथ में ले ली और लोगों ने उसे सह लिया। यह भी कह सकते हैं कि लोगों ने उन्हें सत्ता दी या यह भी कह सकते हैं कि उन्होंने सत्ता ली और लोग उसके वश में हो गये।

'सत्ता के जरिये सेवा' भ्रांति-मंत्र

जो भी हुआ हो, लेकिन जो हुआ है, उसके मूल में यही एक श्रद्धा रही कि दुनिया में सत्ता के जरिये काम जल्दी और अच्छा होता है। इसी-

हूँ, इसलिए तेरे सामने खड़ा हूँ। फिर भी तू मन में यह भलीभाँति समझ ले कि तेरी और मेरी योग्यता समान है।" यह सुनकर सिकन्दर अवाक् रह गया। यहाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य चला, उसमें क्लाइव, वॉरेन हेस्टिंग्ज आदि क्या महापुरुष थे? उस समय उधर इंग्लैंड की पार्लमेण्ट में हेस्टिंग्ज पर केस चला था। उसमें बर्क (Burke) ने अभियोग (Impeachment) पर जो व्याख्यान दिया, उसे पढ़ने पर मालूम होता है कि हेस्टिंग्ज वगैरह कैसे बदमाश थे। लेकिन हिन्दुस्तान में उनकी सत्ता चली और वे राज्यकर्ता बने।

जनशक्ति से स्वराज्य

अब अंग्रेजों के हाथ से हमारे हाथ में सत्ता आयी और हम राज्यकर्ता बने हैं। शास्त्रों में लिखा है कि 'राज्यान्ते नरकप्राप्तिः'—राज्य-समाप्ति पर नरक-प्राप्ति होती है। याने राज करनेवाला राजा मरने पर नरक में जाता है। लोग पूछेंगे कि क्या फिर स्वराज्य न चलाना चाहिए? हम कहते हैं कि स्वराज्य जरूर चलायें, पर राज्य नहीं। वेद का ऋषि कहता है—'यतेमहि स्वराज्ये'—हम स्वराज्य के लिए प्रयत्न करें। शास्त्रों में भी यही लिखा है कि 'न त्वहं कामये राज्यम्'—मैं राज्य नहीं चाहता, मैं स्वराज्य चाहता हूँ। दिल्ली से जो चलता है, उसे 'राज्य' कहते हैं, चाहे वह अपने लोगों का ही हो। शेन्नै (मद्रास) से जो चलता है, वह 'राज्य' कहलाता है। गाँव-गाँव में हर मनुष्य अपने पर जो चलाता है, वह 'स्वराज्य' है। मुझे चाहे भूखा रहना पड़े, लेकिन मैं चोरी न करूँगा, इसका नाम है 'स्वराज्य'। मुझ पर दूसरे किसीकी हुकूमत चलती हो, तो क्या वह स्वराज्य है? 'स्वराज्य' का अर्थ है, अपना खुद का अपने पर राज्य। इस तरह जब सब लोगों में अपने पर काबू रखने की शक्ति पैदा होगी और उन्हें अपने कर्तव्य का भान होगा, तब 'स्वराज्य' आयेगा। तब तक 'राज्य' ही चलेगा, फिर चाहे वह हिन्दीवालों का राज्य हो या तमिलवालों का। हमें काम स्वराज्य का करना है। उसके लिए जन-शक्ति

है। इसीलिए आज सबको सत्ता का मोह है। पर हम समझते हैं कि 'हमारी किसी पर कोई सत्ता न चले', यह जब तक मनुष्य को न सूझेगा, तब तक समाज ही न बनेगा। सामाजिक कार्य सत्ता से बनता है, यह निरी भ्रान्ति है। वस्तुस्थिति यह है कि सत्ता से समाज ही नहीं बनता। अगर मैं यह सोचूँ कि मेरे विचारों की सत्ता आप पर चले, फिर वह विचार आपको जँचे या न जँचे, तो मैं समाज-विरोधी हूँ, अहं-वादी हूँ। जो विचार मुझे जँचा, उसीको प्रधान मानता हूँ। विचार की आजादी अपने लिए आवश्यक मानता हूँ, पर लोगों के लिए वह जरूरी नहीं मानता, तो समाज के दो टुकड़े पड़ जाते हैं, वहाँ समाज बनता नहीं। अतः गुण को सामाजिक बनाने के लिए उसके रास्ते में जो रुकावटें हों, उन्हें हटाना ही चाहिए। जहाँ उसके बीच सत्ता आ जाय, वहीं रुकावटें आ जाती हैं। यह बात जरा सूक्ष्म है, परंतु हमें समझनी ही होगी।

गृहस्थाश्रम में सत्ता

भगवान् ने माता-पिता के हाथ में बच्चे दिये हैं। आप देखते हैं कि ४-५ साल के अन्दर उन बच्चों के दिमाग में कुछ स्वतंत्र विचार आना शुरू हो जाता है। और उतने में उनके और माता-पिता के विचारों में टक्कर होने लगती है। इस हालत में माता-पिता क्या करते हैं ? इस विषय में पुराने लोगों का एक वचन है, पर वह कितना भ्रान्तिमूलक है, यह आप समझ सकते हैं। गृहस्थ के लिए कहा गया है कि उसे सब विषयों में हिंसा का परित्याग करना चाहिए। पर उसके लिए भी दो अपवाद हैं : 'अन्यत्र पुत्रात् शिष्याद् वा' पुत्र और शिष्य को छोड़कर उन्हें बाकी किसीकी ताड़ना न करनी चाहिए। पुत्र और शिष्य को शिक्षा के लिए ताड़न करना ही चाहिए। चूँकि गृहस्थ के लिए अहिंसा के विधान में अपवादस्वरूप यह बताया गया, इसलिए यह केवल भूतदयामूलक ही विचार है। वे समझते हैं कि अगर हम बच्चों को दंड न देंगे, तो वे गलत

लिए 'सत्ता के जरिये सेवा' यह एक मंत्र ही बन गया। इसे हम 'भ्रान्ति-मंत्र' कहते हैं। हर जमाने में कुछ-न-कुछ भ्रम भी काम किया करते हैं। उस भ्रम के लिए आधाररूप कुछ सत्य भी होता है। इस जमाने में एक विशेष सत्य का दर्शन हुआ है। वह यह कि "कोई भी गुण केवल व्यक्तिगत न रहे, सामूहिक बनना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि यह ऐसा सत्य है, जिसकी झाँकी पहले के जमाने में नहीं हुई। झाँकी तो थी, पर विज्ञान के कारण उसका स्पष्ट दर्शन आज के जमाने को हुआ। लेकिन इस सत्य-दर्शन के साथ-साथ एक छायारूप भ्रान्ति-दर्शन भी हुआ है। इसकी कोई जरूरत तो नहीं थी, फिर भी हुआ।

आज यह माना जाता है कि गुण को सामूहिक रूप जरूर मिलना चाहिए, उसके आधार पर सामूहिक जीवन बनना चाहिए। उसके लिए इन्तजाम होना चाहिए और इन्तजाम के लिए सत्ता चाहिए। इस तरह से गुण-प्रतिष्ठा के लिए गुण अपर्याप्त है, उसके लिए सत्ता की आवश्यकता है। इसलिए आज की लोकशाही में ज्यादा-से-ज्यादा लोग यहाँ तक जाते हैं कि लोगों में ज्ञान के जरिये कुछ गुण-प्रचार भी होना चाहिए और शासन का, सत्ता का रूप उनके अनुकूल होना चाहिए। केवल सत्ता काम नहीं करेगी और न केवल गुण-प्रचार ही। गुण-प्रचार के लिए दूसरी शक्तियों—सत्ता की भी जरूरत है। इसलिए सर्वप्रथम लोगों में उस सत्ता को मान्य करनेवाला गुण होना चाहिए। उसके लिए अनुशासन सिखाया जाता है, तालीम भी सरकार के हाथ में दी जाती है, कानून बनाये जाते हैं। इस तरह अनेक प्रकार से लोगों को एक विशिष्ट विचार के पीछे चलने के लिए मजबूर किया जाता है। परिणाम यह होता है कि उस गुण का महत्त्व घट जाता है।

इन दिनों दुनिया के बहुत से विचारक कहते हैं कि आज का समाज आदर्श समाज नहीं है और विनोबा जो बता रहे हैं, वह आदर्श समाज की बात है, आज के समाज की नहीं। इस आदर्श समाज तक पहुँचने के लिए कुछ समय चाहिए। बीच की जो राह है, उसमें सत्ता की आवश्यकता

माने गुरु मान लिया और चाहे कि सब शिष्य उसके सामने शीश नवा दें। अगर शिष्य बिना समझे कोई बात मानता है, तो गुरु को दुःख होना चाहिए। अगर लड़का बिना समझे बात नहीं मानता, स्वतंत्र विचार करता है, तो गुरु को खुशी होनी चाहिए। जब ऐसा होगा, तभी गुणों की वृद्धि होगी। आज गृहस्थाश्रम में सत्ता आ गयी है, जहाँ उसकी कोई जरूरत न थी; क्योंकि बच्चे स्वयं ज्ञानवान् होते हैं। शिक्षा में भी हमने सत्ता को स्थान दिया। वहाँ भी उसकी कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि गुरु ज्ञानी होते हैं और ज्ञान से बढ़कर कौनसी चीज है, जिसकी सत्ता चल सके ?

हमने धर्म-संस्था में भी सत्ता को स्थान दिला दिया है। कोई भी संत पुरुष सत्ता नहीं चाहता और कोई भी मठाधिपति सत्ता छोड़ना नहीं चाहता ! याने बिलकुल ही उल्टी प्रक्रिया हो गयी है। संतों का कार्य चलाने के लिए ही मठ, मन्दिर आदि बनाये जाते हैं। शंकराचार्य ने सब चीजों का त्याग किया, अपने पास किसी भी प्रकार की सत्ता नहीं रखी। उन्होंने यही कहा कि "मैं विचार समझाऊँगा, जब तक आप उसे न समझेंगे, समझाता रहूँगा। यही मेरा शस्त्र है। मैं आपसे कोई भी चीज कराना नहीं चाहता, सिर्फ समझाना चाहता हूँ।" लेकिन आज उनके मठाधिपति सब प्रकार की सत्ता चलाते हैं। उनके नाम से आज्ञा-पत्र निकलते हैं, वे कुछ लोगों को बहिष्कृत करते हैं, कुछ लोगों को प्रायश्चित्त लेने के लिए कहते हैं। यह केवल अपने ही देश में नहीं, यूरोप में भी यही है। वास्तव में धर्म के क्षेत्र में तो सत्ता को कुछ भी स्थान न होना चाहिए, क्योंकि वहाँ विचार समझाने की ही बात है।

इस तरह घर, शाला और धर्म-संस्था में हमने सत्ता को स्थान दे दिया है। फिर समाज-व्यवस्था में भी सत्ता को स्थान मिलता है। इसलिए वह सारी सत्ता की राजनीति (पॉवर पॉलिटिक्स) ऊपर-ऊपर से नहीं जायगी। उसमें जो मूलभूत दोष है और जो मानव के हृदय में है, उसीका निवारण करना होगा।

रास्ते पर जायँगे। वे अपना हित नहीं समझते, इसलिए मौके पर प्रेम से प्रेरित होकर उनके हित के लिए ताड़न करना ही चाहिए।

यहाँ माता-पिता ने और उनके सलाहकारों ने हार खायी है और दंड-शक्ति को वरदान दे दिया! जो बच्चा माता-पिता की गोद में आया, उसकी क्या हालत थी? मानव के माने हुए दूसरे गुण उसमें नहीं थे, लेकिन एक ही गुण था, श्रद्धा। बाकी के गुण तो पीछे आते हैं। बच्चे ने श्रद्धा से माता के उदर में जन्म लिया। वह श्रद्धा के साथ माता के स्तन को आशीर्वाद समझता है। उसके मन में जरा भी शंका, तर्क या दलील नहीं रहती कि किस दूध से मेरे लिए पोषण मिलेगा? वह पूर्ण श्रद्धा के साथ उस दूध का पान करता है। चाहे वह माता गलत आहार करनेवाली हो और उस दूध के जरिये उसे कुछ नुकसान ही होनेवाला हो। उसकी श्रद्धा में कोई कमी नहीं रहती। फिर जरा बड़ा होने पर वह और समझने लगता है, तो माता जो कहती है, उसे मानता है। माँ ने कहा, यह चाँद है, तो बच्चा मान लेता है। इतना श्रद्धावान् प्राणी आपके हाथ में आने पर भी उसका ताड़न करने की नौबत आप पर आये, तो यह कितनी अयोग्यता की बात है? फिर भी हमने समझ लिया कि बच्चे को दंड देंगे, तो कुछ गुणों की वृद्धि होगी। दंड देना स्वयं एक दोष है, दंड सहन करना दूसरा दोष है और दंड के डर से अपने आचरण में बदल करना तीसरा दोष! इतने सब दोषों के जरिये गुण-प्रचार की हम सोचते हैं! इस तरह हमारे गृहस्थाश्रम में सत्ता चलती है।

विद्यालयों और धर्म-संस्थाओं की सत्ता

आज स्कूलों में भी सत्ता चलती है। इन दिनों आम शिकायत की जाती है कि 'बच्चे अनुशासन नहीं रखते।' पर वे ज्ञानियों का अनुभव भूल जाते हैं। ज्ञानियों ने कहा है कि **'शिष्यापराधे गुरोर्दण्डः।'** विद्यार्थियों में अनुशासन नहीं है, तो यह शिक्षकों का दोष है, शिक्षण-पद्धति का दोष है, समाज-व्यवस्था का दोष है। आज हमने अनुशासन को ही बड़ा

लोगों पर कुछ सत्ता लादना चाहते हैं। इसलिए हम ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि 'हमारा असर समाज पर होना चाहिए' ऐसी कोई वासना मन में रही हो, तो उसे दूर करें। हमारा अपना विश्वास है कि मन में परोपकार की वासना रखे बिना काम किया जायगा, तो अलबत्ता शीघ्र परिणाम होगा। सूर्य उगता है, तो सारी दुनिया को प्रकाशित करता है। किंतु क्या वह कोई ऐसी वासना रखता है कि लोगों को जल्दी उठना चाहिए, जल्द-से-जल्द अपने दरवाजे खोलने चाहिए, मुझे अपने घर में प्रवेश देना चाहिए? वह केवल उगता है। वह सेवक है, स्वामी के दरवाजे पर खड़ा रहता है। अगर कोई दरवाजा न खोले, तो वह अंदर न घुसेगा, बाहर ही खड़ा रहेगा। कोई थोड़ा-सा दरवाजा खोल दे, तो उतना ही प्रवेश करेगा और पूरा खोले, तो पूरा प्रवेश करेगा। लेकिन वह कभी गैरहाजिर नहीं रहेगा। स्वामी को चाहे जब जागने का हक है। अगर वे सोते हैं, तो उन्हें सोने का हक है। पर सेवक को सोने का हक नहीं है। उसे सेवा के लिए हमेशा जाग्रत ही रहना चाहिए। उसे यह वासना छोड़ देनी चाहिए कि स्वामी जल्दी जागे। इस तरह सूर्यनारायण का आदर्श सामने रखकर हम निष्काम कर्मयोग करते रहेंगे, तो दुनिया से सत्ता जल्द-से-जल्द हट जायगी।

पलनी (मदुरा)
१८-११-'५६

सेवा द्वारा सत्ता की समाप्ति

यह सर्वोदय का विचार है कि हम एक मनुष्य पर भी अपनी सेवा न लादेंगे। इस पर कोई पूछेगा कि "क्या सब लोग हमें पसन्द न करेंगे, तो हम सेवा ही नहीं करेंगे ?" इसका उत्तर यह है कि हम सेवा जरूर करेंगे, पर चुनाव के जरिये नहीं, चुनाव के बिना ही। सेवा के लिए चुनाव की जरूरत ही क्या है ? बाबा सेवा करते हुए पैदल निकल पड़ा है, उसे किसने चुना है ? उसने खुद अपने को चुना। लोग

सत्ता छोड़ें

दुनिया में ये सारी सत्ताएँ सतत चल रही हैं और शांति की इच्छा करते हुए भी शांति हो नहीं पाती। इसका एकमात्र उपाय है, सत्ता छोड़ना, जो सत्ताधारियों को और सत्ताकांक्षियों को सूझता ही नहीं। उन्हें वह सूझेगा भी नहीं, क्योंकि वे सत्ता के ही जीव हैं। किन्तु आश्चर्य यह कि माता-पिताओं को, गुरुओं को, धर्मशास्त्रियों को यह क्यों नहीं सूझता? जब इन तीनों क्षेत्रों का परिवर्तन होगा, तो राजनैतिक क्षेत्र में भी वह होकर रहेगा। इसलिए इसे जितना समय लगाना जरूरी हो, उतना लगाना चाहिए। इसके विपरीत जब वह जल्दी होने लगे, तो शंका आनी चाहिए कि क्या पुरानी ही बात चल रही है? मैं रात को सोने के पहले ध्यान करता था। एक-डेढ़ महीने में मेरी समाधि लगने लगी। तब मुझे शंका हुई कि जिस समाधि के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता है, वह डेढ़ महीने में कैसे लगने लगी? तब मैंने उसकी परीक्षा करने के लिए रात को सोने के पहले ध्यान करने के बजाय सुबह उठकर ध्यान करना शुरू किया। फलतः जल्दी समाधि न लगी। तब मेरी समझ में आया कि रात को जो समाधि लगती थी, उसमें नींद का भी अंश था। इसलिए अगर जल्दी समाधि लगे, तो साधक को शंका करनी चाहिए। इसी तरह अगर यह दीख पड़े कि लोग हमारी बात जल्दी मान लेते हैं, तो हमें जरूर शंका करनी चाहिए। इसलिए जो समय लग रहा है, वह ज्यादा नहीं, उतने अवकाश की जरूरत ही है।

सूर्य-सा निष्काम कर्मयोग

हम निरंतर इस बात का चिंतन किया करते हैं कि सत्ता की यह अभिलाषा कैसे दूर हो। फिर हम अपने मन का संशोधन करते हैं कि क्या हमारे मन में ऐसा कुछ छिपा है कि हमारे विचार की सत्ता चलनी चाहिए? अगर ऐसा अनुभव आये कि 'लोग हमारी बात मानते हैं, तो हम सुखी होते हैं और नहीं मानते, तो दुःखी होते हैं', तो समझना चाहिए कि हम

नहीं रहती है। जैसे-जैसे यह पार्टी-पॉलिटिक्स बढ़ेगा, वैसे-वैसे [illegible] भय बढ़ेगा। अनेक पार्टियाँ खड़ी होती हैं, एक की आलोचनाओं से दूसरे की आलोचनाओं की वजह होती है। परिणामतः लोगों में झगड़े पैदा होते हैं। लोग कभी इस पार्टी को चुनते हैं, कभी उस पार्टी को। कभी यह भी होता है कि जिसके हाथ में सेना है, वह सत्ता ले लेता है। सेना का कमाण्डर-इन-चीफ नौकर [illegible] है, [illegible] ताकतवर है, लोगों के पार्टी-पॉलिटिक्स से हारते हैं, तो इस हालत में वह अपने हाथ में सत्ता ले लेता है, जैसा मिस्र में नासिर का हुआ। नौकरशाही में कोई हिटलर भी आ जाता है। कभी [illegible] आदि [illegible], तो लोग बार-बार उसको चुनते हैं। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट चार बार चुनकर आये। अगर मरते नहीं, तो पाँचवीं बार भी चुनकर आते, क्योंकि जनता आदि [illegible] था। इसलिए पार्टी-पॉलिटिक्स के जरिये जो लोक-रक्षा होती है, वह भ्रमात्मक है। लोग अनाथ-के-अनाथ ही रह जाते हैं। अपनी रक्षा हम स्वयं कर सकते हैं, यह हिम्मत नहीं है।

नाममात्र की डेमोक्रेसी

हम अपनी रक्षा नहीं कर सकते, हम न्याय नहीं दे सकते, हम अपना कारोबार नहीं देख सकते। जो भी कुछ करना है, वह सब प्रतिनिधि करेंगे। प्रतिनिधि किसके? हमारे। मालिक हम, वे हमारे प्रतिनिधि, याने नौकर। लेकिन नौकर ही कर सकते हैं, मैं स्वयं नहीं कर सकता। मैं बड़ा मालिक हूँ। मुझे प्यास लगी है। लेकिन मैं पानी नहीं पीता। नौकर वहाँ नहीं होगा, तो १५ मिनट ठहरूँगा। वह आयेगा, बाद में मुझे पानी देगा और पीऊँगा। अगर वह ऐसा ही बार-बार देर करेगा, तो उसे निकालकर दूसरा नौकर रख दूँगा। नौकर पानी देता है, तो पीता हूँ। नहीं देता है, तो उसकी राह देखता हूँ; क्योंकि मैं मालिक हूँ। पानी पीने की ताकत मुझमें नहीं है। विधान में क्या लिखा है कि मालिक स्वयं पानी पी ले? नहीं। नौकर ला देगा। अगर वह ढील करता है, तो पाँच

उससे यह नहीं कहते कि "आप यहाँ से चले जाइये। आपकी सेवा हम न लेंगे, हम आपको नहीं चुनते।" यहाँ चुनाव का सवाल ही क्या है ? कोई भला मनुष्य बीमार के पास जाकर कहे कि "मेरे पास दवा है, मैं तुम्हें दूँगा", तो क्या वह बीमार यह कहेगा कि "मुझे तुम्हारी दवा नहीं चाहिए। मैंने तुम्हें चुना नहीं है।" कोई भी दुःखी जीव दवा ले लेगा। सेवा के लिए चुनाव की जरूरत नहीं है, यों समझकर वह कार्यकर्ता चुनाव के जरिये मिलनेवाला कोई भी स्थान, जिम्मेवारी या पदवी न लेगा। वह लोकनीति को मानेगा और सीधा लोक-सेवक बनेगा। सरकार के जरिये लोगों को बदलने के बदले लोगों के जरिये सरकार को बदलेगा। हमारा यह दूसरा ही पंथ है।

सब राजनैतिक पक्ष इसी वृत्ति से काम करते हैं कि वे सरकार के जरिये लोगों को बदलेंगे। हम उन पर टीका न करेंगे। उन्हींकी तरह सोचनेवाले लोग दुनिया में ज्यादा हैं। हमारा समाज छोटा है। आज दुनिया में बहुत बड़ा समाज यही मानता है कि सत्ता के जरिये सेवा करनी चाहिए। हम कहते हैं कि सेवा के जरिये सत्ता खतम करेंगे। और भी एक पंथ है, जो कहता है कि "सेवा के जरिये सत्ता हासिल करेंगे। आज हमारे हाथ में सत्ता नहीं है, हम सेवा करते-करते सत्ता हासिल करेंगे।"

गांधीग्राम (मदुरा)
२०-११-'५६

सरकार और शान्ति-सेना : ३२ :

दारोमदार सरकार पर, तो जनता अनाथ !

देश का कारोबार, देश की रक्षा सरकारें करती हैं। वे किसी-न-किसी पक्ष की होती हैं। पाँच साल के बाद उसको बदल सकते हैं। फ्रान्स जैसे देश में तो सरकार बन ही नहीं पाती। चार-पाँच महीने में ही सरकार बद-

करोड़ का खर्च सेना पर होता होगा। आप सब कर दे रहे हैं। पर कोई मानने को छोटा बच्चा होता है, वह भी दे रहा है। क्या वह कपड़ा नहीं पहनता ? कपड़े पर टैक्स लगता है। कभी दियासलाई खरीदता है, उस पर टैक्स लगा है। कभी ट्रेन में भी बैठता होगा, तो उस पर भी टैक्स लगता है। आप सब टैक्स दे रहे हैं। टैक्स यानी आपकी सम्मति। सरकार जो करे, उसके लिए आपकी सम्मति है। फिर सरकार सेना रखती है, उसके लिए भी आपकी सम्मति हो जाती है। इस तरह सब लोगों की सम्मति होना, यह एक शक्ति है। हम चाहते हैं, गाँव-गाँव के लोग उसके लिए शांति-सेना तैयार करें। विश्व-सेवा करने के लिए सेवा-सेना होगी, परन्तु रक्षण करने के लिए नहीं शांति-सेना बनेगी। शांति-सेना की ताकत क्या रहेगी ? आप सब लोगों की सम्मति है। आपकी सम्मति न रही, तो वह काम नहीं चल सकेगा।

यहाँ के बहुत सारे भाइयों ने संपत्ति-दान दिया। उसमें इतना ही हुआ कि इतने ही लोगों की हमको सम्मति मिली। परन्तु सरकार के कारोबार के लिए, सैन्य के लिए हर छोटे बच्चे की भी सम्मति है। कपड़ा पहनता है, तो जाता है टैक्स सरकार को। इस तरह हर मनुष्य अपनी सम्मति देता है। इसके बिना सरकार की ताकत नहीं बनेगी। उसी तरह शांति-सेना की ताकत तब तक नहीं बनेगी, जब तक आप सबकी सम्मति उसे नहीं मिलती। चन्द लोगों ने संपत्ति-दान दिया है, लाख, करोड़ भी देंगे, खूब सेवा-कार्य होगा, फिर भी शान्ति-सेना की ताकत नहीं बढ़नेवाली, क्योंकि सबकी सम्मति नहीं मिली। इसलिए हम चाहते हैं कि हर घर से 'सम्मति-दान' मिलना चाहिए, केवल सम्पत्ति-दान नहीं। शान्ति-सेना का कार्य तो सम्पत्ति-दान से चलेगा, परन्तु उसकी ताकत बनेगी, सम्मति-दान से। इसके लिए हरएक बच्चा-बूढ़ा, भाई-बहन, सबकी सम्मति चाहिए। आपको गोवर्धन पर्वत की कहानी मालूम है ? भगवान् ने कहा था, मैं तो पर्वत उठा सकता हूँ, उठा भी लूँगा, परन्तु उससे आपकी ताकत नहीं बनेगी। अतः गोकुल के सब बच्चे-बूढ़े, भाई-

साल के बाद दूसरे को चुन सकते हैं। इस प्रकार हम केवल नाम के मालिक हैं, वास्तव में तो गुलाम ही हैं। नाम मालिक, परन्तु अर्थ 'गुलाम'। किसी दरिद्र की लड़की का नाम रहता है न लक्ष्मी ! बेवकूफ लड़की हो और उसका नाम हो सरस्वती, विद्या इत्यादि। वैसा ही एक नाम डेमोक्रेसी है। जनता सारी यजमान है, वह अपने नौकर चुनती है। परन्तु अपने हाथों से पानी पीने का अधिकार उसे नहीं। लोग स्वयं उठ खड़े नहीं होंगे, उनके पाँव चल नहीं सकते, मटके के पास जा नहीं सकते, ढक्कन निकाल नहीं सकते, लोटा मटके में डाल नहीं सकते, पानी निकाल नहीं सकते और वह पानी पी नहीं सकते। नौकर की राह देखेंगे। वह आयेगा और पानी देगा। यह हालत कुछ देशों की ही नहीं, सारी दुनिया की है।

पार्टियों से मुक्त होना है

अब यह 'शांति-सेना', 'सर्वोदय','ग्रामदान' क्या है ? सबका भावार्थ यही है कि आपको अपना कारोबार अपने हाथ में लेना है। आज पार्टी बनाकर अपने पर सत्ता लाद लेते हो, खुद कुछ नहीं करते। अतः पार्टियों से मुक्त होना है। यहाँ इस काम के लिए सर्वोदय-मंडल बना है। लेकिन वह यह नहीं कहेगा कि आपके लिए हम सर्वोदय-समाज बना देंगे। ये तो पार्टीवाले कहते हैं। सर्वोदय-मंडल कहेगा, आपको ही बनाना है। भगवान् ने गीता में कहा है, 'उद्धरेदात्मनात्मानम्'—स्वयं हमको अपना उद्धार करना चाहिए। इसीलिए सर्वोदय-मडलवाले कहेंगे, यह आप कर सकते हैं। आपको ही करना है। हम आपको मदद दे सकते हैं। आप चाहें, तो सलाह दे सकते हैं। लेकिन करना होगा आपको ही और आप कर सकते हैं।

सम्मति का गोवर्धन

सरकार सेना रखती है। परन्तु उसके पीछे आपकी सम्मति होती है। आपमें से हरएक ने उसके लिए मदद दी है। मान लीजिये, २००-२५०

सरकार विरोध क्यों करेगी ?

एक भाई ने पूछा, सरकार विरोध करेगी, तो क्या होगा ? हमें सरकार द्वारा विरोध करने का कारण ही नहीं दीखता । एक-एक कार्य जनता हाथ में लेती है, तो सरकार का भार कम होता है । जिस देश के लोगों में ताकत है, उस देश की ताकत बढ़ती है । मानो हमला हुआ, तो सेना जगह-जगह बँट जायगी । अरबों रुपये खर्च होंगे, जनता पराधीन होगी । इसके बजाय अगर शान्ति-सेना गाँव-गाँव में काम करती है, तो ऐसे मौके पर सरकार को मदद होगी । फिर उसको सेना जगह-जगह भेजनी नहीं पड़ेगी । क्योंकि जनता स्वयं अपना रक्षण करने के लिए समर्थ है । जनता की शक्ति, धर्म कायम है । परिणामस्वरूप सरकार और सेना की ताकत बहुत बढ़ेगी ।

इतना सुन्दर विचार हमने आपके सामने रखा है । परन्तु केवल विचार सुनने से काम नहीं होता । आपको कुछ करना होगा । अपने इस गाँव में भी आप शान्ति-सेना तैयार कर सकते हैं । उसके लिए बूढ़े-बच्चे, भाई-बहन, सबकी सहानुभूति मिलेगी । सब राजनैतिक पक्षों का समाधान होगा । गाँव-गाँव पर शान्ति-सेना का प्रभाव रहेगा, तभी देश बचेगा, नहीं तो रक्षा खतरे में है । इस तरह की योजना होनी चाहिए कि सरकार को मिलिटरी या पुलिस की योजना करने का मौका ही न मिले । इतनी आत्म-रक्षण-शक्ति होनी चाहिए । लेकिन यह संरक्षण-शक्ति आयेगी कैसे ?

बहन, सबने मिलकर गोवर्धन को उठाया और फिर भगवान् ने अपनी एक उँगली लगायी। मतलब यह कि सब हाथ नहीं लगते, तो ताकत न बनती।

घर-घर से एक गुंडी

शान्ति-सेना की ताकत बढ़नी चाहिए। उसके लिए आपको क्या करना है? हर घर में जितने लोग हैं, उनकी तरफ से सम्मति-दान के तौर पर कुछ देना होगा। सम्पत्ति-दान तो प्रत्यक्ष साक्षात् मदद है। उसमें भी सम्मति है, परन्तु वह हर लड़के से, हर बूढ़े से, बहन से नहीं आती। हर घर से सबको सम्मति-दान देना है। यह कैसे होगा? हमने सुझाया कि पैसे के बदले श्रम दे दो। हर महीने में पाँच मनुष्य के घर से सूत की एक गुण्डी मिलनी चाहिए। उसकी कीमत २० नये पैसे होगी। याने पाँच मनुष्य के परिवार में से हरएक मनुष्य को चार नये पैसे देने हैं। याने मनुष्य के एक परिवार से बीस नये पैसे मिलने चाहिए। हम पैसे नहीं, बीस नये पैसे का श्रम चाहते हैं। अगर यह बात होगी, तो बहुत बड़ी क्रान्ति होगी। घर-घर में उत्पादन होने लगेगा। बूढ़ा और बीमार भी एक गुंडी दे सकता है। इस तरह से होगा, तो हर घर से सम्मति मिलेगी। एक गुण्डी से शान्ति-सेना को बहुत मदद नहीं मिलेगी। ज्यादा मदद मिलेगी सम्पत्ति-दान से; परन्तु ताकत मिलेगी सम्मति-दान से। अतः हर घर से सम्मति मिलनी चाहिए।

किसीका नुकसान नहीं

यह नया विचार है। उसका धीरे-धीरे मैं विकास कर रहा हूँ। केरल में ही यह विचार सूझा है। इसलिए आप लोगों पर इसकी जिम्मेवारी आती है। केरल में १ करोड़ ३६ लाख जन-संख्या है। इसलिए २५ लाख से ज्यादा गुंडी घर-घर से मिलनी चाहिए। एक ही घर से ५-१० गुण्डी मिलेगी और इस तरह २५ लाख होगी, तो नहीं चलेगा। हर घर में पाँच मनुष्य मानकर उस हिसाब से हर घर से एक गुण्डी मिलनी चाहिए।

है। हमारा संरक्षण हम कर सकते हैं, ऐसा विश्वास नहीं है। सेना पर विश्वास रखा है। भोग-विलास परक जीवन बना है। रोज सिनेमा देखते हैं। शृंगार-साहित्य पढ़ते हैं। व्यसनों में मग्न हैं। रात को जागते हैं। बड़े तड़के उठते नहीं। बारिश में डरते हैं। धूप में काम कर नहीं सकते। सारे लोग मृदु बने हैं। और इस हालत में सुना कि लड़ाई शुरू हुई है और उसमें हमारी सेना पीछे हट रही है, तो क्या होता है? सारे-के-सारे एकदम कमजोर बनते हैं। सोचते हैं, अब हमारा क्या होगा? मानो देश का 'मॉरल' खतम हो गया। क्योंकि देश को सेना नहीं बचा सकती। इसलिए देश का हरएक नागरिक—हरएक लड़का, हरएक लड़की, हरएक पुरुष, हरएक स्त्री—निर्भय होना चाहिए। जीवन मृदु नहीं बनाना चाहिए। भोग-साधन नहीं बढ़ाने चाहिए। इस प्रकार की वृत्ति देश की रही और निर्भयता की तपस्या की जायगी, तब देश बलवान् होगा। इसका अर्थ यह है कि देश के गुण बढ़ने चाहिए।

ज्ञान-तृष्णा बढ़नी चाहिए

मान लीजिये, देश में युनिवर्सिटियाँ, कॉलेज खूब बढ़ावें। जो उठा, सो कॉलेज में जाता है। ज्ञान-प्राप्ति के लिए नहीं—ज्ञान तो उसके सिर पर थोपा जाता है। फिर वह क्यों जाता है? क्योंकि कॉलेज में जाने से नौकरी मिलेगी—याने विना काम किये खाना मिलने का इंतजाम। इस वास्ते शिक्षितों की संख्या आज खूब बढ़ी है, परंतु ज्ञान नहीं बढ़ा। बल्कि कार्य से विमुक्त रहने की ही प्रेरणा रही। इसलिए जितनी युनिवर्सिटियाँ बढ़ेंगी, उतना देश नालायक, निर्बल बनता जायगा। लेकिन अगर प्रजा में ज्ञान की जिज्ञासा है, तब तो देश उन्नत होगा। देश का बच्चा-बच्चा खेत पर काम करने जाता है और शाम को लौटने के बाद अध्ययन करता है। रात को जल्दी सो जाता है। बड़े सवेरे उठता है। काम पर ६ बजे जाना है, तो उसके पहले दो घंटे गंभीर आध्यात्मिक अध्ययन करता है। याने जैसे खाये विना दिन नहीं, वैसे ज्ञान विना

उसके लिए समाज की शक्ति बनानी पड़ेगी। इसलिए शान्ति-सेना ही नित्य-सेवा-सेना होगी। वे सैनिक ग्रामदान, भूदान का प्रचार करेंगे, लोगों की सेवा करेंगे और मौके पर बलिदान देने के लिए तैयार रहेंगे। यह भूदान-यज्ञ की नयी प्रक्रिया है। साधारण भूदान से हमने छठा हिस्सा माँगना शुरू किया। फिर मालकियत मिटाने का आवाहन दिया। ग्रामदान से ग्रामराज्य निकला। अब ग्राम-रक्षण की बात इसमें से आयी है। यह आखिरी चीज शान्ति-सेना की सूझी है।

तेरुवत्तुकटवु (कोझीकोड)
२६-७-'५७

जनता का गुण-विकास जरूरी : ३३ :

हमारा देश बहुत बड़ा है। यहाँ की जनसंख्या बड़ी है, विस्तार भी बड़ा है और स्वराज्य भी मिल गया है। लेकिन इतने से ही देश की ताकत नहीं बढ़ेगी। देश की शक्ति देशवासियों के चरित्र से बढ़ती है। किसी देश की सेना बलवान् है, इसलिए वह देश बलवान् नहीं बनता। उस देश का गुण क्या है, इस पर देश की शक्ति निर्भर है। इसलिए यदि देश का विकास चाहते हैं, देश की उन्नति चाहते हैं, तो देश के लोगों को गुण-विकास करना चाहिए। यह बहुत सोचने लायक विचार है।

डरपोक देश को सेना नहीं बचा सकती

इन दिनों लोगों ने बहुत सारा भार सरकार पर डाल दिया है। बहुत हुआ, तो थोड़ा सहयोग देते हैं। बड़ी सेना खड़ी करने के लिए पैसे की जरूरत है, तो लोग टैक्स दे देते हैं और समझते हैं, हम नागरिक सुरक्षित हैं। परंतु जब तक वे स्वयं निर्भय नहीं हैं, तब तक सुरक्षित नहीं हैं; बल्कि दुर्बल हैं। क्योंकि सारा दारोमदार सेना पर रखा

हूँ कि आप मानते ही हैं। जिनकी योजना उत्तम होगी, उनको आप मानते ही होंगे। क्योंकि उस हालत में आपका गुण-विकास नहीं होता। हिन्दुस्तान का राज्य २८ तारीख को जनता के हाथ में आया, लेकिन वह ... तारीख को खतम होता है। मतलब यह है कि जो उसका आखिरी दिन था, वही उसके नाश का पहला दिन हुआ। इसका अर्थ क्या है ? सरकार ने अच्छी व्यवस्था कर डाली। रक्षा के लिए सेना रखी, और ... में पड़े हैं। दुनिया के प्रवासी आते हैं और वे लिखते हैं, ऐसा ... कहीं नहीं देखा ! लेकिन दूसरे ही दिन नाश शुरू हुआ। क्योंकि जनता का गुण-विकास नहीं हुआ। बिना गुण-विकास के सिर्फ व्यवस्था सुंदर कर डाली, लोग सुखी हो गये, फिर भी लोग गुलाम ही बने रहते हैं। राज्य अच्छा चले या खराब चले, इसका श्रेय जनता को नहीं; पर कार्यकर्ताओं को है। पुराने राज्य में नहीं था। आज भी नहीं है। इस वास्ते वह लोकसत्ता नहीं है। फर्क इतना ही है कि पहले राजाओं पर भरोसा था, अब प्रतिनिधियों पर है। अगर यह हो कि हर नागरिक समाज के काम के लिए जिम्मेवार है और उसका गुण-विकास हो रहा है, तो वह सच्ची लोकशाही होगी।

मंगलूर (मैसूर)
२५-८-'५७

सरकार खादी के लिए क्या करे ? : ३८ :

मैं अगर सरकार में होऊँ, तो सरकार की तरफ से कुछ बातें जाहिर कर दूँगा :

(१) हर मनुष्य को कताई सिखाने की जिम्मेवारी सरकार की है। उसके लिए सारा खर्च सरकार करेगी। जैसे हरएक को शिक्षित (लिटरेट) बनाने की जिम्मेवारी सरकार की मानी जाती है, वैसे ही हिन्दुस्तान

दिन नहीं जाता। इस तरह के ज्ञान-प्रेमी रहेंगे, तभी देश उन्नत होगा, केवल युनिवर्सिटियाँ बढ़ाने से ही नहीं होगा, हरएक की ज्ञान-तृष्णा बढ़ानी होगी।

उन्नति कारुण्य गुण से ही संभव

गरीबों की सेवा के लिए सरकार को पैसे की जरूरत है। उत्पादन बढ़ाना है, तो सरकार टैक्स लगाती है। उस पैसे से अस्पताल खोलती है। याने आपकी तरफ से गरीबों की सेवा हो गयी। लेकिन इससे कारुण्य गुण का विकास नहीं होता। अगर लोग थोड़ा-थोड़ा पैसा इकट्ठा करते हैं और उससे अस्पताल चलाते हैं, तो कारुण्य का विकास होगा। आपके घर का बच्चा-बच्चा कहेगा, इस अस्पताल के लिए मेरे घर से दान दिया गया है। आज बच्चा क्या कहेगा? मैंने चाय पी, उससे अस्पताल बनी। सरकारी शक्ति से अस्पताल बढ़ेंगे, तो देश की उन्नति नहीं होगी। जब कारुण्य गुण बढ़ेगा, तब उन्नति होगी।

सरकार अस्पताल खोलती है। उसका हम निषेध नहीं करते। कॉलेज खोलती है, उसका भी नहीं। जब तक जरूरत है, तब तक सैन्य रखती है, उसका भी निषेध नहीं। लेकिन हम इतना ही कहना चाहते हैं कि निर्भयता की जगह सेना नहीं ले सकती। कारुण्य की जगह अस्पताल नहीं ले सकता और ज्ञान-तृष्णा की जगह कॉलेज नहीं ले सकता। निर्भयता-गुण देश में होगा, तब देश की रक्षा होगी। केवल सेना बढ़ाने से नहीं। ज्ञान-तृष्णा से देश में ज्ञान बढ़ेगा। केवल कॉलेज, युनिवर्सिटी बढ़ाने से नहीं। कारुण्य गुण बढ़ने से देश की उन्नति होगी, सरकारी पैसे से अस्पताल खोलने से नहीं। इस तरह आपके ध्यान में आयेगा कि सरकार पर काम सौंप देने से हमारी उन्नति नहीं होगी। इतना आसान काम वह नहीं है।

राज्य जितना 'उत्तम', खतरा उतना ही 'अधिक'

सरकार सब प्रकार की उत्तम योजना कर रही हो, तो भी मैं कहता

'राज्य' नहीं, 'प्राज्य' : २५ :

हम बार-बार कहते हैं कि अहिंसा में विश्वास रखनेवाले लोकनीति की स्थापना में ताकत लगायें। यानी राजनीति की समाप्ति करने की कोशिश में हम लग जायँ। 'राज' और 'नीति', ये दो शब्द एक-दूसरे को काटते हैं। नीति आती है, तो राज्य-व्यवस्था आप ही खण्डित हो जाती है और राज्य-व्यवस्था आती है, तो नीति खतम होती है। हमें इसके आगे राज्य नहीं, प्राज्य चाहिए। हम नहीं जानते, कितने दिनों में यह हो सकेगा, पर अगर हमारे लिए करने लायक कोई काम है, तो यही है। सर्वोदय-समाज को निश्चय करना चाहिए कि 'मेरे तो मुख राम नाम, दूसरा न कोई।' लेकिन गांधीजी के बहुत-से साथी मोहग्रस्त हैं। वे समझे हुए हैं कि इस हालत में राज्य चलाने की जिम्मेदारी हमारी है ही। हम भी कबूल करते हैं कि अगर हम स्वराज्य हासिल कर राज्य चलाने की जिम्मेवारी नहीं उठाते, तो वह हासिल ही क्यों किया? हमने वह जरूर हासिल किया, लेकिन इसीलिए कि सत्ता हम अपने हाथ में लेने के दूसरे क्षण से ही उसका (सत्ता का) विलयन करने का आरम्भ कर दें। वह चीज हमें चाहे लगे पचास साल में; लेकिन आरम्भ आज से ही करनी चाहिए।

सर्वोदय-सम्मेलन (कांचीपुरम्)
२९-५-'५६

उत्तम राज्य का लक्षण

आजकल बिलकुल आखिरी शास्त्र राज्य-शास्त्र है। राजनीति-शास्त्रज्ञ कहते हैं कि जो राज्यसत्ता नहीं चलाता, वह सबसे श्रेष्ठ है। जो कम-से-कम सत्ता चलायेगा, वह अधिक-से-अधिक अच्छा राज्य है। अगर कोई ऐसा राज्य हो, जहाँ दीखता ही न हो कि व्यवस्था की जा रही है, वह

के उस ग्रामीण को हम शिक्षित न समझेंगे, जिसे लिखना, पढ़ना और कातना न आता हो।

(२) लोगों को चरखे चाहिए, तो सरकार देगी और उसकी कीमत गाँववाले हफ्ते-हफ्ते से दे देंगे।

(३) जो गाँव या शख्स अपने लिए कपड़ा बनाना चाहे, उसकी बुनाई की मजदूरी सरकार देगी। उसकी एक मर्यादा होगी। मनुष्य को कम-से-कम कितना कपड़ा चाहिए, यह सब मिलकर तय करें। हम मानते है कि हर देहाती को कम-से-कम १२ गज कपड़ा चाहिए। मेरे राष्ट्रीय नियोजन में हरएक को सिर्फ १२ ही गज नहीं, बल्कि २५ गज कपड़ा रहेगा। लेकिन निम्नतम अनुपात का राशन करना हो, तो हमें हर ग्रामीण पीछे १२ गज की बुनाई मुफ्त कर देनी चाहिए। दूसरी भाषा में बोलना हो, तो हम यह कहेंगे कि "हम बुनाई का राष्ट्रीयकरण करना चाहते हैं। उसे एक 'सेवा' (सर्विस) बनाना चाहते हैं।"

इसी तरह डॉक्टर की भी सेवा बनायी जानी चाहिए। सरकार की ओर से डॉक्टर मान्य किया जायगा और उसे तनख्वाह मिलेगी, वह फीस न लेगा। आज जैसे डॉक्टर को यह वासना रहती है कि लोग बीमार पड़ें, वह न रहेगा। डॉक्टर और बुनकर सेवक बनेंगे। अंबर चरखे के कारण सूत भी अच्छा निकलेगा, तो १२ गज कपड़े के लिए डेढ़ रुपया बुनाई की मजदूरी देनी पड़ेगी। सिर्फ हर मनुष्य के लिए डेढ़ रुपया देने से कुल हिन्दुस्तान के कुल देहातों के लिए बीमा होगा। आगे जाकर वह डेढ़ रुपया कैसे हासिल किया जाय, इसकी अक्ल सरकार के पास है। वह इसे कई प्रकार से हासिल कर सकती है।

पलनी (मदुरा)
१९-११-'५६

आज हालत यह है कि ४० मेम्बर हिन्दुस्तान का राज्य चलाने के लिए चौबीस घण्टा काम करते हैं। पर परमेश्वर को कुल दुनिया का राज्य चलाने के लिए कितने घण्टे काम करना पड़ता है? हिन्दुओं से यह सवाल पूछो, तो वे कहेंगे कि परमेश्वर क्षीरसागर में सोता है। वह कुछ भी नहीं करता। इसका मतलब यह है कि राज्य चलाना यह कोई क्रिया नहीं, वह एक विचार और चिन्तन है। चिन्तन से ही दुनिया का काम चलना चाहिए। क्रिया का, हलचल का और आन्दोलन का अंश जितना कम होगा, राज्य उतना ही अच्छा चलेगा। जिस राज्य में सिपाही न हों, शस्त्र-सामग्री न हो, लोगों के लिए किसी प्रकार का दण्ड न हो, फिर भी लोग सत्ता चलाते, उत्तम सलाह मानते और शांति का आदर अपने सिर पर होने देते हैं, वही उत्तम राज्य है।

गांधीग्राम (मदुरा)
३०-११-'५६

अगर मैं बड़ी पार्टी का मुखिया होता !

मान लीजिये, अगर मैं हिन्दुस्तान की ऐसी बड़ी पार्टी का मुखिया होता, जिसके लिए चाहते हुए भी सामने कुर्सी के लिए कोई ही न मिल पाता हो, तो मैं जाहिर कर देता कि "सब पक्षों के अच्छे लोगों का सहयोग चाहता हूँ।" अच्छे लोग याने जिनमें सचाई है। हिंसावाले भी सचाई से हिंसा मानते हैं, तो वह भी एक सचाई है। कम्युनिस्ट भी सच्चे दिल से उसे मानते हैं, तो वह भी सचाई है। ऐसे जितने लोग हों, उनमें से मैं चुनूँगा। फलाने-फलाने मनुष्य के खिलाफ किसी मनुष्य को खड़ा न करूँगा। मैं ऐसे लोगों को, जो कुछ विचार पेश कर सकते हैं—चाहे वह कितना ही गलत विचार हो, तो भी उसके पीछे कुछ लोग हों, वे खरीदे न जानेवाले लोग हों—पार्लमेंट में आने दूँगा और कहूँगा कि उनके खिलाफ मुझे किसीको खड़ा नहीं करना है। यह मैं उन्हें कोई सुझाव देने के लिए नहीं कह रहा हूँ। उनके लिए

सर्वोत्तम राज्य होगा। आज ईश्वर का राज्य किस तरह चलता है? उसने ऐसी सुन्दर व्यवस्था कर दी है कि खुद न जाने किस कोने में जाकर सो गया है। उसने तरह-तरह की शक्ति और बुद्धि प्राणिमात्र में बाँट दी है। वह एक परिपूर्ण विकेन्द्रीकरण है और उसके साथ-साथ सबका सहयोग करने की प्रेरणा भी। परिणाम यह है कि परमेश्वर है या नहीं, इसकी भी लोगों को शंका होने लगती है। परमेश्वर की योजना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि परमेश्वर है या नहीं, ऐसा कहने की लोग हिम्मत करते हैं। केवल वैसा सन्देह ही नहीं करते, बल्कि नास्तिक बनकर ईश्वर है ही नहीं, ऐसा भी कहते हैं।

होना तो यह चाहिए कि दिल्ली में भारत का उत्तम राज्य चल रहा हो और कौन लोग राज्य चला रहे हैं, यह देखने के लिए कोई जाय, तो उसे कोई दीख ही न पड़े। न तो पार्लमेंट दीखे और न बड़े-बड़े मकान ही। "राज्य चलानेवाले कहाँ हैं?" यह पूछने पर जवाब मिले कि "वे खेत में काम कर रहे हैं।" अगर पूछा जाय कि "क्या ये ही राज्यकर्ता हैं?" तो जवाब मिले, "हाँ, ये ही हैं। अभी इनका काम खतम हुआ, इसलिए ये खेत में पेड़ के नीचे बैठे-बैठे आपस में बातें कर रहे हैं—क्यों रे भाई, मिस्र पर हमला हुआ है, तो उसका क्या किया जाय? उसके लिए क्या सलाह दी जाय, आदि चर्चा चल रही है।" उनसे पूछा जाय कि "आप क्या कर रहे हैं?" तो वे जवाब दें, "हम दुनिया के राज्यकर्ता हैं और हिन्दुस्तान के भी। इसलिए अपना खेत का काम होने के बाद फुर्सत से हमें ये बातें सोचनी पड़ती हैं।" "सोचकर आप क्या करते हैं?" "सलाह देते हैं।" "फिर क्या होता है?" "अगर लोगों को वह पसन्द हो, तो वे मानते हैं और न हो, तो नहीं मानते।" इस तरह दुनिया बड़ी अच्छी चल रही है, ऐसा जब दिखाई देगा, तभी उसे 'उत्तम राज्य' कहा जायगा। आज तो हालत यह है कि पं० नेहरू को दिल्ली से हटाने की बात हो, तो सारा देश डाँवाडोल हो जायगा। फिर कौन राज्य चलायेगा, यह सवाल पैदा हो जायगा।

रहता है। फिर सब मिलकर एक अनाज का पहाड़ बन जाता है। इसी तरह हरएक गाँव एक स्वतन्त्र स्टेट, ऐसी अनेक स्टेटें मिलकर एक बड़ी स्टेट और ऐसी अनेक बड़ी स्टेटें इकट्ठा होने पर एक दुनिया की स्टेट — ऐसी ही रचना ग्रामदान के जरिये हमें करनी है। इससे गाँव के लिए परिपूर्ण स्वतन्त्रता होगी। हम नहीं चाहते हैं कि अमुक दुकान हमारे गाँव में हो, तो उस चीज को हम रोक सकते हैं। मान लीजिये कि बाहर से मिठाई आयी। हमने उसे न खाने और घर की रसोई ही खाने का तय किया, तो वह मिठाई मक्खियों के लिए छोड़ देंगे। मक्खियों ने बाहर की चीज न खाने का प्रस्ताव तो किया नहीं है। फिर दुकानवाले को अगर मंजूर हो कि मक्खियों के लिए दुकान चलायी जाय, तो भले चलायें। जाहिर है कि लोगों की इच्छा के विरुद्ध वह दुकान न चल सकेगी। इसीका नाम है 'लोकशक्ति'! इस लोकशक्ति को कोई रोक नहीं सकता। इस तरह का आत्म-विश्वास प्रजा में निर्माण होना चाहिए कि अपना राज्य हमें चलाना है और उसे हम चला सकते हैं।

चिंगकटले (मदुरा)
२३-१२-'५६

राम प्रताप विषमता खोयी

एक भाई ने रामराज्य पर कविता लिखी। वे हमको सुना रहे थे। उसमें था कि रामराज्य में हर घर की दीवारें सोने की होंगी। हमने मन में सोचा, ऐसा ही है, तो हवा भी नहीं मिलेगी। राम तो जंगल में घूमते थे। थक गये थे, तो पेड़ के नीचे बैठे थे। चौदह साल जंगल में थे। पाँव में काँटे चुभते थे। ऐसे रामराज्य में सोने की दीवारें! और क्या वर्णन किया? रात को अंधकार नहीं रहेगा, दीपक ही दीपक। हमने कहा, अगर यही रामराज्य है, तो न्यूयार्क में रामराज्य ही है। वहाँ रात को अंधकार नहीं। आँख बिगड़ जाती है। इतनी सुंदर रात भगवान् ने बनायी, लेकिन लोगों ने उस अंधकार को आग लगा दी। कितने भयंकर

मेरे पास कोई सुझाव नहीं, क्योंकि सुझाव देने का मेरा अधिकार भी नहीं है। वह अधिकार उसीको होता है, जो उस काम में पड़कर उस जिम्मेवारी को उठाये। मेरा यह गैरजिम्मेवार वक्तव्य है। इसलिए इसमें हमें सुझाव देने की कोई गुंजाइश नहीं। फिर भी मैं यह एक प्रकट चिन्तन अपने लिए कर रहा हूँ, क्योंकि हमारी तो कोई मिनिस्ट्री है नहीं। सारांश, भिन्न-भिन्न पक्षों के लोग, जो इस कार्य को सच्चाई से मानते हों और इसमें आना चाहते हों—चाहे उनके माने हुए विश्वास हिंसा के हों, अहिंसा के हों, ईश्वर-निष्ठा के हों, नास्तिकता के हों या जैसे भी हों—उन सबको हम मंजूर करें, यही हमारी वृत्ति होनी चाहिए। दूसरी बाजू से हमारे द्वारा माने हुए आन्दोलन के मूल सेवक दस-बीस नहीं, लाख-लाख की तादाद में होने चाहिए। वे लोकनीति में पूर्णतया विश्वास माननेवाले होंगे।

पलनी (मदुराई)
२०-११-'५६

अनार-दाना जैसा राज्य

ग्रामदानवाले गाँवों के अनेक प्रकार के चित्र हो सकते हैं; पर चित्र को जो रंग देना चाहें, वह दे सकते हैं। गाँववाले अपनी योजना करें। अपने गाँव का आयात-निर्यात तय करने का अधिकार उन्हींको रहे। हमने हिंदुस्तान के बड़े-बड़े नेताओं से इसके बारे में बातें की हैं। उन्हें लगता है कि "यह कैसे होगा? यह तो 'स्टेट' का अधिकार है। एक स्टेट के अंदर दूसरी स्टेट कैसे हो सकती है?" लेकिन यह तो आज के राजनैतिक चिन्तन का ही परिणाम है। हम मानते हैं कि लोकशक्ति से यह काम हो सकता है। जैसे अनार में हर दाना अलग-अलग होता है, वैसे ही स्टेट के अंदर अलग-अलग स्टेट बन सकती है। प्रत्येक दाना पूर्ण स्वतन्त्र होता है। उसके लिए वहाँ अलग पेशी होती है, उसमें वह भरा

टॉल्स्टॉय की वासना : ३६ :

प्रश्न : "सर्वोदयी लोकसेवक राजनीतिक दलों का सदस्य बनता है, तो क्या हर्ज है ?"

विनोबा : "हम मानते हैं कि जो आदमी किसी भी दल का सदस्य बनेगा, वह अपनी नैतिक शक्तियों को निश्चय ही कम करेगा। शुद्ध धर्म-कार्य करनेवालों को राजनीति से अलग ही रहना चाहिए। जहाँ आपने कहा कि मैं अमुक पार्टी का हूँ, वहीं आप दूसरी पार्टियों के नहीं रहे। जहाँ आपने कहा कि मैं हिन्दू हूँ, वहीं आप मुसलमान नहीं रहे। हम तो सब पर समान प्रेम करना चाहते हैं।

"आप कहें कि हम किसी पार्टी में रहते हैं, तो अन्य पार्टीवालों के साथ संपर्क रहता है। लेकिन संपर्क केवल शरीर का नहीं, मानसिक भी होता है। टॉल्स्टॉय ने ६० साल पहले एक किताब लिखी थी। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए।' उसी वक्त मेरा जन्म हुआ। मैं मानता हूँ कि शायद उन्होंने यह लिखकर अपनी वासना मुझमें भर दी। हम जनता को लोकनीति का विचार देना चाहते हैं। आप जहाज में बैठकर कहीं जा रहे हैं, किनारे पर जो प्रकाश-गृह है, वह आपको मदद देता है। अगर आप चाहें कि यह प्रकाश-गृह भी किनारा छोड़कर आपके साथ जहाज में चढ़े, तो कैसे चलेगा ? प्रकाश-गृह के तौर पर ही कुछ लोग राजनीति से अलग रहें, तो देश के लिए अच्छा रहेगा। दुनिया में कुछ तो ऐसे मुक्त पुरुष रहने ही चाहिए, जो दुनिया के सामने चिरकालीन मूल्य रखें।"

कल्लांदरी (मदुरा)

२-१-'५७

लोग हैं ! परंतु इस तरह कवि को नहीं कहना है। वह कहना चाहता है कि सबके घर सोने के बनेंगे याने सबमें समानता होगी। उत्तम वैभव होगा। परंतु वह समान रूप से बँटा होगा। यह है रामराज्य। तुलसीदासजी ने रामराज्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'राम प्रताप विषमता खोयी।' रामजी के प्रताप से विषमता खो गयी। भेद नहीं है। घर की दीवारें ईंटों की भी क्यों न हों, परंतु सबके घर समान होंगे। यह नहीं होगा कि एक छोटी कोठरी में ५-५० मनुष्य ठूँसे जायँगे। याने उन्होंने सूर्यनारायण की तरफ हमारा ध्यान खींचा है। सूर्यनारायण के प्रताप से तारकागण की ऊँच-नीचता खतम हो जाती है। बड़ी तारका, छोटी तारका, ऐसा भेद नहीं। विषमता का लोप होता है। और कहा है, 'बैर न कर काहू सन कोई।' ग्रामराज्य में निर्वैरता होगी याने परस्पर प्रेम होगा। उसमें वैषम्य नहीं होगा याने प्रेम होगा।

इस तरह रामराज्य याने प्रेमयोग और साम्ययोग—प्रेम और समत्व। इस प्रकार का रामराज्य हमको बनाना है। इस आशा से जवान आपके पास आयेंगे। सबको हरिस्वरूप देखने की भावना उनमें होगी। वे सबकी निष्काम सेवा करेंगे। उनमें व्यक्तिगत वासना नहीं रहेगी। अहंकार और स्वार्थ नहीं होगा। ऐसे निष्ठावान् कार्यकर्ता आपके पास आयेंगे। आपको उनके लिए सहानुभूति होनी चाहिए। आपके पास आने पर उनका सुनने के लिए आपको तैयार रहना चाहिए और वे जो कहेंगे, उसके मुताबिक बरतने की तैयारी भी होनी चाहिए।

फिरंगीपेठ
२७-८-'५७

विचार को नहीं छोड़ते हैं, तब तक दुनिया को मुक्ति नहीं मिलेगी। फिर बहुमत-अल्पमत के झगड़े चलते ही रहेंगे। अतः फूट डालनेवाली यह जो राजनीति है, उसका भविष्यकाल में कोई प्रयोजन नहीं है। अब हमें 'सर्वानुमति' से चलनेवाली नीति ही चाहिए, जिसे लोकनीति कहते हैं। वह किस तरह से चल सकेगी, इस बारे में हम सोचें। इसका थोड़ा-सा आरंभ सिक्युरिटी कौन्सिल में 'वीटो' के रूप में किया है। क्वेकर्स में भी सर्वानुमति से प्रस्ताव पास करते हैं। ये किस्से छोटे हों, तो भी ये लोकनीति के प्रयोग हैं। इन्हें हमें आगे ले जाना है।

फूट डालनेवाली राजनीति में विद्यार्थियों को हिस्सा लेना ही क्यों चाहिए? उन्हें तो व्यापक लोकनीति का अध्ययन करना चाहिए और उसके वास्ते आज के राजनैतिक विचारों का, सोशलिज्म, कम्युनिज्म, वेल्फेअरिज्म, सर्वोदय आदि का अध्ययन करके उनके गुण-दोषों की चर्चा करनी चाहिए एवं उन्हें अपने विचार व्यापक बनाने चाहिए।

विश्वव्यापी दृष्टि से सेवा में लगें

व्यापक विचार बनाने के बाद यदि वे छोटे क्षेत्र के काम में पड़ेंगे, तब तो कोई हर्ज नहीं है। लेकिन व्यापक विचार बनने के पहले ही वे यदि संकुचित क्षेत्र में पड़ेंगे, तो उनका सारा जीवन संकुचित बन जायगा। हम कहीं भी काम करना शुरू करते हैं, तो छोटे क्षेत्र में ही करते हैं, देह के साथ सम्बद्ध क्षेत्र में ही करते हैं। माँ काम करेगी, तो परिवार में ही करेगी, ग्रामसेवक ग्राम में ही काम करेगा, देशसेवक देश में करेगा। इस तरह सेवा-क्षेत्र चाहे छोटा भी हो और घर, गाँव या देश के क्षेत्र में सेवा चलती हो, तो भी विश्वव्यापी दृष्टि से सेवा करनी चाहिए। विद्यार्थियों की ऐसी ही विश्वव्यापी दृष्टि होनी चाहिए। बच्चे की सेवा करते समय माँ को ऐसी संकुचित भावना नहीं रखनी चाहिए कि 'यह मेरा बच्चा है और मैं उसकी सेवा करती हूँ', बल्कि उसकी ऐसी भावना होनी चाहिए कि 'सारे विश्व का प्रतिनिधि मेरे घर में आया है', जैसे, कौशल्या

विद्यार्थियों के लिए एक बात बार-बार पूछी जाती है कि विद्यार्थियों को राजनीति में हिस्सा लेना चाहिए या नहीं ? अब यह समझने की जरूरत है कि हम दुनिया के नागरिक बने हुए हैं, विज्ञान ने हमें जबर्दस्ती से दुनिया का नागरिक बना दिया है। आज सारी दुनिया नजदीक आ गयी है, इसलिए अब थोड़े दिन कुश्ती चलेगी, फिर आलिंगन होगा ! आज भिन्न-भिन्न देश अलग नहीं रह सकते हैं। इसलिए हमें राजनीति का विचार दूसरे ढंग से करना चाहिए। अब हमें विश्वव्यापक राजनीति का विचार करना चाहिए। हम उसे लोकनीति कहते हैं, याने ऐसी व्यापक-विशाल राजनीति, जिसमें सारा विश्व एक है, हम सारे उसके नागरिक हैं, जिसमें किसीका किसी पर अनुशासन नहीं चलता, हर मनुष्य का अपने पर अनुशासन चलता है। ऐसी राजनीति और ऐसा समाज हमें बनाना है। पर विश्व-मानव बनाने की जो राजनीति होगी, उस पर 'राजनीति' शब्द लागू नहीं होगा। इसीलिए हम कहते हैं कि विद्यार्थियों को 'लोकनीति' में प्रवीण होना चाहिए।

सर्वानुमति की लोकनीति

विद्यार्थियों को २१ साल की उम्र के नीचे वोट का अधिकार नहीं दिया जाता है, क्योंकि वह एक छोटा अधिकार है ! पर चुनाव में होता यह है कि यदि हमें १०० मनुष्यों की सेवा करनी है, तो उसके लिए हम चुने जाने के लिए खड़े होते हैं और फिर उनमें से ५१ कहते हैं कि "हमें आपकी सेवा पसन्द है" और ४९ कहते हैं कि "पसन्द नहीं है"; तब भी हम सेवक के नाते चुने जाते हैं ! अब हमें अपनी सेवा उन ५१ पर तो लादनी ही है, परन्तु उन ४९ पर भी लादनी है, जो हमारी सेवा नहीं चाहते ! यही बुनियादी तौर से गलत विचार है और जब तक हम इस

कल्याण-राज्य यानी जड़ दशा

आज की राजनीति तो सत्ता के जरिये समाज पर कुछ चीजें लादने की कोशिश करती है और कल्याण-राज्य से तो भयानक कोई राज्य ही नहीं हो सकता ! दीखने में तो यह बड़ा सुन्दर विचार दीखता है। कहा जाता है कि "पुराना राज्य केवल पुलिस-राज्य था, वह केवल रक्षण की चिंता करता था, और कुछ नहीं। न्याय-दान अवश्य ही करता था। अब वह पुरानी सरकार गयी और नयी सरकार आयी, जो समाज के कल्याण की चिंता करती है !" पर कल्याण-राज्य की भी कल्पना नयी हो नहीं है ! कालिदास ने रघुवंश में एक राजा के राज्य का वर्णन किया है, जो आदर्श कल्याण-राज्य का वर्णन है : 'प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।' वह राजा प्रजा का रक्षण, पालन-पोषण सभी करता था। इसलिए 'स पिता', वही एक पिता था, 'पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ।'—यानी सारे बाप केवल जन्म देनेवाले थे। हम तो कालिदास का यह श्लोक पढ़कर बिलकुल घबड़ा गये। अगर ऐसा राज्य हो, तो यह बड़ी भयानक कल्पना है। जिसमें जनता के जीवन को सब तरह से पकड़कर बाँधा जाता है, उसमें जनता को स्वतंत्र रीति से कुछ भी काम करना नहीं होता है। देश के हर काम के लिए, सरकार की तरफ से ही योजना बनती है। समाज-सुधार, खेती-सुधार, वस्त्र, शिक्षण, साहित्यिकों को उत्तेजन देना, उद्योगों के बारे में पॉलिसी (नीति) तय करना, रक्षण आदि सब सरकार करेगी और लोग रक्ष्य बनेंगे। यह बिलकुल जड़ दशा है, यह तो भेड़ों की अवस्था है !

बंगलोर

१७-१०-'५७

यह समझकर रामजी की सेवा करती थी कि राम के रूप में भगवान् ही मेरे घर में आया है। ऐसी भावना से माँ सेवा करेगी, तो उस लड़के की सेवा से माता मोक्ष पा सकती है। जितनी दृष्टि व्यापक रखोगे, उतनी सेवा की कीमत बढ़ेगी। सेवा की कीमत उसके परिमाण पर निर्भर नहीं है।

सेवा का रहस्य

सेवा छोटी है या बड़ी, इसकी क़ीमत नहीं है। किस भावना से, दृष्टि से वह की जा रही है, उसकी कीमत है। छोटी दृष्टि से देश की सेवा करना संकुचित विचार ही माना जायगा और बड़ी दृष्टि से घर की सेवा करना बड़ा विचार होगा। आज बड़े-बड़े देश के नेता देश की सेवा करते हैं, परंतु उनका दिमाग छोटा होता है, तो क्या परिणाम आता है? हिटलर ने जर्मनी की सेवा की। वह अपने को देशसेवक ही समझता था और सारे जर्मनी की चिंता करता था! परंतु वह संकुचित बुद्धि से चिंतन करता था। परिणाम यह आया कि सारा समाज विनाश की तरफ गया। आज हम देखते हैं कि सार्वजनिक सेवा करनेवाले बड़े-बड़े लोगों की सेवा में रागद्वेष पैदा होते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि संकुचित होती है। तो, संकुचित दृष्टि से व्यापक सेवा करने पर भी वह सेवा संकुचित हो जाती है और व्यापक दृष्टि से, निर्मल बुद्धि से, निष्काम भाव से छोटी सेवा करने पर वही बड़ी बन जाती है। यह सेवा का रहस्य है!

इसलिए विद्यार्थियों को राजनीति में पड़ना चाहिए या नहीं, इसका विचार इस बुनियादी दृष्टिकोण से करना चाहिए। आज जो राजनीति चल रही है, वह अत्यन्त संकुचित है। वह समाज के टुकड़े करती है और सत्ता के जरिये सेवा लादना चाहती है। महापुरुषों ने इससे बिलकुल उल्टी क्रिया बतायी थी। उन्होंने कहा था कि हमारी आज्ञा किसी पर नहीं चलनी चाहिए, हरएक को हमारा विचार सुनने का, समझने का अधिकार है। अगर उसे विचार जँचेगा, तो उसे वह कबूल करेगा, नहीं जँचेगा, तो परित्याग करेगा।

"लेकिन आज की हालत में सर्वोदय-सिद्धान्तों को माननेवाले कुछ व्यक्ति मतदान के अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहेंगे। वे स्वाभाविक ही शान्तिमय साधनों में विश्वास न करनेवाले अथवा सम्प्रदायवादी उम्मीदवारों को अपना वोट देना उचित नहीं मानेंगे। जो व्यक्ति भिन्न-भिन्न राजनीतिक पक्षों के सदस्य हैं, वे यह तो जानते ही हैं कि नागरिक के लिए वोट देने का कर्तव्य जितना पवित्र माना जाता है, उतना ही विशिष्ट परिस्थिति में वोट न देने का कर्तव्य भी पवित्र है। इसलिए उनका पक्ष गलत आदमियों को उम्मीदवारी के लिए खड़ा करे, तो हरएक लोकनिष्ठ नागरिक का यह कर्तव्य हो जाता है कि पक्ष का सदस्य होते हुए भी वह उस उम्मीदवार को वोट न दे।"

धर्मपुरी (सेलम)

५-८-'५६

सर्व-सेवा-संघ का चुनाव-प्रस्ताव

"सर्व-सेवा-संघ का लक्ष्य अहिंसक समाज-रचना है। उसका यह विश्वास है कि हुकूमत के मार्फत अहिंसक समाज कायम नहीं किया जा सकता। लोकतंत्र का आखिरी आधार लोक-सम्मति है, यह तो मानी हुई बात है। उसकी सिद्धि के लिए दंड-निरपेक्ष समाज-व्यवस्था की ओर कदम बढ़ाना आवश्यक है। अतएव सर्व-सेवा-संघ सत्ता-प्राप्ति की राजनीति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी प्रकार का हिस्सा नहीं ले सकता। जिस पक्ष के हाथ में हुकूमत है या जो पक्ष अपने हाथ में हुकूमत लेना चाहते हैं, उन सबकी तरफ सर्व-सेवा-संघ तटस्थ बुद्धि से देखता है। आज लोकतंत्र 'पक्षनिष्ठ' है। उसको 'लोकनिष्ठ' बनाने के लिए पक्ष-निरपेक्ष और पक्षातीत भूमिका की वह आवश्यकता मानता है। उसे किसी भी एक पक्ष की हार या जीत में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं हो सकती। कारण, जाहिर है कि मत-परिवर्तन की प्रक्रिया हार और जीत से परे है। हम किसीकी हार या जीत चाहेंगे, तो दोनों में से किसीका भी हृदय-परिवर्तन करने की पात्रता खो देंगे। इसलिए सर्व-सेवा-संघ न तो चुनावों में स्वयं किसी तरह का हिस्सा ले सकता है और न किसी व्यक्ति को चुनाव के विषय में किसी प्रकार की सलाह देना उपयुक्त ही मानता है।

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

	रु० न० पैसे
गीता-प्रवचन	१–००
शिक्षण-विचार	१–५०
सर्वोदय-विचार और स्वराज्य-शास्त्र	१–००
कार्यकर्ता-पाथेय	०–५०
साहित्यिकों से	०–५०
भूदान-गंगा (६ खंडों में)	९–००
ज्ञानदेव-चिंतनिका	१–००
भगवान् के दरबार में	०–२५
व्यापारियों का आवाहन	०–२५
ग्रामदान	१–००
शांति-सेना	०–५०
गुरुबोध	१–५०
भाषा का प्रश्न	०–२५
समग्र ग्राम-सेवा की ओर	३–५०
शासन-मुक्त समाज की ओर	०–५०
नयी तालीम	०–५०
संपत्तिदान-यज्ञ	०–५०
व्यवहार-शुद्धि	०–३७
गाँव-आन्दोलन क्यों ?	२–५०
स्थायी समाज-व्यवस्था	२–५०
ग्राम-सुधार की एक योजना	०–७५
सर्वोदय-दर्शन	३–००
अपना राज्य	०–३७
अपना गाँव	०–३७
सत्य की खोज	१–५०
माता-पिताओं से	०–३७
बालक सीखता कैसे है ?	०–५०
नक्षत्रों की छाया में	१–५०
भूदान-गंगोत्री	२–५०
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१–००

	रु० न० पैसे
ग्रामदान क्यों ?	१–००
सफाई : विज्ञान और कला	०–७५
सुन्दरपुर की पाठशाला	०–७५
गोसेवा की विचारधारा	०–५०
पावन-प्रसंग	०–५०
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	०–२५
सर्वोदय-संयोजन	१–००
सामाजिक क्रांति और भूदान	०–३१
गाँव का गोकुल	०–२५
ब्याज-बट्टा	०–२५
पूर्व-बुनियादी	०–५०
भूदान-पोथी	०–२५
ताई की कहानियाँ	०–२५
दादा का स्नेह-दर्शन	०–२५
विनोबा-संवाद	०–३७
जीवन-परिवर्तन (नाटक)	०–२५
पावन-प्रकाश (नाटक)	०–२५
सपूत (नाटक)	०–३७
प्राकृतिक चिकित्सा क्यों ?	०–२५
प्राकृतिक चिकित्सा-विधि	१–५०
बापू के पत्र	१–२५
स्मरणांजलि (जमनालाल बजाज)	१–५०
पहली रोटी	०–२५
ग्रामदान : वरदान	०–२५
कुष्ठ-सेवा	१–२५
मेरा जीवन-विकास	०–५०
समता की खोज में	०–३७
चोर-डाकुओं के सच्चे आचार्य (रविशंकर महाराज)	४–००